शैक्षिक विचार

[Educational Thouguts]

–o–

लेखक

जमनालाल बायती

एम ए, एम एड साहित्यरत्न

ए एन आई ई,

पी एच डी स्कॉलर

–o–

आमुख

श्री रणजीत सिंह कूमट

आई ए एस

निदेशक

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा

राजस्थान, बीकानेर

–o–

कल्पना प्रकाशन

कृष्ण कुंज बीकानेर

प्रकाशक
कल्पना प्रकाशन
कृष्ण कुञ्ज, बीकानेर
दूर भाष १०६७

संस्करण प्रथम अप्रेल १९७३

मूल्य दस रुपये मात्र

मुद्रक
जनसेवी प्रिन्टर्स
दाऊजी मन्दिर के सामने, बीकानेर

रणजीत सिंह कूमट
आई० ए० एस०,

निदेशक,

निदेशालय,
प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा,
राजस्थान बीकानेर
अप्रेल ११ १९७३

आमुख

प्रस्तुत सकलन एक श्लाघनीय प्रयास है। शिक्षा जगत की विभिन्न समस्याओं पर हो रहे नवचिन्तन पर लेखक ने अपनी शृ खला जोडी है। कुछ समाधानात्मक लेख हैं, कुछ विवेचनात्मक। इनसे वतमान मे चल रहे विचार व प्रयोग की जानकारी होती है।

श्री जमनालाल बायती परिश्रमी लेखक है। विदेशी एव भारतीय पत्रिकाओ मे इनके लेख छपे हैं। खोज व अध्ययनशीलता की छाप इनके लेखो मे पाई जाती है।

प्रस्तुत पुस्तक को पढकर सभी लाभान्वित होगे, ऐसी पूर्ण आशा है।

(सही)
(रणजीत सिंह कूमट)
निदेशक

पुस्तक कैसी लिखी गई है पाठक जानता है। पाठकों को पसन्द आना ही पुस्तक की उपयोगिता है। यदि इससे पाठकों तथा प्रशिक्षणार्थियों का तनिक भी हित हो सका, पुस्तक उन्हें उपयोगी लगी तो लेखक की बहुत बड़ी उपलब्धि है। पुस्तक के सुधार के लिए आपके सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत है।

लेखक श्री आर एस कूमट, आई ए एस निदेशक प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा, राजस्थान का हृदय से आभारी है जिन्होंने अपने व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकाल कर पुस्तक को पढ़ा एवं आमुख लिखने की महती कृपा की है। श्री कूमट साहब को इस रूप में पुस्तक से सम्बन्ध करके मुझे परम प्रसन्नता है। लेखक नया शिक्षक, बोर्ड जनरल ऑफ एजूकेशन, बालस्थली पत्रिका, भारतीय शिक्षा, जन शिक्षण, समाज शिक्षण, शिविरा, राजस्थान गाइड्स न्यूज लेटर, कादम्बिनी, जनसाहित्य, साहित्य परिचय तथा एजूकेशनल हेराल्ड आदि पत्रिकाओं व सम्पादकों का भी आभारी है जिन्होंने अपनी पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं को पुस्तक में सम्मिलित करने की कृपा पूर्वक स्वीकृति प्रदान की है।

श्रीमती वीणा वाहेती को इस पुस्तक से जोड़कर मैं प्रसन्नता अनुभव करता हूँ। श्रीमती वाहेती को मैं धन्यवाद भी देता हूँ जिन्होंने सदैव मुझे कठोर परिश्रम करने की प्रेरणा दी है। हमारे व्यस्त दाम्पत्य जीवन में भी उसने ऐसी व्यवस्था बनाये रखी है कि मुझे बराबर पढ़ने लिखने का समय मिल सके। मेरी शैक्षिक उपलब्धियों के लिए श्रीमती वाहेती का बहुत बड़ा योगदान है मैं उनके त्याग को भूल नहीं सकता।

पुस्तक को इतने अल्पकाल में प्रकाशित कर देने के लिए कल्पना प्रकाशन के मालिक श्री कृष्ण जनसेवी भी धन्यवाद के पात्र हैं। शीघ्रता के कारण मुद्रण में वर्तनी की कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं जिन्हें आगामी संस्करणों में सुधार दिया जायेगा।

—जमनालाल वायती

लेखक की अन्य कृति

○ बालकों की सामान्य समस्याएँ

अनुक्रम

सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक विकास मे शिक्षा का योगदान

– ○○ –

पुरानी कहावत के अनुसार परिवर्तन प्रकृति का नियम है। परिवर्तन का अर्थ है प्रचलित रीति–रिवाजों एवं कानूनों से दूर हटना तथा इसी भांति सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है सामाजिक मूल्य मानक, परम्पराओं एवं विश्वासों का पालन नहीं करना। माथुर के अनुसार "सामाजिक परिवर्तन का आशय, समूह की व्यवस्था तथा उसके व्यवहार में, जो कानूनों, संस्थाओं, रीति–रिवाजों तथा विश्वासों पर आधारित है, संशोधन एवं परिवर्तन से है।' 1

परिवर्तन पहले समाज में आता है तदन्तर शिक्षा प्रणाली उसका अनुगमन करती है। सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा नेतृत्व का कार्य नहीं बल्कि सामाजिक परिधि में ही अनुयायी बनती है। यदि कभी समाज मे बेरोजगारी बढती है तो विद्यालयी पाठ्यक्रम में उद्योग, कार्यानुभव तथा इसी प्रकार के अन्य विषय जोड दिये जाते है। इसी भांति आज नागरिक प्राय सामाजिक जीवन के साधारण नियमों तथा कार्य विधियों का पालन नहीं कर रहे हैं तो इस व्याधि को दूर करने के लिए स्कूल पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा का एक विषय के रूप मे महत्व बढता जा रहा है।

आयोजित सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा की भूमिका बडी महत्वपूर्ण है। इसीलिए इसे समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं के साथ तालमेल बिठाना चाहिए। आज के इस वैज्ञानिक एवं प्राविधिक युग मे रहने के

---

1 S B Adaval (Ed) The Third Indian Year Book of Education Educational Reasearch New Delhi-16 National Council of Educational Reasearch and Training Feb 1968 p 9

लिए हुए नागरिक को विज्ञान सम्बन्धी जानकारी आवश्यक है। कोठारी शिक्षा आयोग (१९६४-६६) ने इसीलिए विज्ञान आधारित शिक्षा के लिए जोरदार अनुशंसा की है।

जो कोई भी बात या रीति रिवाज भूतकाल में अच्छे माने जाते थे जरूरी नहीं कि वे अच्छे माने ही जाय, यह कोई आवश्यक नहीं है क्योंकि आज राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में बराबर परिवर्तन हो रहे हैं। आज स्थिति यह है कि विचारों का प्रवाह बात की बात में सरलता से विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुंच जाता है मूलतः विचारों का आदान प्रदान सरल हो गया है।

परिवर्तन पर दो रूपों से विचार किया जा सकता है– अप्रायोजित तथा प्रायोजित परिवर्तन। कुछ समाज शास्त्री दूसरे प्रकार के परिवर्तन को विकासोन्मुखी परिवर्तन भी कहते हैं। अप्रायोजित परिवर्तन भारी संख्या में नागरिकों का निष्क्रमण, सामाजिक दुर्दिन, उदाहरण के लिए सूखा या अति वृष्टि, महायुद्ध, किसी नेतृत्व का उभरना या आर्थिक मंदी से आता है तथा प्रायोजित परिवर्तन को क्रमिक विकास के रूप में लिया जा सकता है।

परिवर्तन से कुछ लोगों पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ सकता है जबकि अन्य लोग इसे प्रसन्नता से स्वीकार कर लेते हैं। सामान्यतया व्यक्ति परम्परागत जीवन व्यवहार की आदतों में परिवर्तन पसंद नहीं करते हैं। परिवर्तन के फल स्वरूप जब जन कल्याण बढ़ता है तो प्रगति की संज्ञा दी जाती है।

सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी घटक यथा– जनसंख्या वृद्धि ज्ञान का विस्फोट प्राविधिक विकास आदि सब एक दूसरे से मिले जुड़े हैं। जाति प्रथा तथा इसी प्रकार की अन्य सामाजिक संस्थाएं मूल्य तथा विश्वास शीघ्र औद्योगीकरण तथा समाचार शीघ्र भेजने के साधनों के विकास के कारण महत्वहीन होती जा रही है। भारत में सामाजिक संस्थाओं तथा प्राविधिक ज्ञान व इसी भांति मशीनों की कार्य क्षमता तथा सामाजिक संस्थाओं की अनुपयुक्तता के बीच बड़ी खाई है। यहां सामाजिक प्रतिष्ठा को नापने का पैमाना एक विशिष्ठ प्रकार का है। भारत में वैज्ञानिक तथा मिल मालिक पुरस्कार प्राप्त करते हैं पर समाज शास्त्री नहीं, यही नहीं समाज शास्त्रियों को तुलनात्मक रूप से महत्व भी कम दिया जाता है तथा उन्हें नीची निगाह से देखते हैं।

सांस्कृतिक तथा सामाजिक धरोहर के आधार पर समाज ने सोद्देश्य सामाजिक परिवर्तन को दिशा दी है तथा रूप निश्चित करने के लिए तक

दृष्टिकोण का विकास किया है। समाज विज्ञानों के रूप में शिक्षा को समाज की जैविक प्रकृति को नष्ट करने वाले विरोधी तत्वों को स्वीकृति नहीं देना चाहिए। शिक्षा दो स्तरों पर कार्य करती है– विद्यार्थी-व्यवस्था तथा कार्यक्रम एवं शिक्षा प्रशासन।

कभी घातक जमाने वाले नेता पश होते हैं राजनैतिक तथा आर्थिक कार्यक्रमों को प्रभावित करते हैं तथा शिक्षा प्रणाली को भी अपने चाहे अनुसार मोड़ लेते हैं। छठी दशाब्दी में केरल में ऐसा हुआ था। उस वक्त के शासक दल ने विद्यालयी पाठ्यक्रम व पाठ्य विषय वस्तु बदल दी थी तब केन्द्रीय सरकार राज्य सरकार द्वारा लिये गये निर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए आगे आई। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आज एक सामान्य नागरिक भी अपने आर्थिक व राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राजनैतिक व प्रशासनिक शक्ति प्राप्त करने जा रहा है। यह सब सामान्य शिक्षा का ही प्रतिफल है।

शिक्षा को मात्र विनियोग के रूप में लिया जाता है। प्रशिक्षण एवं साधनों के आवंटन पर आधारित वैज्ञानिक अध्ययन सामाजिक चिन्तन के फल स्वरूप परिवर्तन लाते हैं। औद्योगीकरण से कई सामाजिक प्रभाव भी पड़ते हैं जिनमें परिवार के सम्बन्धों का प्रतिमान बदलना, शहरी तथा ग्रामीण जीवन व्यवहार, पिता-पुत्र में असामञ्जस्य एवं प्रजातन्त्र में अधिकारों की प्रकृति बदलना आदि भी सम्मिलित हैं।

आर्थिक विकास में भी शिक्षा का योगदान महत्वपूर्ण है। कुछ अध्ययन हुए हैं जिनमें शिक्षा तथा आर्थिक विकास के धनात्मक सहसम्बन्ध को दर्शाया गया है। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि शिक्षा के फलस्वरूप सामाजिक परिवर्तन होते हैं जो आर्थिक विकास की प्रक्रिया का अनुगमन करते हैं, परिवर्तन सुधार एवं विकास की यह प्रक्रिया चलती रहती है और उसके बदले में आर्थिक विकास की गति और भी तेज हो जाती है।

Prof Theodore W Schultz तथा अन्य अर्थशास्त्रियों को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि इन्होंने आज के अर्थशास्त्रियों का आर्थिक विकास में शिक्षा के योगदान पर सजग बनाया। किसी भी देश के आर्थिक विकास में शिक्षा विभिन्न तरीकों से मदद कर सकती है। श्रमिकों की कार्यक्षमता बढ़ाकर आर्थिक विकास को अग्रसर किया जा सकता है। शिक्षा के माध्यम से श्रमिकों को अधिक ज्ञान तथा कौशल प्राप्त होता है। वे सीखते हैं कि मशीनें व अन्य उपकरण कैसे प्रयोग किये जाते

है ? इस भांति कुशलता से प्रयोग करने से मशीनों की क्षमता बढ़ जाती है। इन सबसे निर्विवाद रूप से श्रम की उत्पादकता बढ़ती है। शिक्षा श्रमिकों को भी नई स्थितियों में तालमेल बिठाना सिखाती है। जहां तक अर्द्ध विकसित देशों का प्रश्न है शिक्षा के इस पहलू का और भी अधिक महत्व है। क्योंकि ये देश प्रायः नए प्रकार की मशीनें विकसित देशों से मंगाते हैं। इससे शिक्षित व्यक्तियों के लिए रोजगार के अवसर बढ़ते हैं तथा इसी के फलस्वरूप श्रम में गतिशीलता आती है।

शिक्षा न केवल उत्पादन में सहायक होती है वरन् यह वितरण में भी मदद करती है। साधारणतया एक अल्प वेतनभोगी कर्मचारी की शिक्षा भी कम होती है। ज्योंही वह आवश्यक योग्यताएं प्राप्त कर ले तो उसे उच्च वेतन के पद पर पदोन्नत किया जाय। इससे आय के समान वितरण में मदद मिलती है। इसी भांति उच्च आय के व्यक्तियों पर प्रगतिशील दर से कर लगाये जा सकते हैं और इस प्रकार प्राप्त राशि का निर्धनों के लिए कल्याणकारी कार्यों में लगाई जा सकती है जैसे कि मुफ्त चिकित्सा, रियायती कीमतों पर खाद्यान्न जिससे निर्धन भी सन्तुलित आहार प्राप्त कर सकें आदि। इससे भी सम्पत्ति के समान वितरण हेतु मदद मिलेगी फलतः सामान्य जनता का जीवनमान ऊंचा उठेगा।

तालिका I

देश का नाम	उच्च शिक्षा		शिक्षा पर व्यय
	विज्ञान व तकनीकी	विधि, मानविकी समाज शास्त्र	
अमेरिका	२२ ७	अप्रा	४ ६
जापान	२२ १	२६ ६	५ ६
इजिप्ट	२४ ०	५२ २	३ ७
भारत	२७ ३	५७ ६	२ ०२
चीन	५५ ७	अप्रा	२ ३

अप्रा = अप्राप्य

Source — Adapted from (i) Tables in Pp 46–48 Education Man Power and Economic Grouth By Harbison and Myers (ii) The Indian Economic Journal Dec 1965 p 6

ऊपर की तालिका बताती है कि भारतीय स्थिति चीन व इजिप्ट की तुलना में अच्छी है पर जापान तथा अमेरिका के साथ खड़े होने के लिए बहुत कुछ करना शेष है। आंकड़े यह भी बताते हैं कि विज्ञान व तकनीकी के पाठ्यक्रम में प्रवेश चाहने वाले मानविकी तथा समाज विज्ञानों से लगभग दुगुने (४७ ६ तथा २७ ३ %) है। भारत में शिक्षित व्यक्तियों में बेरोजगारी तथा अर्द्ध बेरोजगारी अप्रायोजित शैक्षिक विकास का सूचक है।

यू एन रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा केवल जन्मसिद्ध अधिकार ही नहीं है बल्कि आर्थिक विकास व आधुनिकता की पूर्व प्राथमिक अर्थात मौलिक आवश्यकता है। इसी रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि किसी व्यक्ति या राष्ट्र की शिक्षा के स्तर से उस व्यक्ति या राष्ट्र के जीवन स्तर का संकेत मिलता है। इस भांति यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास का सम्बन्ध केवल भौतिक सम्पत्ति तथा श्रमिकों से ही नहीं है बल्कि इसका सम्बन्ध शिक्षा के स्थान तथा तकनीकी ज्ञान से भी है। शिक्षा से व्यक्ति का मानसिक विकास होता है। शिक्षित व्यक्ति अच्छा खाना अच्छा कपड़ा अच्छा मकान, बच्चों के लिए उच्च श्रेणी की अच्छी शिक्षा व मनोरंजन के साधन जुटाना चाहता है। ऐसी स्थिति में शिक्षित व्यक्ति अपने परिवार को भी सीमित रखना चाहता है जिससे कि वह अपनी सीमित आमदनी से इन सब वस्तुओं का उपभोग कर सके। इस प्रकार दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पाठशाला व जीवन स्तर में प्रगाढ़ सम्बन्ध है। इसमें एक सवमान्य यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उच्च जीवन स्तर वाले देशों में शिक्षा का स्तर भी ऊंचा होगा। ज्ञान के विकास से लोगों की आवश्यकताएं बढ़ती हैं वे नई नई चीजों की मांग करते हैं और व्यवसायी लोग अधिक उत्पादन करते हैं इसके लिए उन्हें अधिक मजदूर लगाने पड़ते हैं। इन्हीं कारखानों में उन्हीं मशीनों पर पैदावार बढ़ाने से वस्तुएं सस्ती बिकनी आरम्भ होती है जिससे बाजार में वस्तुओं की मांग और बढ़ती है, इसलिए यह क्रम चलता रहता है। पर इसके दूसरी ओर बाजार में वस्तुओं की मांग की भी एक निश्चित सीमा होती है। उससे अधिक मांग बाजार में वस्तुओं के कितनी ही सस्ती होने पर भी नहीं बढ़ सकती, वस्तुएँ बाजार में बिना बिकी पड़ी रहेंगी। ऐसी स्थिति में उद्योगपतियों को उत्पादन कम करना पड़ता है। उत्पादन घटाने में प्रति वस्तु उत्पादन लागत अधिक आती है। कभी कभी तो स्थिति यहां तक आती है कि कई उद्योग तो बंद हो जाते हैं। इसके दूसरी ओर कई बार देशी पूंजीपतियों को जब तक इसका विश्वास

नहीं होता कि उनकी पूंजी सुरक्षित रहेगी तथा बहुत अधिक लाभ मिलेगा, वे तब तक अपना पैसा उद्योगों में नहीं लगाना चाहते। यह भी हो सकता है कि उन्हें नये कामों के बारे में जानकारी थोड़ी होती है।

डेनीसन के अनुसार श्रमिकों की उच्च शिक्षा के फलस्वरूप अमेरिका की राष्ट्रीय आय में व वहां के आर्थिक विकास में वृद्धि हुई है। अन्य देशों के लिए भी यही कहा जा सकता है। अब यह सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि शिक्षा आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण घटक है। निर्धन देशों को सम्पन्न देशों की तुलना में शुद्ध विज्ञान की प्रगति पर बहुत अधिक धन खर्च करने की जरूरत नहीं है। निर्धन देश को सम्पन्न देशों से विज्ञान का लाभ निःशुल्क उपलब्ध हो जाता है। कभी कभी नये अनुसंधान के अनुसार काम करने से ऐसे सामाजिक परिवर्तन हो जाते हैं जिनकी वजह से नये विचारों का विरोध हो सकता है। उदाहरणार्थ खजूर के फल से तेल निकालने की केन्द्रीय मिल स्थापित करने से तेल का उत्पादन दूना हो जाता है लेकिन मिलें स्थापित करने के फलस्वरूप पश्चिमी अफ्रीका के किसानों की पत्नियों की वह अतिरिक्त आमदनी समाप्त हो गई है जो उन्हें तेल निकालने की स्थिति में मिलती थी और इसलिए वे बड़े जोर के साथ इसका विरोध करती हैं। मिल स्थापित करने से पति पत्नी के बीच श्रम विभाजन में भी परिवर्तन आ जाता है और इस प्रकार के किसी परिवर्तन के बड़े दूरगामी और अज्ञात परिणाम होते हैं। ऐसे समुदायों में नवीन प्रक्रिया आसानी से लागू नहीं की जा सकती। जिन समाजों में प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि नहीं हो रही होती है वहां प्रशिक्षण प्राप्त कुशल लोगों की मांग की अपेक्षा पूर्ति अधिक होती है तभी योग्यता प्राप्त एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों को काम देना कठिन होता है। विकसित देशों में शैक्षणिक सुविधाओं के बढ़ने से उच्च प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों की संख्या बढ़ती जाती है तथा पारिश्रमिक के अन्तर कम होते जाते हैं। प्राथमिक शिक्षा सभी बच्चों को ५ वर्ष तक दी जाय या उनमें से आधे बच्चों को १० वर्ष तक की दी जाय? प्राथमिक स्कूलों के सभी शिक्षक माध्यमिक परीक्षा + दो वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त किए हुए हों या स्कूल छोड़े एवं प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की संख्या तेजी से बढ़ाई जाय जो केवल पढ़ना लिखना व गणित भर जानते हैं? भारत में भी गुणों की अपेक्षा संख्या पर अधिक जोर दिया गया है। ऐसा करने के लाभ नष्ट किए जाते हैं। प्रथम उच्च स्तर के प्रशिक्षण के लिए समय व धन लगाने चाहिए। इस भांति पूरी तरह शिक्षा प्राप्त

लोगोको ही काय करने दिया जायेगा तो बहुत कम लोग प्राप्त हो सकेंगे, तथा अद्ध शिक्षित लोगो की सेवाएँ ली गई तो कहीं अधिक लोगो को राहत मिलेगी। दूसरा तक यह है कि अद्ध शिक्षित लोग भी काय दक्षता के साथ पूरा कर लेते हैं। यदि इस पर बल दिया गया कि पूरी तरह शिक्षित लोग ही काम पर लगाये जायें तो कौशल की बरबादी होगी।

(McClelland) मेकलेनेड न बिजली का उपभोग सकेत मानकर 36 देशों से आकडे सग्रह करके बताया कि हाई स्कूल मे प्रवेशार्थियो तथा आर्थिक विकास मे घनात्मक सह सम्ब ध है। माध्यमिक शिक्षा व आर्थिक विकास का सायक्लि के प्रवाह के समान सम्बन्ध है। विकसित देश प्राथमिक (या कभी-कभी माध्यमिक भी) शिक्षा देश के बच्चो को मुफ्त देते है। अविकसित या अद्ध विकसित देशो मे अशिक्षा की दर बहुत अधिक है। इन देशो में पर्याप्त साधन नहीं है। व माध्यमिक तो क्या प्राथमिक शिक्षा भी सभी बच्चो को नि शुल्क नहीं दे पाते। इसके सिवाय उदार व व्यावसायिक शिक्षा तथा तकनीकी व कृषि की शिक्षा का उचित तालमेल भी इन देशों की प्रमुख तात्कालिक समस्या है। सच तो यह है कि कोई शिक्षा न तो शत प्रतिशत उदार ही हो सकती है और न शत प्रतिशत व्यावसायिक ही। अद्ध विकसित या अविकसित देशो मे व्यावसायिक शिक्षा से आर्थिक विकास मे तीव्र गति मिल सकती है। पर शिक्षार्थियो को सही व उपयोगी नागरिक बनाने के लिये उदार शिक्षा को भी नही भुलाया जा सकता। इसी भाति प्रौढ शिक्षा पर खच व उससे मिलने वाल लाभ पर भी अनुमान लगाया जा सकता है।

जहा तक भारतीय शैक्षिक नियोजन का प्रश्न है शैक्षिक नियोजन तथा कृपि एव व्यावसायिक विकास में सम्ब ध जोडा जाना चाहिए। यह नियोजनकर्त्ताओं की पसन्द नही बल्कि देश की आवश्यकता है। कृषि विकास के दृष्टिकोण से शिक्षा का पाठ्यक्रम तयार करना चाहिए। पूज्य बापू द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा इसका जीता जागता उदाहरण है। इसी भाति शिक्षा के विकास व रोजगार के अवसरो मे भी सम्बन्ध जोडा जाना चाहिए। वास्तविकता यह है कि अद्ध विकसित देशो मे रोजगार के अवसरो मे वृद्धि तथा शिक्षा के विकास की आवश्यकता दोनों ही समान रूप से वाछनीय है।

भारतवष एक प्रकार से सक्रमण काल से गुजर रहा है। वैज्ञानिक तकनीकी विकास का प्रभाव दनिक जीवन के हर व्यवहार मे देखा जा सकता

है जैसे कि सम्पत्ति सम्बन्धी परिवार, सत्ता तथा राष्ट्रीय भावना का विकास एवं भिन्न मानिकों का दृष्टिकोण प्राप्ति। डा० Handler ने मानव समाज पर यन्त्रविद तथा तकनीकी विकास के प्रभाव का भी अनुमान लगाया है। उनके अनुसार "काफी मात्रा में श्रमिक तब ऐसे कामों में व्यस्त होंगे जिनको कि वस्तुओं का उत्पादन नहीं पर मनोरंजन सेवाओं में लिया जायगा। मानवीय प्रयत्नों का मुख्य ध्येय सांस्कृतिक मनोरंजनात्मक, ज्ञान तथा समझ-बूझ का विकास होगा।

कुशल मिलाकर विशिष्ट तथा प्रायोजनात्मक कौशल की मांग तब तक बराबर बनी रहेगी जब तक कि देश का विकास के मार्ग पर निरंतर आगे बढ़ाना है। अतः आज इनका (आर्थिक विकास तथा शिक्षा का) तालमेल बिठाने की आवश्यकता है। पर आज संख्या की सनक में गुणों पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है तथा संख्या बढ़ाने की दौड़ लगी हुई है। यह संख्या नहीं गुण है जिन पर ऊपर का भवन ज्ञान व कौशल के साथ तैयार होगा तथा देश के आर्थिक विकास में मदद करेगा। यह सर्वमान्य सत्य है कि गुणों पर आग्रह नहीं करने वाला राष्ट्र एक दिन अवश्य पिछड़ जायगा।

इस रूप में भी शिक्षा को एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है कि सोचने के पुराने तौर तरीके तथा सामाजिक संस्थायें प्रगति में बाधा न पहुंचायें। शिक्षा तकनीकी ज्ञान तथा सामाजिक परिवर्तन के मध्य समानता लाने वाली एक कड़ी है। इसलिए यह वांछनीय है कि इस क्षेत्र में लगातार शोध की जाय तथा आयोजित विकास पर विचार किया जाय तक मजबूत बनाया जाय। भारतवर्ष में अधिकांश नागरिक नेतृत्व पहल करने की क्षमता परम्परागत चलते आये नियमों से हटकर परम्परागत रूप से सोचने के तरीकों से दूर हट कर साहस के साथ आगे आये तथा भावी पीढ़ी को तदनुसार मार्गदर्शन करें जो शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रभावी साधन के रूप में जिम्मेदार ठहराते हैं। यही कारण है कि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण घटक नहीं बन पा रहा है।

वास्तविकता यह है कि अब तक सामान्य शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन को न तो उपयुक्त स्थान दिया गया है न उस पर विचार किया गया है तथा न ही कोई उपयुक्त शोध कार्य इस दिशा में हुआ है। अतः शिक्षा के इस क्षेत्र में करने के लिए बहुत काम है।

---

1 Handler Philip Can man shape his future ? Span March 1971

वर्तमान सामाजिक सदर्भ मे मनोविज्ञान की देन

– ○○ –

अन्य क्षेत्रों (असामान्य मनोविज्ञान, व्यावसायिक मनोविज्ञान, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान आदि) की अपेक्षा समाज मनोविज्ञान में कई रूपो म शोध के अवसर खुले पडे हैं। इसमे सन्देह नहीं कि मानव स्वभाव को समझने के लिये समाज मनोविज्ञान का योगदान बडा महत्वपूर्ण है। पर इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि प्राप्त ज्ञान का सामान्यीकरण एव समन्वय किया जाय। इस महान काय का उत्तरदायित्व देश के मनोवैज्ञानिकों, सस्कृति एव मानव-शास्त्रियों, शिक्षाशास्त्रियों एव अथशास्त्रियो पर है। इस सम्बन्ध में विचारधारा एव जनमत दलीय प्रतिक्रिया, सास्थानिक परिवतन नेतृत्व एव नतिकता, राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध (तनाव आदि) सामान्य जनता को सूचना देने के साधन क्रियात्मक अनुसधान, सामाजिक वग तथा जाति व्यवस्था, आदि कई क्षेत्र हैं। अध्ययन के क्षत्र क बारे म विचार करते समय केवल यही आवश्यक नहीं है कि सामाजिक मनोवैज्ञानिक समस्याओं की व्याख्या की जाय पर महत्वपूण यह है कि यह मानव-अनुभव की प्रकृति समझने योग्य बनाये जो कि बाह्य सामाजिक स्थिति का वास्तविक दपण है। मूलत इम दृष्टिकोण से कोई भी मनोवैज्ञानिक विचार अनिवायत मनोवैज्ञानिक खोज एव अध्ययन से जुडा हुआ है। इस प्रकार अन्ततोगत्वा व्यक्तिगत एव सामाजिक मनोविज्ञान में कहीं भी कोई अन्तर नहीं है। सद्धान्तिक विवेचन के सिवाय आज के समाज मे समाज-मनोविज्ञान की व्यावहारिक भूमिका बडा महत्वपूण स्थान रखती है। क्रान्तिकारी परिवतनों एव उलझनों के समय तो इसका महत्व और भी बढ जाता है। सामाजिक परिवतन चाहे वह सहसा हो या योजनाबद्ध हो, आधुनिक समय की सामान्य बात हो गई है। इस परिवतन की वृद्धि म तक्नीकी विकास ने बहुत सहायता पहुचाई है। आज स्थिति यह हो गई है

कि बात की बात में कोई भी खबर संसार भर में फैल जाती है। दुगम पहाड़ो एव समुद्रो की गहराई पर भी काबू पा लिया गया है। इससे दूसरे देशों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि समझने की मनोवैज्ञानिक स्थिति न होगई है। जिस नये विचार की जानकारी मिलती है, उससे मनोवैज्ञानिक समायोजना करने के पूर्व ही समाज में सामाजिक एव तर्किक क्रांति आ सकती है। तभी सामाजिक परिवर्तनों की भारी क्रांति इस रूप में पड़ती है कि पूर्व में हुए परिवर्तनों के विपरीत समायोजन किया जाय। इन सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप मानव-जाति मनोवैज्ञानिक संकट के साथ नेस्तनाबूद हो सकती है। बिना नैतिक शक्ति एवं मनोवैज्ञानिक-सांस्कृतिक विकास का ध्यान रखे, मानव की विध्वंसात्मक शक्ति कई गुनी बढ़ गई है। कभी कभी ऐसा लगता है कि पूर्व किशोरावस्था के उच्छृंखल बालकों का एक दल अपने मस्तिष्क को परिपक्व मानते हुए एक दूसरे साथी को अंधेरे में कीचड़ में धक्का दे रहे हैं। पर प्रश्न यह है कि आज व्यक्ति अपने पूर्वजों की तुलना में इतना अस्थिर क्या हो गया है? क्योंकि व विश्व की प्रगति एवं समृद्धि का गला घोंट रहे हैं? अब परिवर्तन आवश्यक है क्योंकि वे परिवर्तन से मुँह मोड़ रहे हैं? परिवर्तन से होने वाले लाभों से व जानकारी क्यों नहीं करते है?

इस सन्दर्भ में सामाजिक मनोविज्ञान का अध्ययन नितान्त आवश्यक हो जाता है। पर कुछ मनोवैज्ञानिक व नेता लोग जिस प्रकार अर्द्ध पागल रोगी बीमारी का उपचार व कारणों को जानने का आग्रह किया करता है उसी प्रकार इस सामाजिक मनोवैज्ञानिक समस्याओं का विधिवत अध्ययन करना भूल जाते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि इस सम्बन्ध में विस्तृत शोध प्रारम्भ करने के पूर्व शिक्षाशास्त्रियों व नेताओं को इन समस्याओं की गहराई से परिचित कराया जाय। भारत जैसे देश में इस प्रकार की शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि यहां कई बार समाज विनाश का विकास अवरुद्ध होता हुआ देखा गया है।

सामाजिक मनोविज्ञान में शोध की आज भारत को बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि अन्य देश की तुलना में भारत में सामाजिक आर्थिक स्थिरता के लिए बड़ी-बड़ी महत्त्वकांक्षी योजनाएँ बनाई गई हैं। चूंकि सामाजिक परिवर्तन आयोजित रूप से लाने का निश्चय है अतः उस योजना का कार्यान्वयन विधिवत वैज्ञानिक तरीकों पर होना चाहिये अन्यथा इच्छित परिवर्तन न लाया जा सकेगा। सामाजिक विकास की बड़ी बड़ी योजनायें

जनसाधारण का विचार बदलने तथा उनका हृदय जीतने में असफल रही है। ऐसा माना गया था कि व्यक्ति उसमे अपना हाथ सहायता के लिए बढ़ायेंग पर वे मना होते हुए दीखे। जिस समय मदद की अत्य त आवश्यकता थी उस समय भी वे इन्कार हो गये। यह एक अनोखा सामाजिक विचार लगता है। उस पर प्रशासनिक अधिकारियों को शोध करना चाहिये कि ऐसा क्यो होता है। यदि ऐसा सही भी है तो सामाजिक मनोवज्ञानिक दृष्टिकोण से कोई आश्चय की बात नही है। एक समाज मनोवनानिक व्यक्तियो के परिवतन पर आग्रह के दृष्टिकोण पर शोध करने की अपेक्षा इस पर ध्यान देगा कि ऐसा क्यों होता है। एक ऐसे देश म जहा के रीति-रिवाज हजारो वर्षों स चला आई परम्पराओ से निर्देशित होत हैं यह आसान नही है कि सामा य जनता बिना सोचन विचारन के तरीका मे परिवतन किय सामाजिक राजनातिक विचारो म आद्योपा त बन जाय, वतमान सामाजिक स दभ में सोचने विचारन लग जाय। तकनीक व प्रशासक इनसे भि न विचार रखत हैं– वे सामा य व्यक्तियो मे परिवतन लाना चाहत है– ऐसी स्थिति म दोनो मिलकर काम नही कर सकते– दोनो म सहकार नही हो सकता। सामाजिक शिक्षण है मुख्यत सामाजिक विचार पर निभर करता है तथा सामाजिक विचार पुरातन व्यक्तियो के दृष्टिकोण से प्रभावित होता है। ऐसी स्थिति मे आवश्यक है कि कोई नव शिक्षण की प्रेरणा देने से पहल प्राप्त सामाजिक मनोवनानिक धरातन पर सविस्तार एव गहन अध्ययन किया जाय। यह अपने देश का दुर्भाग्य कहा जाना चाहिए कि अथशास्त्रियों का सभी समाज विज्ञाना पर प्रभाव है। व अथ शास्त्र के सिवाय अ य समाज विज्ञानो पर प्रशसनीय है दृष्टिकोण नही रखत। उनके सिद्धा तो व मात्यिकीय रेखा चित्रो स जिनका मानवीय समस्याओं से व सामाजिक वास्तविकताओ स कोई व्यावहारिक सम्ब ध नहीं है योजना बनाने वाले बुरी तरह प्रभावित हुए है और परिणाम देश के लिए खतरनाक सिद्ध हो रहा है। इन बातों पर समाज मानव शास्त्री समाज मनोवनानिक व समाज शास्त्री विश्वास नही करते तथा अन्त म व केवल जनता का दोष देते है कि उनकी बडी–बडी योजनाओ से उन्होने लाभ नही उठाया। सामाजिक परिवतन हेतु इस प्रकार के आयोजन स किसी भी देश पर खतरनाक प्रभाव हो सकते हैं। भारत जसे देश मे इसके विपक्ष मे प्रकल्पित फल प्राप्त हुए हैं और जिसमे भारत इन विकास के क्षत्र मे दो–तीन दशाब्दियो जितना पिछड गया है। इसलिए आवश्यकता है प्रशासको व अथशास्त्रियों को शिक्षित करने की जिन्होने जनता के स्वीकार करने योग्य

या अस्वीकार करने योग्य सही या गलत योजनाएं बनाकर, जनता पर लादी हैं और इससे जो देश की क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना असम्भव है।

सामाजिक परिवर्तन की सार्वभौम प्रवृत्ति, फोस्टर महोदय के अनुसार यह है कि व्यक्ति अपनी प्रगति के लिए आतुर दीखता है तथा अपने दुःख-दर्द कष्ट व दुर्भाग्य से शीघ्र पिंड छुड़ाना चाहता है। बाद में हुए विकास से ऐसा लगता है कि वे उन लाभों के लिए भी जागरूक नहीं हैं जो उनकी आंखों के सामने स्पष्ट है। स्वभावतः अति महत्त्वपूर्ण विघ्न या बाधा फिर से विचारणीय बन रही है। इसलिए परिवर्तन की क्रिया में सांस्कृतिक शून्य पैदा हो गया है और उससे व्यक्ति अपने उद्देश्य के लिए अविश्वसनीय उत्तमता से अपनी प्रत्येक मूलता के साथ उनकी ओर सतत अग्रसर हो रहे हैं।

समाज वैज्ञानिकों जिनमें सामाजिक मनोवैज्ञानिक भी सम्मिलित हैं को सामाजिक परिवर्तन का मूल सिद्धान्त याद रखना चाहिये कि हम में से प्रत्येक परिवर्तन के लिए प्रेरणा का परिवर्तन की स्थिरता से विरोध करता है।' प्रेरणा व स्थिरता को निश्चित करने वाले ये तत्त्व सांस्कृतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक हैं। वे मूल्यों के साथ जुड़े हुए हैं जो हमारी संस्कृति के सूचक हैं, अपने समूहों या विभिन्न समूहों के सदस्यों के सम्बन्धों की प्रकृति से भी जोड़ा जा सकता है यह सम्भव है कि उन्हें (भूलवश) किसी अन्य समूह के साथ जोड़ लिया गया हो उदाहरण के लिए एक देश के तकनीकी सलाहकार तथा दूसरे देश के ग्रामीण। इस प्रकार के और भी कई उदाहरण मिल सकते हैं। २०वीं सदी से पूर्व विज्ञान काल की सभ्यता के साथ व्यक्ति विशेष की मनोदशा एवं उसके स्थान पर विचार करना चाहिए। सभी सामाजिक मनोविज्ञान वेत्ताओं सामाजिक मानव शास्त्रियों समाज शास्त्रियों एवं अर्थशास्त्रियों के संयुक्त प्रयासों से परिवर्तन लाने वाली प्रेरणाएं उसकी स्थिरता उसके विघ्नों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाना चाहिये। लेकिन दुर्भाग्य है कि सामुदायिक विकास योजनाओं के पूर्व इस प्रकार के कोई वृहत् स्तर पर संयुक्त प्रयास नहीं किये गये। किसी किसी शोध से यह पता लगा है कि हरिजन उच्च अध्ययन नहीं करना चाहते। पर बिना हरिजनों का मस्तिष्क बदले बिना उनके विश्वास व दृष्टिकोण में परिवर्तन लाये उनके लिए उच्च अध्ययन का प्रोजेक्ट निश्चित रूप से असफल होगा। इस प्रकार के और भी कई उदाहरण देखे जा सकते हैं जो यह स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति पूर्व संचित आये विचारों में परिवर्तन के लिये

तैयार नहीं है।

आजकल पाय जाने वाले दृष्टिकोणों में व परिवतनो पर मन-सामाजिक शोध करने के साथ ही साथ कुछ और भी शोधकों द्वारा मनोवैज्ञानिक क्षत्रों म शोध की जानी चाहिये, जिससे कम से कम समय मे वांछित परिवतन लाये जा सकें। ग्रामीण व नगर, व्यावसायिक व कृषि, शैक्षिक व राजनीति के क्षेत्र मे नये नेतत्व के विकास के बारे में शोध का अपना महत्वपूण स्थान है। सदेशवाहन व सचार के साधनों की खोज भारत मे शून्य के बराबर है। इस प्रकार की खोजों से सामाजिक परिवतन में बडी मदद मिलती है। सामुदायिक या सामाजिक परिवतन की समस्याएँ दलीय प्रतिक्रियाओं में जुडी हुई हैं जिन पर मनोवैज्ञानिकों का बहुत कम ध्यान गया है। सामाजिक दृष्टिकोणों व प्रणाली क पुन परिचय के लिये सामाजिक वग व स्थान के रूप में, सामाजिक विचार व्यक्तिगत या दल के रूप म व्यवहार व स्थान अध्ययन व शोध के लिये पर्याप्त क्षेत्र प्रदान करता है। भारत में भिन्न भिन्न सामाजिक स्थितियो मे आकस्मिक मानवीय सबध शोध के अवसर प्रदान करते हैं, जिनमें विभिन्न भाषाओं एव विभिन्न वर्गों एव जातियो के व्यक्तियों के पूवग्रहो का परीक्षण उनकी उत्पत्ति एव विकास को सम्मिलित किया जा सकता है। राष्ट्रीय भावात्मक एकता के लिये इस प्रकार की खोज प्रत्यन्त महत्वपूण है। पर यह दुभाग्य ही कहा जाना चाहिये चाहिये कि इस क्षत्र म भी कोई विधिवत् काय नही किया गया है। विकासमान समाज के इन आधारों पर मनोवज्ञानिकों ने भी ध्यान नहीं दिया है और न आयोजकों के सम्मुख इस समस्या को रखा गया है। इसके फलस्वरूप आर्थिक क्षत्र मे परिवतन की शुरूआत मात्र भी नहीं हुई है और यह निश्चित रूप से सचेत होकर कहा जा सकता है कि पचवर्षीय योजनाओं पर जनतन्त्र व समाजवाद का कोई वास्तविक प्रभाव नहीं है। प्रो० रथ भुवनेश्वर उत्कल विश्वविद्यालय की शोध से यह पता लगा है कि सन १९५२ से ६० के बीच सामाजिक सांस्कृतिक आर्थिक, राजनैतिक समस्याओं के प्रति विद्यार्थियों के दृष्टिकोणों मे सोचने विचारने के तरीकों में कोई परिवतन नही पाया है। निश्चित व्यक्तियों की यह स्थिति है तो अशिक्षितों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि केवल कुछ ही व्यक्तियों को छोडकर जिनमे योजना बनाने वाले पूर्णकालिक अधिकारी भी सम्मिलित हैं जिनको रोटी-रोजी देने के लिए योजना बनाने के लिए ही मिली हुई है सामान्य जनता को योजना

के फलस्वरूप होने वाले सामाजिक परिवर्तनों का ज्ञान ही नहीं है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत की वर्तमान स्थिति को दृष्टि मे रखते हुए मनोवैज्ञानिको व समाज शास्त्रियो को बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है तथा सक्रमणकाल म तो उनका उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। समय आने पर उन्हे अपनी आवाज उठाना चाहिये तथा प्रशासको को यह सोच विचार करने के लिय विवश करना चाहिय कि सभी क्षेत्रो मे सामाजिक अध्ययन, शोध के प्रति लापरवाही एक बहुत बडी भूल है अपराध है। सामान्य जनता म क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन लाये जायें। इसके पहले यह आवश्यक है कि समाज का नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों की विचारधाराएँ बदली जायें– दृष्टिकोणो मे परिवर्तन लाये जायें। उन्हें यह जान लेना चाहिये कि समाज विज्ञान मानव समायोजन के लिये बहुत लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं न कि प्राकृतिक विज्ञान या न कि प्राविधिक साहित्य। यह सम्भव है कि प्रारम्भ म समाज विज्ञान का योगदान कम हो या उसके योगदान की गति धीमी हो पर उसके लिए मानवीय प्रतिक्रियाओं तथा समायोजन सम्बन्धी सिद्धान्त समझना चाहिये। यदि मनोवैज्ञानिक व्यक्तियों में विश्वास पैदा कर सके तो सामान्य जनता आयोजना में मदद करेगी, जिससे भारत म आयोजना अधिक सफल हो सकेगी। फलत आयोजन में सामान्य व्यक्ति मन सामाजिक रूप म अधिक भाग ले सकेंगे तथा इस भाति आयोजको का श्रम सोद्देश्य एव पुरस्कृत हो सकेगा।

इसके लिये नये समाज का निर्माण हो परिवर्तित क्रान्तिकारी, सामाजिक सांस्कृतिक तथा दार्शनिक तरीको से व्यवहार हो हर क्षेत्र म प्राप्त वर्तमान समाज की अतीत की परम्पराओं पर विधिवत शोध की आवश्यकता है। अपने तत्सेवक्चार ज्ञान से मनोविज्ञानिकों को प्रशासकों एव समाज के नेतृत्व करने वालों को मदद करनी चाहिये। इसके लिये प्रचार विचार–गोष्ठी दल-अध्ययन भाषण जिनमें सामान्य शिक्षा की मदद भी जानी चाहिये जिससे कि कम से कम समय म नई समाज व्यवस्था एव नई पीढ़ी का निर्माण हो सके।

— • —

—. 'ब्रेन ड्रेन एक विचारणीय बिन्दु' —

— ○ ○ —

देश के विकास तथा समृद्धि मे रुचि रखने वाला प्रत्येक नागरिक इस बात से चिंतित है कि उच्च शिक्षा प्राप्त प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों, डाक्टरों तथा अन्य तकनीशियनों म विदेशों मे काम करने का आकर्षण निरंतर बढ़ता जा रहा है।

मोटे रूप मे राष्ट्रीय दृष्टिकोण के अनुसार यह कहा जा सकता है कि ब्रेन ड्रेन किसी भी राष्ट्र के लिए हानिकारक है यदि वह उस देश के शेष नागरिकों के सम्पूर्ण कल्याण (Gross Welfare) को कम करता है। इसमे कोई अर्थ नहीं कि भारत से बाहर जाने वालों के सम्पूर्ण कल्याण की मात्रा बढ़ रही है। इसी को राष्ट्रीय विचारों की संज्ञा दी गई है।

साधन सम्पन्न देश निर्धन देशो के प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियो को हर प्रकार का लालच देकर हर कीमत पर अपने यहां बुलाते हैं तथा इस भांति धनी देश अधिक धनी बनते चले जाते हैं जो केवल अपने स्वार्थों की ही पूर्ति में लगे रहते हैं तथा वे निर्धन देशों का परवाह नही करते हैं। इतिहास साक्षी है कि विदेशी हमारी वस्तुएं खरीदते थे तथा उसी रूप में अब वे हमारी प्रतिभा खरीदते हैं। वैसे आंकड़ो से भी यह बात प्रमाणित होती है, क्योंकि बाहर जाने वालों म ३६ प्रतिशत विज्ञान विषयों में प्रथम श्रेणी में स्नातकोत्तर या उससे ऊँची उपाधिधारी है, ६५ प्रतिशत के पास पी-एच० डी० की उपाधि है तथा केवल ३ प्रतिशत तृतीय श्रेणी म उत्तीर्ण व्यक्ति हैं। इस भांति ब्रेन ड्रेन से देश म होने वाला खर्च प्रति विद्यार्थी बहुत अधिक बढ़ जाता है क्योंकि प्रभावशाली शिक्षक योग्य डाक्टर, अनुभवी इंजिनीयर, दक्ष तकनीक बात की बात में पलक झपकते ही तयार नहीं हो जाते। योग्य व्यक्तियो की बहुत अधिक संख्या को तयार करने में सदियाँ लग जाती हैं।

प्रतिभा सम्पन्न एवं प्रशिक्षित व्यक्ति के बाहर जाने से देश के शेष निवासी भी हानि उठाते हैं यदि बाहर गये व्यक्ति के कारण उनकी सम्पूर्ण

आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है या वह बुरी तरह से घट जाती है। (यहाँ इस बात पर थोड़ी देर विचार न कीजिये कि वे बाहर जाने से पूर्व भी देश के विकास में पूर्ण योगदान नहीं कर रहे थे या उपयुक्त राशि में कर नहीं चुका रहे हैं।) यह निश्चित रूप से देश को हानि हुई है यदि बाहर जाने वाले व्यक्ति अपने लिए सरकार द्वारा किये गये सार्वजनिक व्यय के लिए भुगतान न कहीं की सरकार को उनसे अधिक कर मिल रहा है तथा उनको अपनी सेवाओं के बदले Marginal Social Product के आधार पर अधिकतम पारिश्रमिक दिया जा रहा था। ऐसी स्थिति में उपयुक्त लगता है कि देश के आयोजक सार्वजनिक व्यय तथा करारोपण पर पुनर्विचार करें।

प्रतिभाशाली व्यक्ति आर्थिक योगदान न भी कुछ अधिक देश के विकास में योगदान करता है। यह कुछ अधिक योगदान वे तभी कर सकते हैं जब कि वे स्वदेश में निवास करें। यदि वे देश के बाहर चले जाते हैं तो देश के विकास में उनका कोई योगदान नहीं होता। बाहर जाने वाला व्यक्ति वहाँ अधिक रुचि से काम करता है, निश्चय ही वह अधिक उपार्जन भी करता है अपना ज्ञान बढ़ाता है नई तकनीक प्राप्त करता है लौटने पर उनके ज्ञान का स्वदेश को लाभ होता है तथा अधिक प्रगतिशील दरों पर उनकी आय पर करारोपण करके प्राप्त आय को देश के विकास में लगाकर देश के सम्पूर्ण कल्याण और भी अधिक बढ़ाया जा सकता है। यह सम्पूर्ण कल्याण पूर्व के सम्पूर्ण कल्याण से भी अधिक होगा क्योंकि इस प्रकार प्राप्त राशि को गरीबों के लिये सार्वजनिक व्यय के रूप में व्यय किया जा सकता है तथा निर्धनों से प्राप्त होने वाले करों को प्रतिगामी बनाया जा सकता है। खाना कपड़ा तथा अन्य अनिवार्य आवश्यक वस्तुओं को उनके लिये सस्ती कीमत पर उपलब्ध करवाया जा सकता है तथा सम्पन्नों के प्रयोग की सभी वस्तुओं पर भारी कर लगाये जा सकते हैं। पर जिस देश की अधिकांश जनता अशिक्षित है तथा मुट्ठी भर आदमी ही शिक्षित हैं बाहर जा सकते हैं तो सम्पूर्ण कल्याण का बढ़ना सन्देहपूर्ण हो सकता है फिर यह भी सदैव आवश्यक नहीं है कि सरकार के हर खर्चे से विपन्नों का कल्याण बढ़े ही। सम्भव है ऐसा न भी हो तथा सम्पन्नों को भी उतना ही लाभ हो जाय। ऐसी स्थिति में भी सम्पूर्ण कल्याण नहीं बढ़ेगा। लेकिन यदि शिक्षित व्यक्तियों को बाहर नहीं जाने दिया गया तो उनसे होने वाले लाभ से भी देश वंचित रहेगा। इस प्रकार की हानि की पूर्ति के लिए न केवल करों का पुनर्निर्धारण ही आवश्यक है बल्कि पढ़ लिखे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति के

निकास (ब्रेन ड्रेन) पर उस पद पर उसी के समान योग्यता वाला व्यक्ति लाया जाना चाहिये।

इसके विपरीत मोटे रूप में कहा जा सकता है कि अभी तक पढ़े लिखे व्यक्तियों के बाहर जाने से भारत का काम रुका नहीं है वरन् यदि ऐसा नहीं होता तो भारत में पढ़े लिखों की बेकारी की समस्या और भी उग्र होती क्योंकि भारत में शिक्षित व्यक्ति जरूरत से बहुत ज्यादा हैं तथा सभी पढ़े लिखे व्यक्तियों की सीमान्त उत्पादकता कोई आवश्यक नहीं है कि नकारात्मक ही हो। बाहर जाने वाले भी घटिया श्रेणी के तथा स्वदेश में कार्य करने वाले उच्च श्रेणी के व्यक्ति भी हो सकते हैं। यह भी एक गम्भीर प्रश्न है कि जो व्यक्ति बाहर जा रहे हैं क्या उनसे अधिक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति भारत में नहीं है? यदि है तो उनका कितना उपयोग हो रहा है? यदि नहीं हो रहा है तो सरकार इस सम्बन्ध में क्या कदम ले रही है?

भारत में ब्रेन ड्रेन को विस्तृत अर्थों में लिया जाना चाहिए। उसका उपचार देश की आवश्यकता के अनुसार तथा उपयुक्त गुणों वाले व्यक्तियों को ही शिक्षित कर, भारत से स्थायी या अस्थायी निवास हेतु बाहर जाने के नियमों में संशोधन तथा पाश्चात्य शिक्षा के कार्यक्रमों को पुनः निर्धारित कर हल निकाला जा सकता है। विकासोन्मुखी देशों के वैज्ञानिकों, चिकित्सकों तथा इंजीनियरों की जरूरत आँकी जाय तथा उसी अनुपात में उपयुक्त व्यक्तियों को बाहर जाने की स्वीकृति दी जाय। देश के नवयुवकों की महत्वाकांक्षाओं को ध्यान में रख कर शिक्षा की व्यवस्था हो, साथ ही देश के सम्भावित विकास को ध्यान में रख कर रोजगार के अवसरों का अनुमान लगाया जा सकता है। इसके लिये उत्साहवर्द्धक काम की शर्तें, स्थितियाँ तथा वातावरण प्रदान किया जाय नवयुवकों को आवश्यक प्रतिष्ठा दी जाय, आयोजन इस प्रकार का हो कि हर क्षेत्र में हानि कम से कम हो। न केवल व्यक्तिगत बल्कि इस राष्ट्रीय समस्या के हल के लिए चोटी के शिक्षाविद्, अर्थशास्त्री जनसंख्या विशेषज्ञ, राजनीतिज्ञ तथा आयोजक को एक स्थान पर बैठ कर रोजगार की सुदूरगामी सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर शीतल मस्तिष्क से सोच कर हल निकालना चाहिये। शिक्षा जगत में किये गये प्रयत्न कल्पनाओं पर नहीं बल्कि वास्तविक अनुमानों पर आधारित होने चाहिये।

औद्योगिक एवं वैज्ञानिक शोध परिषद् ने १९५८ में वैज्ञानिकों के एक पूल की रचना की। इसमें प्रतिभावान बाहर से लौटे हुए एवं सावधानी से

चुने हुये वैज्ञानिकों को ४०० से ७०० रुपये प्रति माह वेतन दिया जाता है जब तक कि उन्हें कोई उपयुक्त रोजगार या पद न मिल जाय तथा ऐसे व्यक्तियो को विश्वविद्यालयों, चिकित्सालयो, सरकारी कार्यालयो, शोध संस्थानो मे काय करने का अवसर दिया जाता है। १६५८ से १६६६ तक की अवधि म ४६४६ व्यक्तियो का चुनाव हुआ पर तु २०१२ ने ही काय भार सम्भाला उनमे से ६५ प्रतिशत को स्थायी रोजगार मिल गया। २८ प्रतिशत अभी तक काम कर रहे हैं तथा ७ प्रतिशत किन्हीं अपने निजी कारणो से छोड कर चले गये। इस प्रकार की व्यवस्था किसी भी देश के लिये सफेद हाथी तो है पर प्रतिभावान व्यक्तियों को रोके रखने का एक तरीका अवश्य है तथा इस दृष्टि से इसका पद बढाया जाना देश के हित मे उपयोगी लगता है।

औद्योगिक एव वैज्ञानिक शोध परिषद के माध्यम से देशके लिए प्रशिक्षित व्यक्तियो की आवश्यकताओ का पता लगाया जाय तथा उन्हे ही बाहर जाने की स्वीकृति दी जाय जो भारत की जरूरतो से सम्बन्धित विषय पढ प्रशिक्षण प्राप्त करें। कुछ समय से Association for Service t Indian Scholars and Technicians (ASIST) काय क रहा है। भारत की आवश्यकताओ के अनुसार यह बाहर पढ रहे भारती व्यक्तियो से साक्षात्कार करता है तथा उन्हे सर्विस का, रोजगार का विश्वा दिलाता है। इस एसोसियेशन के सीमित साधन है। इसलिए यह प्र प्रशसनीय काय नही कर पाया है। सरकार को इसे अधिकाधिक सहयो करना चाहिये, अनुदान देना चाहिये।

भारत मे ही प्रशिक्षित एव उच्च शिक्षित व्यक्ति बेकार रहते हैं। इ स्थिति म बाहर से रोजगार प्राप्त व्यक्तियों को बुलाने की बात समझ नहीं आती। आज भी कई जगह गावो म डाक्टर नही हैं इसका अ अनिवायत यह नहीं है कि डाक्टरो की कमी है। वे गाँवो म काय न करना चाहते। वे शहरो म रह कर अधिक पसा कमाते है। डाक्टरो पाचवा भाग गाँवो में है जबकि जनसख्या का पाचवा भाग या उससे कम शहरो में बसता है कैसी उपहासास्पद स्थिति है? इतना ही न स्थिति और भी गम्भीर है। समग्र रूप से भारत म ५८०० व्यक्तियो लिये एक डाक्टर उपलब्ध है। पर शहरो मे १५०० व्यक्तियो के लिये त गावो म २३००० व्यक्तियो के लिये एक डाक्टर उपलब्ध है। ल दन ८५० व्यक्तियों के लिये एक डाक्टर उपलब्ध है, भारत में भी दिल्ली,बम्ब

मद्रास तथा कलकत्ता में यही अनुपात मिल सकता है । शायद यही असन्तुलित विभाजन ब्रेन-ड्रन का कारण है । चिकित्सा विज्ञान के व्यक्तियों का जरूरत के अनुसार वितरण हो, क्या इसके लिये शहरी तथा देहाती वेतनमान पथक पृथक बनाये जा सकते हैं ? क्या एसा प्रजातान्त्रिक व्यवस्था मे सम्भव है? यदि सम्भव हैं तो कितने समय तक ?

यदि व्यक्तियो को योग्यता के दष्टिकोण से कम वेतन दिया जा रहा है तो उन्हें पूरा वेतन दिया जाना चाहिये । डाक्टर को डाक्टर की जगह तथा इन्जिनीयर को इन्जिनीयर की जगह काय दिया जाय तथा उन्हीं का वेतनमान दिया जाय न कि उनको क्रमश कम्पाउण्डर तथा ओवरसीयर का काम व वेतन दिया जाय । उदाहरण के लिय परिवार नियोजन के कार्यों मे लगे डाक्टर को अन्य डाक्टर से कम वेतन दिया जाता है । दोनों की योग्यताए समान है उनके वेतनमान मे तत्काल सुधार किया जाना चाहिये ।

जिस क्षेत्र के व्यक्ति बाहर जा रहे हो, उस क्षेत्र मे अधिक भर्ती की व्यवस्था हो तथा बाहर जाने वालों पर प्रतिबन्ध लगाया जाय । बाहर से अनुभव प्राप्त कर लौटने वालो का अधिक लाभप्रद उपयोग होता है तो बाहर जाने पर प्रतिबन्ध लगाना भी अनुपयुक्त होगा । इसको हल करने के लिये दो बातें हो सकती है कि व्यक्तियो के बाहर रहते समय ही उन्हे नियुक्ति पत्र भिजवा दिया जाय तथा देश में प्राप्त व्यक्तियो को उपयुक्त काम के लिए उपयुक्त पारिश्रमिक दिया जाय । इससे बाहर से लौटने वालों को बेकार बैठन या अनुपयुक्त वेतन प्राप्त करने का डर भी नहीं रहेगा ।

बाहर जाने वाले व्यक्तियो को केवल प्रति नियुक्ति पर भेजा जाय,उन्हें अल्प काल के लिय ही भेजा जाय या वहा रखने की अवधि निश्चित हो । ऐसा करने से समय समाप्त होने पर स्वदेश लौटना ही होगा । विदेशी सरकार जिस व्यक्ति को जिस काम के लिए बुलाय वह काम समाप्त होने पर उसे पुन स्वदेश लौटने का आदेश दिया जाय एसा करने से व्यक्ति अपनी मातृभूमि को नही भूला पायेगा । ऐसा माना जा सकता हैं तथा व्यक्ति लौटने तक अपने ज्ञान म भी वद्धि करेगा । यही कारण है कि जापान म ब्रेन-ड्रेन जैसी कोई समस्या ही नहीं है । क्योकि वहा के वज्ञानिक बाहर जाते तो है पर प्रति नियुक्ति पर तथा एक *निश्चित अवधि के व्यतीत होते हा लौट आते है ।*

विश्व के कुछ देश मिल कर विशिष्ट योग्यता प्राप्त व्यक्तियो की अदला-बदली भी कर सकते हैं तथा उन्ह निश्चित काम व निश्चित अवधि के लिए बुलाया जा सकता है । कई सस्थान, विश्वविद्यालय, व्यवसायी

अपने यहां अपने निहित स्वार्थों के कारण पद रिक्त रखते है। सरकार को उनके साथ कड़ाई का व्यवहार करना चाहिये तथा स्पष्ट रिक्त स्थान उपलब्ध होने पर बाहर से लौटने वाले व्यक्तियों को समय समय पर उपयुक्त पद एव उपयुक्त वेतन पर स्थायी नियुक्तियां दे देनी चाहिये।

कई निजी संस्थान सेवा निवृत्त व्यक्तियों को फिर से काय दे देते हैं (अल्प वेतन पर ही सही) नियुक्तिया दे देते है। इससे नौजवानों के लिये रास्ते बन्द हो जाते हैं उनके लिये पदोन्नतियों के अवसर उसी अनुपात में कम हो जाते है। स्वय सरकार भी कुछ विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियों को देर से सेवा निवृत्त करती है या उनको साधारण व्यक्ति से अधिक समय तक सेवा मे रखती है। इससे नये खून के लिये प्राप्त पदो की संख्या कम हो जाती है, एक जनतन्त्रीय देश मे सरकार का ऐसा व्यवहार कहां तक उपयुक्त है? वर्तमान स्थितियों मे इस पर भी पुर्नविचार किया जाना चाहिये।

अन्त मे यह महत्वपूर्ण है कि बाहर जाने वाले व्यक्तियो को नकारात्मक साधनो से रोकना निश्चित रूप से अवाछनीय है। व्यक्तियो मे इस बात का ज्ञान तथा विवेक पदा किया जाना चाहिये कि वे अपनी मातृभूमि जहां पढे लिखे खेले कूदें उस देश की भी सेवा करें। यह भी देश की बहुत बड़ी सेवा होगी यदि वे अपने देशवासियो के भले उनके खुशहाल एव समृद्ध जीवन के लिये काय कर सकें त्याग कर सकें। देश ने उनकी शिक्षा दीक्षा पर व्यय किया है योग्य बनाया है अत उनका भी नतिक कर्तव्य है कि वे स्वदेश की सेवा करें। एक अन्य विचार धारा के अनुसार व्यक्तियो को निकास(ब्रेन ड्रेन) के लिये शिक्षा दी जाती है। भारत मे केरल सरकार की यही प्रवृत्ति रही है। काय कर रहे वयस्कों पर कर लगा कर बच्चो की शिक्षा पर खच किया जाता है। राज्य कोष से शिक्षा का खच किया गया है तो राज्य उन व्यक्तियो का अधिकाधिक लाभप्रद उपयोग करने का भी अधिकारी हैं। यह दुर्भाग्य ही होगा जबकि पढ लिखकर कर चुकाने की स्थिति मे आया हुआ व्यक्ति देश के बाहर चला जाय।

इसके विपरीत Grubel तथा Scott के अनुसार ब्रेन ड्रेन से विश्व का समग्र कल्याण बढ़ता है। पर Thomas इस विचार की आलोचना करते हुए कहते हैं कि इससे पिछड़े देशों के सामने विकास के लिए कई बाधाए आती है। समस्याए तब और भी उग्र बन जाती है जबकि कोई देश अपनी गरीबी या मन्द विकास के कारण विदेशों से विशेषज्ञों की

सेवायें प्राप्त नहीं कर सकता तथा स्वदेश के पढ़े लिखे एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों को देश में ही रोके रखने के लिए उपयुक्त रोजगार नहीं दे सकता। समस्या के महत्व को ध्यान में रखते हुए उपचारों पर विस्तार से विचार करना उपयुक्त लगता है।

ऐसे व्यक्ति जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त होने से विदेशी विश्व विद्यालयों शोध संस्थानों तथा सरकारों से व्याख्यान देने हेतु आमन्त्रित किये जायें तो उन्हें इस लेख के क्षेत्र से बाहर समझना चाहिए। ऐसे विद्वान् व्यक्तियों का लाभ सम्पूर्ण विश्व को मिलना चाहिए, न कि किसी एक देश को, इन्हें विश्व नागरिक की संज्ञा दी जा सकती है। सामाजिक कल्याण तथा विश्व नागरिकता के दृष्टिकोण से यह न्याय संगत है।

पदोन्नति का आधार

– ०० –

लेखक की एक शोध[1] के अनुसार पचायत समितियों म सेवा करने वाले शिक्षको मे से ८०% तृतीय श्रणी म उत्तीर्ण शिक्षक हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे हुई एक शोध से भी ऐसे ही निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं। काफी समय पूव भूतपूव केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री डॉ कालूलाल श्रीमाली ने कहा था कि स्कूलो मे काम करने वाले अधिकाश शिक्षक तृतीय श्रणी म उत्तीण होते हैं तथा प्रथम श्रेणी मे उत्तीण व्यक्ति स्कूलो म अध्यापन काय के लिए आते ही नही हैं।

प्रखर बुद्धि एव प्रतिभावान् शिक्षक सरकारी विद्यालयो मे अध्यापन काय के लिए आकृष्ट हो तथा अध्यापन काय म रत शिक्षक नौकरी छोडकर अन्य काय ग्रहण न करें इसके लिए आवश्यक है कि उनके लिए पदोन्नतियों की उचित व्यवस्था हो। फिर भी यह तो निर्विवाद रूप से मानना ही पडेगा कि सभी कायरत शिक्षक सर्वोच्च पदो पर नही पहुच सकते– क्योंकि उच्च पदों की सख्या मुट्ठी भर होती है। उदाहरणाथ–राजस्थान मे अन्य प्रान्तो की भाति शिक्षक निदेशक तो कभी बन ही नही सकते (क्योंकि राज्य सरकार के नियमानुसार राजस्थान मे शिक्षा निदेशक के लिए I A S उपाधिधारी व्यक्ति ही योग्य है।) उससे नीचे के पदो तक वे पहुच सकते हैं जिनकी सख्या अल्प है सयुक्त निदेशक के २–३ ही पद हैं। उपनिदेशक के भी महिलाओ सहित ६ ७ पद हैं इसी भाति विद्यालय निरीक्षक के भी २५ ३० पद ही हैं। कायरत शिक्षकों की सख्या हजारो तक पहुचती है। इन हजारों शिक्षकों मे से इन पदो पर लगभग ४० शिक्षकों को ही तो पदो

---

१. अमृतलाल बापनी, प्र.वापनी, राज. में–प्राथमिक शिक्षक एक विश्लेषण लोकन (विद्याभवन सोसायटी द्वारा प्रकाशित) उदयपुर जनशिक्षण वष २५ अक ५, मई १९७० पृष्ठ १६

न्नति हो सकती है।" ऐसी स्थिति मे स्पष्ट है कि कई व्यक्ति तो शिक्षक के रूप मे ही सेवानिवृत्ति प्राप्त करेंगे। तब आवश्यकता इस बात की है कि जिन शिक्षकों को पदोन्नति नही मिली है उन्हें यह अनुभव कराया जाना चाहिए कि उन्हें ऊटपटांग ढंग से पदोन्नति से वंचित नहीं रखा गया है और न ही पदोन्नत शिक्षकों को अधिकारी की इच्छा से ही पदोन्नति का अवसर मिला है। यदि अधिकारी अपनी इच्छा से ही बिना किसी आधार या सिद्धान्त के पदोन्नति करेंगे तो शिक्षकों में नैतिक बल की कमी आ जायगी, फलत वे शालाओं में काम करने से भी जी चुरायेंगे तथा उनका असन्तोष द्विगुणित हो जायगा। इससे बचने के लिए आवश्यक है कि पदोन्नतियाँ ठोस आधारों पर हों।

सामान्यतया पदोन्नति के दो सिद्धान्त व्यवहार में प्रचलित हैं यथा

१ वरिष्ठता (Seniority) तथा
२ योग्यता (Merit)

वरिष्ठता

इस सिद्धान्त के अनुसार पदोन्नति का आधार यह है कि सम्बन्धित शिक्षक कब से सेवा कर रहा है? इस प्रकार जिस शिक्षक का सेवाकाल जितना अधिक लम्बा होगा, उसकी पदोन्नति उतनी ही शीघ्र होगी। इसे दूसरे शब्दों में यों भी कहा जा सकता है कि एक शिक्षक को अन्य शिक्षकों की तुलना मे उच्च वेतन स्तर या उच्च श्रेणी की वेतन शृंखला में इसलिए पदोन्नति का लाभ दिया जाता है कि उसने अन्य शिक्षकों की तुलना में अधिक समय तक सेवा की है। इस प्रकार वरिष्ठ व्यक्ति को पदोन्नति का लाभ मिलता है।

वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति के लिए तर्क

१ वरिष्ठता एक वस्तुगत एवं यन्त्रवत तथ्य है, इसे गोपनीय नहीं कहा जा सकता। पदोन्नति के समय इसे दृष्टि से ओझल नहीं किया जाना चाहिए। इससे दो शिक्षकों के बीच अन्तर को स्पष्ट देखा जा सकता है अत *पदोन्नति के परिणाम के दायित्व को मापने की जरूरत नहीं रहती है।*

२ इस सिद्धान्त के अनुसार हर शिक्षक को पूर्व निश्चित मानदण्ड के अनुसार देर सबेर क्रमश पदोन्नति का अवसर मिल जाता है। ऐसी स्थिति में यह सही व न्यायपूर्ण सिद्धान्त है। इससे शिक्षकों में सद्भाव तथा नैतिक बल का विकास होता है।

३ पदोन्नति के समय वरिष्ठता सिद्धांत का दृढ़ता से पालन करने पर राजनीतिज्ञों के हस्तक्षेप को स्थान नहीं मिलता है।

४ वरिष्ठ व्यक्ति दीर्घानुभवी होता है तथा अधिक अनुभव पदोन्नति के लिए मापदण्ड है।

५ शिक्षकों को ज्ञात रहता है कि उनका वरिष्ठताक्रम क्या है तथा सम्भवत कब तक उनकी पदोन्नति हो सकेगी। यह परिणामों का स्पष्ट ज्ञान अच्छे शिक्षकों को सरकारी सेवा मे आने को आकृष्ट करता है।

६ वरिष्ठता सिद्धान्त इतना स्पष्ट व सरल है कि शिक्षकों मे पारस्परिक जलन तथा द्वेष की भावना उत्पन्न होने का कोई कारण नहीं रह जाता है। और

७ अन्तिम पर महत्त्वपूर्ण है कि सभी शिक्षक इसी के पक्ष में हैं।

पदोन्नति का वरिष्ठता सिद्धान्त सभी दोषों से मुक्त हो, इसमे कोई कमी न हो, आलोचना से मुक्त हो, ऐसी बात भी नहीं है। वरिष्ठता के सिद्धान्त में कई कमियां हैं जिनको लेकर यह शिक्षक समाज मे भयकर असन्तोष का कारण बना हुआ है। असन्तोष के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं

१ यह सिद्धान्त केवल वरिष्ठता सेवा-काय की अवधि पर ही विचार करता है। योग्यता की वरिष्ठता के सामने बलि दे दी जाती है। ऐसी स्थिति म यह अनिवाय रूप से आवश्यक नहीं है कि वरिष्ठ शिक्षक सदैव कनिष्ठ की अपेक्षा योग्य ही होंगे। अर्थात् वरिष्ठ व्यक्ति योग्य ही हों यह कोई अनिवाय शर्त नहीं है।

२ इस सिद्धान्त के अनुसार यह भी निश्चय नहीं किया जा सकता कि हर शिक्षक, शिक्षा निदेशालयान्तगत उच्च/उच्चतम पदों पर पहुंच ही जायगा तथा वह वहा उचित अवधि तक बना भी रहेगा।

३ यदि पदोन्नति के लिए केवल वरिष्ठता ही एकमात्र आधार रहा तो वे सुधार का कोई प्रयत्न नहीं करेंगे। कारण कि राजकीय तन्त्र में सभी शिक्षक सोचते हैं कि वरिष्ठता की पंक्ति में खड़े हैं समय पर पदोन्नति हो ही जायगी तथा यही सोच कर वे बराबर काय करना बन्द कर देते हैं।

४ वरिष्ठता तथा उम्र का सयोग कोई अनिवाय नहीं है। खास करके उस क्षेत्र म जहा कुछ पदों पर सीधी भर्ती होती है तथा कुछ पदों पर पदोन्नति के आधार पर। यदि कोई नवयुवक सीधी भर्ती से किसी अपेक्षाकृत अधिक उम्र वाले कमचारी के ऊपर रख दिया जाय तो स्थिति बड़ी

उपहासास्पद हो जाती है। कई बार व्यवहार में देखा जाता है कि कर्मचारी उम्र बढने के साथ जीवन की प्रतियोगिता के आदान प्रदान मे पिछड जाते हैं फलत वे छोटी-छोटी बातों पर भी असहिष्णु या क्रोधी हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में अधीनस्थ कमचारियों की कायक्षमता का पूरा-पूरा उपयोग नहीं होगा, उनको प्रोत्साहन नहीं मिलेगा तथा वे निरुत्साही हो जायेंगे। यही बात महत्वाकाक्षी लोगा पर लागू होगी क्योंकि उनके सम्मान,व्यक्तित्व, साहस, आत्म विश्वास प्रगतिशील दृष्टिकोण को प्रोत्साहन देने वाले तत्त्व समाप्त हो जायेंगे। इससे एक इस प्रकार का दृष्टिकोण पैदा होता है कि "जो है, जैसा है वसा बनाये रखो।" तथा इसी में वे आत्म सन्तोष अनुभव करते हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वरिष्ठता का सिद्धान्त कुछ पूव निश्चित गलत मान्यताओ पर आधारित है

१ एक वेतन शृ खला के शिक्षक लोग पदोन्नति के योग्य होते हैं।

२ वरिष्ठता सूची प्राय शिक्षकों की उम्र के साथ मेल खाती है इसलिये यह कल्पना करना कि उच्च पदो की सख्या इतनी अधिक है कि सभी शिक्षकों को अवसर मिल जायगा।

३ उच्च पद क्रमश खाली होते रहेंग।

यह एक आकाश कुसुम के समान आदश स्थिति है जो कभी प्राप्त नहीं हो सकती। व्यवहार मे देखा जाता है कि एक वेतन-शृ खला के सभी शिक्षक पदोन्नति के योग्य नहीं होते, प्राय पदोन्नतियां कम होती हैं, उसकी प्रक्रिया कहीं जटिल होती है। सभी शिक्षकों की पदोन्नतियां हो जाय, इतने पद भी नही होते हैं और न ही इतने पदों का सजन किया जा सकता है।

योग्यता का सिद्धान्त

वरिष्ठता सिद्धान्त का उल्टा योग्यता सिद्धात है। इसके अनुसार पदोन्नति के समय शिक्षकों की योग्यताओं तथा उपलब्धियों पर विचार किया जाता है। शिक्षकों ने कितने दिन सेवा की है या उनका सेवाकाल कितना लम्बा है, इस पर कोई विचार नहीं किया जाता। इस सिद्धान्त के अनुसार सर्वाधिक योग्य व्यक्ति पदोन्नति के लिए चुना जाता है। यह सिद्धांत योग्य शिक्षकों को नौकरी म बराबर बनाये रखने में सहायता देता है शिक्षकों को मेहनत व दक्षता से कार्य करने के लिए प्रोत्साहन देता है। इस भांति शिक्षकों म नतिक बल तथा कौशल बनाये रखने में सहायता पहुचाता है।

परन्तु वरिष्ठता की तरह योग्यता का विचार सरलता से समझा नहीं जा सकता है। स्पष्ट है कि योग्यता का विचार बड़ा जटिल है। योग्यता के निर्धारण म, सम्भव है, दो अधिकारी भी समान राय म न पायें। योग्यता के अन्तगत बुद्धि व्यक्तित्व, व्यवहारकुशलता नेतत्वक्षमता, चारित्रिक दृढ़ता आदि अनेक बातें आ जाती हैं। य तथा इसी प्रकार के अन्य गुण प्रकृतिदत्त होते हैं तथा किसी भी शिक्षक के साथ एव या अन्य कारण से पक्षपात भी हो सकता है। फलत साथी शिक्षकों म जलन व द्वेष का जन्म हो सकता है। सभी पदोन्नति की योग्यतायें रखने वाल शिक्षकों की योग्यता की जांच करने म भी व्यावहारिक कठिनाइयां आती हैं। उम्मीदवार की योग्यता का निणय करन के लिए जो विभिन्न पद्धतियां हैं, उनकी भी मर्यादायें हैं, उनको भी आलोचना से परे नहीं कहा जा सकता—उन पर भी विचार करना आवश्यक है।

योग्यता–निर्धारण की कसौटी

१ लिखित परीक्षा

२ शिक्षा निदेशक का निजी निणय

३ सेवा-योग्यताक्रम

लिखित परीक्षा के तीन प्रकार हो सकते हैं। (1) मुक्त प्रतियोगिता इसम कोई भी शिक्षक जो योग्यतायें व अनुभव पूरे करते हों भाग ले सकता है। (ii) सीमित प्रतियोगिता इसम केवल उन्हीं शिक्षकों को परीक्षा देने की अनुमति दी जा सकती है जो पहले से ही राजकीय सेवा म हो तथा (iii) उत्तीण परीक्षा–इस प्रकार की परीक्षा म शिक्षकों को पदोन्नति के लिए केवल उत्तीण होना आवश्यक है। इन तीन प्रकार की प्रतियोगिता-परीक्षाओं के भी अपने अपने दोषगुण हैं।

शिक्षा निदेशक का निजी निणय उनकी मनोदशा (Subjectivity) से प्रभावित हो सकता है क्योंकि शिक्षा निदेशक हर शिक्षक के निकट सम्पक म नहीं रहता है ऐसी स्थिति म इस दोष स बचने के लिए पदोन्नति के लिए मण्डल बनाया जाता है। इस मण्डल को विभागीय पदोन्नति समिति (Departmental Promotion Committee) के नाम स जाना जा सकता है।

तीसरी विधि के अनुसार उम्मीदवार शिक्षक की योग्यता का मूल्यांकन उसके सेवा अभिलेख स किया जाता है। हर शिक्षक की सेवाओं का

नखित अभिलेख रखा जाता है, उसमें उसके कार्यों का ब्योरा रहता है। ऐसे अभिलेख से पदोन्नति के समय शिक्षकों की योग्यता के निर्धारण मे मूल्यवान सहायता मिलती है।

ऊपर दोनो सिद्धातों के पक्ष व विपक्ष मे दिये गये तर्कों के आधार पर वरिष्ठता या योग्यता के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता है। पदोन्नति के लिए वरिष्ठता के सिद्धान्त का साधारण अर्थ यही है कि सेवाकाल कितना लम्बा है? जरा-सा दूर हटकर यदि इस सिद्धात मे यह जोड दें कि जो शिक्षक पदोन्नति के योग्य हैं, उनको वरिष्ठता के क्रम से पदोन्नति दे दी जाय या उनको पदोन्नति के लिए विचार किया जाय तथा जो अयोग्य हैं, उन्हें छोड दिया जाय, तो इसे वरिष्ठना-सह योग्यता (Seniority-Cum-Merit) सिद्धात कह सकते हैं। इसी सिद्धान्त का एक रूप यह भी हो सकता है कि वरिष्ठता के आधार पर केवल अधीनस्थ सेवाओ के लिए विचार किया जाय जबकि उच्च पदो पर केवल योग्यता के अनुसार पदोन्नतियाँ दी जाय। सामान्यतया शिक्षक लोग इन बातों पर सहमत हो सकते हैं —

१ उच्च पदो पर केवल योग्यता के आधार पर ही पदोन्नतियां हो। इन पदों के लिए वरिष्ठता का विचार बिल्कुल छोड दिया जाना चाहिए।

२ मध्यम पदों पर पदोन्नति के समय योग्यता को निर्णायक तथा वरिष्ठता को गौण तत्त्व माना जाना चाहिए। और

३ अधीनस्थ पदो पर पदोन्नति के लिए वरिष्ठता को निश्चित रूप से अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए।

वरिष्ठता सिद्धान्त की इतनी आलोचना होने के बाद भी यह कहा जा सकता है कि आज भी व्यवहार मे पदोन्नतियो के समय वरिष्ठता को ही अधिक महत्त्व दिया जाता है। व्यवहार मे वरिष्ठता की उपेक्षा करना बडा कठिन होता है। आयु तथा वरिष्ठता की प्रतिष्ठा अब भी बनी हुई है। पदोन्नति का चाहे कोई सा वरिष्ठता या योग्यता सिद्धात हो उसके अनुसार सभी योग्यता प्राप्त शिक्षकों उनके अनुभव तथा नूतन काम के सम्पादन करने की क्षमता पर विचार किया जाना चाहिए तथा इन सब गुणो का आंशिक रूप से निर्धारण पहले के सेवा अभिलेख से, आंशिक रूप से निजी विशेषताओं द्वारा और आंशिक रूप से किसी न किसी प्रकार की परीक्षा द्वारा किया ही जाना चाहिए। ऐसा ही पदोन्नति का सिद्धात अधिकतम शिक्षकों को अधिकतम सन्तोष प्रदान कर सकेगा।

इस सम्बन्ध में शिक्षा आयोग (१९६४'६६) की अनुशसाओं पर भी ध्यान देना चाहिए —

"विशिष्ट विषयो के अध्यापको या अतिरिक्त योग्यता के शिक्षकों को" कोठारी शिक्षा आयोग के अनुसार "अग्रिम वेतन-वृद्धियो या विशेष भत्तो के रूप मे प्रेरक दिये जा सकते हैं।"[1]

'महाविद्यालयों मे काय करने वाले कनिष्ठ व्याख्याताओ तथा उच्च माध्यमिक शालाओ म काय करने वाले समान योग्यता वाले शिक्षकों को समान वेतन दिया जाना चाहिए। उच्च माध्यमिक शालाओ मे कायरत शिक्षक जब प्रशिक्षण प्राप्त करलें तो उनके प्रशिक्षण को सम्मान देने के लिए दो अग्रिम वेतन-वृद्धियां दी जानी चाहिए प्रथम श्रेणी के स्नातक एव अधिस्नातको को भी अग्रिम वेतन वृद्धियां दो जाय। इसी भाति एम एड प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों को भी अधिक वेतन वृद्धिया दी जाय।"[2]

'१० से १५% योग्य प्रशिक्षित प्राथमिक शिक्षको की पदोन्नति उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाध्यापक या विद्यालय निरीक्षक/जिला शिक्षा अधिकारी के पदो पर की जानी चाहिए। इसी भांति इतने ही प्रतिशत उच्च स्तर का काय करने वाले प्रशिक्षित स्नातकों को अधिस्नातकों की वेतन शृ खला दी जानी चाहिए। ऐसी व्यवस्था की जाय कि शाला शिक्षक महाविद्यालय या विश्वविद्यालय मे व्याख्याता बन सकें जो शाला-शिक्षक उच्च स्तर का शोध काय कर रहे हों तो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उन्हें उदारतापूवक आर्थिक सहायता प्रदान करें। अग्रिम वेतन-वृद्धियो की ऐसी व्यवस्था की जाय कि चोटी के ५% शिक्षक वेतनमान के उच्चतम स्तर पर १० वष मे तथा उनसे अगले ५% शिक्षक वेतनमान के उच्चतम स्तर पर १५ वष में पहुच जायं। महाविद्यालयो में कायरत किसी महत्वपूण उच्च स्तर का काय करने वाले प्राध्यापक की अब तक कोई पदोन्नति इसलिए नहीं हुई कि वहां उच्च वेतनमान का कोई पद नहीं था तो उनको पदोन्नति देने के लिए ऐसे पदों का सृजन किया जाय तथा ज्योंही कोई स्थायी पद रिक्त हो तो उनको उन पदों पर नियुक्त किया जाय। ऐसा

---

1 Report of the Education Commission(1964-'66) Government of India, Ministry of Education, New Delhi Publications Division I Edition 1966 p 53

2 Ibid p 55

करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्वीकृति प्राप्त करली जाय। ऐसी व्यवस्था वैज्ञानिक तथा औद्योगिक शोध परिषद् तथा भारतीय कृषि शोध संस्थान में पूर्व से ही प्रचलित है। रूस में हुए एक शोध से पता लगता है कि वहां शिक्षकों के वेतनमान इतने अच्छे हैं कि देश के उच्च श्रेणी में उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति काफी संख्या में अध्यापन कार्य करते हैं। वहां विश्वविद्यालय तथा शाला शिक्षक के पारिश्रमिक में अन्तर भी बहुत कम है।[1]

"शिक्षण जैसे सृजनात्मक कार्य में लगे सही व्यक्तियों को इस व्यवसाय में रोका जा सके, इसके लिए व्यावसायिक विकास के उपयुक्त अवसर तथा उत्तम सेवा स्थितियां एवं शर्तें दी जानी चाहिए। विचार गोष्ठियों ग्रीष्मकालीन संस्थानों, पुस्तकें क्रय करने के लिए या शोध-कार्य के लिए उदार अनुदान तथा अध्ययन-सुविधायें प्रदान करके, उपयुक्त व्यक्तियों को उच्च पद सुलभ करके उनके व्यावसायिक विकास को अग्रसर किया जा सकता है।"[2]

महत्त्वपूर्ण यह है कि इन अनुशंसाओं का कितनी मात्रा में तथा किस रूप में किन किन राज्यों में उपयोग किया जाता है?

---

1 Ibid p 57
2 Ibid p 58

प्रश्नपत्रों का वैकल्पिक प्रश्न

– ०८ –

परीक्षा के प्रश्न पत्रों में वैकल्पिक प्रश्नों का अस्तित्व आज शिक्षा शास्त्रियों के लिए गम्भीर चिंता का विषय बना हुआ है। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में काम करने वाले सभी शिक्षक जानते हैं कि प्रश्न-पत्रों में किस प्रकार वैकल्पिक प्रश्नों का प्रभुत्व छाया हुआ है। प्रश्न-पत्रों में आजकल जो वैकल्पिक प्रश्न पूछे जाते हैं उनका रूप निम्न प्रकार का हो सकता है –

(अ) प्रश्न-पत्र में कुल १० या ११ प्रश्न दिये जाते हैं तथा परीक्षार्थियों से पूछा जाता है कि किन्हीं ५ या ६ प्रश्नों के उत्तर लिखिये। ५ या ६ प्रश्नों का चयन भी परीक्षार्थियों पर ही छोड़ दिया जाता है।

(आ) कभी-कभी सजग परीक्षक प्रश्नों में दिये जाने वाले विकल्प को सीमित कर देते हैं जिससे प्रश्नों की विश्वसनीयता की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। पर ऐसे प्रश्न पत्र को भी दोष से पूर्णतया मुक्त नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के प्रश्न इस प्रकार गठित किये जाते हैं

(i) सुभद्राकुमारी चौहान का जीवन चरित्र लिखिये।

या

(ii) महाकवि सूर का बालचित्रण अपने शब्दों में वर्णन कीजिये।

यहां इन दो प्रश्नों में से एक प्रश्न परीक्षार्थी को करना ही है, छोड़ा नहीं जा सकता। परीक्षार्थी की पसन्दगी सीमित हो गई है पर प्रश्न पत्र की विश्वसनीयता की मात्रा में भी वृद्धि हो गई है जबकि इससे पूर्व प्रकार के प्रश्न-पत्र में दोनों ही प्रश्नों को विकल्प के रूप में छोड़ा जा सकता है।

(इ) कभी-कभी परीक्षक एक ही प्रश्न में विकल्प दे देते हैं जिससे प्रश्न पत्रों में प्रश्नों की संख्या तो कम हो जाती है पर प्रश्न

पत्र की विश्वसनीयता एव वैधता को गहरा धक्का लगता है, ऐसे प्रश्न पत्रो को आदर्श प्रश्न-पत्र नहीं कहा जा सकता। ऐसे प्रश्न पत्र मे अधिकाधिक पाठ्यक्रम का समावेश नहीं कर सकते। ऐसे प्रश्न का उदाहरण देखिये —

(1) शेरशाह या राणा सागा का शासन प्रबन्ध लिखिये।

इस प्रश्न का दोष स्पष्ट है — किसी भी एक शासनकर्त्ता का शासन प्रबन्ध पूछा गया है, जबकि इससे पूर्व के विकल्प के प्रकार वाले प्रश्न में एक कवयित्री का जीवन चरित्र पूछा गया है तथा उसके विकल्प में महाकवि सूर का बालचित्रण। मूल्याकन पद्धतियो के विशेषज्ञ आसानी से बता सकते हैं कि विश्वसनीयता किस प्रकार के प्रश्न-पत्रों में अधिक होगी।

(ई) किसी एक प्रश्न को अनिवार्य बनाकर शेष मे से कुछ प्रश्न परीक्षार्थियो से हल करवाना भी ऐसे ही प्रश्न-पत्रों का एक और विकल्प है। इस प्रकार के प्रश्न पत्र मे निर्देश इस प्रकार होगे —

'प्रथम (या अतिम या — सख्या जैसे ५ या ७ या अन्य) प्रश्न के सिवाय अन्य प्रश्नों म से कोई ४ प्रश्न हल करना है। कुल ५ प्रश्नो के उत्तर अपेक्षित हैं।'

इस प्रकार के प्रश्न-पत्र भी सभी दोषों से ग्रसित हैं। हाँ जो प्रश्न अनिवार्य कर दिया गया है उसकी विश्वसनीयता अवश्य बढ जायगी पर शेष प्रश्न पत्र भी सर्वथा दोषों से मुक्त हो ऐसा नहीं कहा जा सकता है। यह यहाँ भी स्मरण रखना चाहिए कि कभी-कभी परीक्षक प्रश्न-पत्र बनाते समय प्रथम व द्वितीय प्रकार के प्रश्न पत्रों को सम्मिलित कर देते हैं।

(उ) वैकल्पिक प्रश्नों का अन्तिम रूप है कि प्रश्न पत्र को विभागों या खण्डो म बाटकर वैकल्पिक प्रश्न पूछना। इसमे प्रश्न पत्र में निर्देश होगा —

'विभाग 'अ' से ३ प्रश्न, विभाग ब से २ प्रश्न तथा विभाग स' से १ प्रश्न हल कीजिये। इस भांति कुल ६ प्रश्नों के उत्तर लिखिये।"

इस प्रकार के प्रश्न-पत्रो म विभाग या तो विषय वस्तु के दृष्टिकोण से या प्रश्नो क प्रकार के अनुसार या प्रश्नों की कठिनाई के स्तर के अनुसार बना लिये जाते हैं।

प्रश्न पत्रो मे वैकल्पिक प्रश्न का प्रभाव —

प्रथम प्रकार के विकल्प में विद्यार्थी पाठ्यक्रम का कुछ हिस्सा या कुछ प्रकरण छोडकर भी परीक्षा मउत्तीर्ण हो सकते हैं विद्यार्थी ऐसा करते भी हैं। इसी कारण विद्यार्थी परीक्षा पास करने के लिए अपनी पूरी शक्ति नहीं लगाते तथा मनोयोग से सम्पूर्ण पाठयक्रम की तैयारी भी नहीं करते हैं। शिक्षक भी कक्षा मे आधा पाठयक्रम पढ़ाकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझने लगते हैं।

दूसरे, तीसरे तथा चौथे प्रकार के विकल्प वाले प्रश्न-पत्रों के लिए विद्यार्थी को प्रत्येक प्रकरण व हर क्षेत्र की तैयारी करनी होती है। पर परीक्षक को ऐसे प्रश्न-पत्र बनाते समय बडी सावधानी बरतनी पड़ेगी कि विकल्प समान कठिनाई के हों तथा विकल्प में दिये दोनों प्रश्न एक ही गुणों लक्षणो कौशलो आदि की जाँच करें।

पाचवे प्रकार के प्रश्न पत्रों की रचना करते समय परीक्षक ध्यान रखता है कि विद्यार्थी पाठयक्रम का कोई महत्त्वपूर्ण अग छोड न दे। पर ऐसे प्रश्न-पत्रो में भी किसी अग या विभाग का कोई प्रकरण छोड देना तो निश्चित सम्भव है और यह भी सम्भव है कि विद्यार्थी को उससे कोई हानि भी न हो।

लम्बे उत्तरो वाली निबन्धात्मक परीक्षा जिन दोषों से ग्रसित है लगभग वे सभी दोष इस प्रकार के प्रश्न पत्रों मे भी पाये जाते हैं। आज मूल्याकन मे सुधार के लिए हर शिक्षाविद चिन्तित है। प्रश्न पत्रो मे विकल्प होने से नीचे लिखे दोष स्पष्ट होते हैं —

सबसे पहला दोष इस प्रकार के प्रश्न-पत्रो का यह है कि जसा कि सामान्यत विश्वास किया जाता है प्रखर विद्यार्थी सदव कठिन प्रश्नों का ही उत्तर लिखेंगे पर यह भी कोई आवश्यक नहीं है। उसके विपरीत यह भी सम्भव है कि सामान्य व सामान्य से निम्न विद्यार्थी कठिन प्रश्नो को हल करने का प्रयास करे। ऐसी स्थिति मे प्रखर विद्यार्थी कई बार हानि भी उठाते हैं। सामान्य या सामान्य से निम्न विद्यार्थी अपनी पसन्द के अपनी तयारी के अनुसार सम्भव है आसान ही प्रश्नो का उत्तर लिखना तत्काल आरम्भ कर दें तथा प्रखर बुद्धि वाले यह निश्चय करने मे कुछ समय लगा दें कि किस प्रश्न का उत्तर लिखें जिससे निर्धारित समय म वे जरूरत के अनुसार प्रश्नो के उत्तर न लिख सकें और उन्हे हानि उठानी पड। परीक्षक जानते हैं कि वह प्रश्न जिसे अधिकांश विद्यार्थियों ने हल किया है, कम अक प्राप्त करता

है। जिस प्रश्न को बहुत कम विद्यार्थी हल करते हैं उसे तुलनात्मक रूप से अधिक अंक दिये जाते हैं। यही कारण है कि कई बार सामान्य छात्रों को आशा से अधिक अङ्क मिल जाते हैं तथा प्रखर विद्यार्थियों के सम्बन्ध में इससे उल्टा भी होता देखा गया है। इसके पीछे यही कारण है।

प्रश्नों में विकल्प होने से उसके अङ्कन में भी कठिनाई आती है। विभिन्न प्रश्नों की विषय सामग्री, उसका प्रस्तुतीकरण भाषा की शुद्धता, प्रश्न की कठिनाई का स्तर, प्राप्त ज्ञान का व्यावहारिक जीवन मे उपयोग, स्मरण कौशल, श्लाघा आदि को कितना कितना महत्व दिया जाय? या फिर सभी प्रश्नों की रचना इस प्रकार की जाय कि वे प्रश्न इन सब बातों का परीक्षण कर सकें। प्रश्न पत्र बनाने वाले इन सब बातों पर कभी विचार नही करते तथा सीधा सा एक निर्देश दे देते हैं कि सभी प्रश्नों के अङ्क समान हैं। तब यहा एक प्रश्न और उठाया जा सकता है कि जब सभी प्रश्नों के समान अङ्क हैं तो प्रखर विद्यार्थी कठिन प्रश्नों के उत्तर क्यों लिखें? इससे वैयक्तिक भिन्नता का विचार बालू की दीवार की भांति धराशायी हो जाता है। ऐसी स्थिति में सभी विद्यार्थियों को आसान प्रश्न हल करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

प्रश्न पत्रों में वैकल्पिक प्रश्न होने से परीक्षा का उद्देश्य ही पूरा नहीं होता। मान लीजिये, परीक्षक सुभद्राजी के जीवन चरित्र के बारे में जानना चाहता है। अब यदि परीक्षार्थी उस प्रश्न को विकल्प के रूप मे छोड दे तो परीक्षक परीक्षार्थी द्वारा पाठ्यक्रम के उस अंश पर स्वामित्व के बारे मे कुछ नहीं जान सकता जो अंश सुभद्राजी से सम्बन्धित है। इस प्रकार ऐसे प्रश्न-पत्र उद्देश्यों पर आधारित नहीं हैं। बच्चे आधा पाठ्यक्रम पढकर उत्तीर्ण हो सकते हैं क्योंकि आधे प्रश्न तो विकल्प के रूप में छोडे जा सकते हैं। अमुक विषय के पाठ्यक्रम से बालक मे अमुक मात्रा मे दक्षता और कौशल आना चाहिए, इस सम्बन्ध मे कुछ भी नही कहा जा सकता है। इस प्रकार शिक्षक भी आधा पाठ्यक्रम ही कक्षा मे पढाने में रुचि लेंगे तथा श्रम से बचने का प्रयास करेंगे।

फिर कल्पना कीजिये कि शिक्षक ने सुभद्राजी वाले पाठ्यक्रम के अंश को दो माह मे पढाया है। कक्षा के विभिन्न विद्यार्थियों के उत्तर विभिन्न प्रकार के तथा विभिन्न विस्तार के हैं। अब यदि परीक्षक अपने द्वारा लगाये गये समय के दृष्टिकोण से विचार करे तो वह विद्यार्थियों को भिन्न-भिन्न प्रकार से अंक देगा, जिसमें उसकी मनोदशा काम करेगी। चाहे उत्तर पत्रों

को विभिन्न परीक्षकों द्वारा जचवाया जाय, उनकी मनोदशा अवश्य प्रभाव डालेगी यह प्रयोगों से सिद्ध हो गया है। अन्य परीक्षक अपने दृष्टिकोण से जांच करेंगे, उन्हें इस बात का पता नहीं होगा कि शिक्षक ने पाठ्यक्रम के अमुक अंश के अध्यापन के लिए कितना समय लिया है। अनुसन्धानों से पता लगा है कि एक ही परीक्षक भिन्न भिन्न समय मे एक ही उत्तर-पुस्तिका पर भिन्न भिन्न अङ्क देते हैं। इस प्रकार के प्रश्न-पत्रों की विश्वसनीयता नहीं है तथा ऐसे प्रश्नों को जाचते समय अवसर की अपनी भूमिका रहती है। इस प्रकार पढाये एक शिक्षक, प्रश्न पत्र बनाये दूसरा शिक्षक तथा उत्तर पत्रो को जाचे तीसरा शिक्षक अध्यापन म लगाये गये समय परीक्षा के प्रश्न पत्र बनाने के पूर्व निश्चित उद्देश्यो तथा अन्य पहलुओं पर ये सब एक मत नहीं हो सकते हैं। ऐसे प्रश्न पत्र को सतुलित प्रश्न-पत्र नही कहा जा सकता है। एक विश्वसनीय प्रश्न-पत्र वही है जिसको चाहे कोई भी, कहीं भी तथा कभी भी जाचे, अङ्क हर स्थिति म समान ही बने रहे। प्रश्नो के गठन म भाषा का ध्यान रखने पर प्रश्न-पत्र की विश्वसनीयता की मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

प्रश्न में दो विकल्प होने पर मान लीजिये कक्षा के आधे विद्यार्थी प्रथम विकल्प का उत्तर देते हैं जबकि शेष विद्यार्थी दूसरे विकल्प का, ऐसी स्थिति मे भी परीक्षक परीक्षण करते समय परीक्षार्थियों के साथ न्याय नही कर सकता परीक्षक की मनोदशा काम करती है, वह विभ्रम में पड़ सकता है पक्षपात कर सकता है। परीक्षक जिन बिन्दुओं का परीक्षण करना चाहे प्रश्न पत्र उन बिन्दुओ का परीक्षण न कर कुछ और ही करे, ऐसा प्रश्न पत्र वैध (Valid) नही कहा जा सकता तथा जो प्रश्न-पत्र वैध नहीं है, उसके विश्वसनीय होने का प्रश्न ही नही उठता। विश्वसनीय परीक्षा के प्रश्न पत्र को उद्देश्य-मूलक होना चाहिए। जिस उत्तर पत्र के जांचने मे परीक्षक की मनोदशा काम करे वह प्रश्न पत्र विश्वसनीय हो ही नहीं सकता।

परीक्षक पाठ्यक्रम का उपयुक्त प्रतिनिधित्व करने वाला प्रश्न-पत्र बनाते हैं। पर प्रश्नो मे विकल्प होने से विद्यार्थी जिन जिन प्रश्नों का उत्तर लिखते हैं ऐसी स्थिति मे यह कोई अनिवार्य नहीं है कि विद्यार्थियो द्वारा दिये गये उत्तर पाठ्यक्रम का उपयुक्त प्रतिनिधित्व करें ही। ऐसे उत्तरो के आधार पर शिक्षक द्वारा लिये गये निर्णय प्रभावित हो सकते हैं कुछ अंशों म सम्भव है गलत भी हो सकते है।

प्रश्न-पत्र द्वारा जाँचे जाने वाले ज्ञान का सेम्पल उपयुक्त होना

चाहिए। उपयुक्त सेम्पल से प्रश्न पत्र की उपयुक्तता (Adequacy) भी बढ़ती है। प्रश्न पत्र विस्तृत व अधिकाधिक पाठ्यक्रम पर आधारित होना चाहिए। इसी दृष्टिकोण से जहां परीक्षक एक कवि पर एक से अधिक प्रश्न प्रश्न-पत्र में सम्मिलित नहीं कर सकता, वहां दूसरी ओर अधिक प्रश्न पाठ्यक्रम के अन्य अंश पर देकर अधिकाधिक पाठ्यक्रम को सम्मिलित करता है।

मान लीजिये किसी प्रश्न-पत्र में परीक्षक ने ५ प्रश्न दो दिये हैं तथा परीक्षार्थियों से केवल एक प्रश्न ही हल करवाया है। ऐसी स्थिति में कक्षा के सभी परीक्षार्थियों का ५ दलों में विभाजन हो जायगा। एक सामान्य शिक्षक के लिए सभी दलों का एक साथ मार्गदर्शन करना कठिन होता है। जितने अधिक प्रश्न प्रश्न पत्र में होंगे, कक्षा के विद्यार्थियों के उतने ही अधिक दल बन जायेंगे। मार्गदर्शन के लिए वह स्थिति और भी विकट होगी।

इससे एक कठिनाई और पैदा होती है कि क्या सभी प्रश्न आपस में समान कठिनाई वाले हैं? इस सम्बन्ध में विषय सामग्री प्रश्न को प्रश्न-पत्र में जोड़ने का उद्देश्य तथा कठिनाई का स्तर भी अपनी भूमिका रखते हैं। जब तक अत्यधिक उच्च स्तर की तकनीक का विकास न हो, इस प्रकार के समान प्रश्न की रचना बड़ा कठिन काम है। विद्यार्थियों का भी असन्तोष होना स्वाभाविक है क्योंकि पता नहीं किस मूल्याङ्कन की कसौटी से उनका भाग्य निर्णय हो?

समान कठिनाई वाले प्रश्नों का रचना के सम्बन्ध में भी यदि सभी परीक्षक एकमत हो जाए तो भी एक प्रश्न और उठता है कि क्या परीक्षक उनका समान महत्व की दृष्टि से अङ्क न करेंगे? क्या उनकी मनोदशा वहां प्रभाव नहीं डालेगी? उदाहरण के लिए अपने पिताजी को एक पत्र लिखिये या सीमा पर चल रहे युद्ध में रत एक जवान को पत्र लिखिये। यह निश्चित है कि दूसरे विकल्प वाले उत्तर का अधिक महत्व दिया जायगा फलत अधिक अङ्क या श्रेय मिलेगा।

प्रश्न पत्र बनाते समय उद्देश्य ही स्पष्ट न हो या यह ज्ञात हो न हो कि प्रश्न पत्र के माध्यम से किन किन उद्देश्यों की जांच की जा रही है तथा उन उद्देश्यों को कितना कितना भार दिया गया है तो प्रश्न पत्र उद्देश्यपरक या वस्तुमूलक नहीं बन सकता है। प्रश्न-पत्र बनाते समय इस पर भी ध्यान नहीं रखा जाता कि पाठ्यक्रम के अमुक भाग पर अमुक समय की मात्रा खर्च की गई है। विशेषत कठिनाई तब आती है जबकि अध्यापन एक

शिक्षक करता है तथा प्रश्न पत्र दूसरा शिक्षक बनाता है। प्रश्न-पत्र में विकल्प के दृष्टिकोण से शिक्षक लगभग आधा ही पाठ्यक्रम कक्षा में पढ़ाने का प्रयास करते हैं, तथा विद्यार्थी भी आधे पाठ्यक्रम मे ही रुचि लेते हैं। प्रश्न पत्र बनाते समय उपयुक्त सामग्री का चयन भी तो नहीं हो सकता। यह भी सम्भव है कि समय का ध्यान न रहने से किसी विशेष पाठ्यक्रम के अंश मे से कोई प्रश्न ही न पूछा जाय तथा इस प्रकार पाठ्यक्रम के उस अंश का प्रतिनिधित्व ही उस प्रश्न पत्र मे न हो। इन सब बातो पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि शिक्षक पाठ्यक्रम के माध्यम से विद्यार्थियों मे जिन जिन गुणों लक्षणो कौशलो दक्षताओ सूचनाओ, रसानुभूति निपुणताओं एव श्लाघाओ का विकास करना चाहते हैं परीक्षक प्रश्न पत्र के माध्यम से उनका मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं। बल्कि आज तो स्थिति यह है कि एक विद्यार्थी चुने हुए अनुमानित दस प्रश्न पढकर अच्छे अङ्क ला सकता है जबकि दूसरा विद्यार्थी मूल पुस्तकें पढ़कर भी तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण होता है। यही अंधे के हाथ बटेर लगने जैसा ज्ञान प्राप्ति का दोषपूर्ण ढग है। यह पता नहीं लगाया जा सकता कि प्रमुख दक्षतायें एव कौशल विद्यार्थी ने प्राप्त कर लिये हैं या नहीं, ऐसी स्थिति म विद्यार्थी जीवन में पिछड जाता है तथा वास्तविक जीवन मे अपने आपको अक्षम अनुभव करता है।

विकल्प वाले प्रश्न पत्रों की उत्तर पुस्तिकायें जाचते समय एक और भयंकर कठिनाई उस समय खड़ी होती है जबकि किसी परीक्षार्थी ने जरूरत से अधिक प्रश्नों के उत्तर लिख दिये हैं। परीक्षक धर्म सकट मे पड जाता है कि जरूरत से अधिक उत्तरो का अब वह क्या करे? क्या उन्हें बिना जांचे ही छोड दे या जाचकर सबसे कम अङ्क वाले उत्तर पर विचार न करे। विभिन्न परीक्षा लेने वाले अभिकरणों ने इस समस्या पर ध्यान दिया है तथा अपनी सुविधानुसार व्यवस्था की है। कुछ ने अपने परीक्षको को आदेश दिये हैं कि प्रारम्भ से जाचना प्रारम्भ करके जरूरत के अनुसार प्रश्नों के उत्तरों का अङ्कन किया जाय तथा शेष अधिक प्रश्नों के उत्तरों को बिना जाचे ही छोड दिया जाय। इसी भांति कुछ अन्य अभिकरणों ने यह भी व्यवस्था की है कि सभी प्रश्न जांचे जायं तथा बिना जरूरत वाले सबसे कम अङ्क वाले प्रश्नों को छोड दिया जाय अर्थात सर्वाधिक अंक वाले प्रश्न के उत्तर पर विचार करते हुए जरूरत के अनुसार प्रश्नोत्तरो के अंकों का योग कर लिया जाय। जो भी हो यह तो मानना होगा कि यह भी एक महत्वपूर्ण समस्या है तथा इस पर भी मूल्यांकन विशेषज्ञों को ध्यान

देना चाहिए।

इतना होते हुए भी विकल्प वाले प्रश्न पत्रों का कुछ तो उपयोग बताया ही जा सकता है। यथा—

(i) शिक्षक यह जानकारी प्राप्त कर सकते हैं कि किन छात्रों ने किन प्रश्नों का उत्तर देना पसन्द किया है? इससे वे अपने विद्यार्थियों की कमजोरियों का निदानात्मक एवं उपचारात्मक उपाय कर सकते है तथा अपने अध्यापन के तरीको में यदि आवश्यक हुआ तो परिवर्तन कर सकते हैं।

(ii) छात्र प्राप्त ज्ञान का दैनिक जीवन मे उपयोग कैसे करें? सम्भव है छात्र इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने में असफल हो जाएँ अत छात्र में प्राप्त ज्ञान के उपयोग का कौशल विकसित न हो पाया हो तो सूचनात्मक प्रश्नों के माध्यम से पता लगाया जाना चाहिए। यहाँ भी सावधानी यह बरतनी होगी कि एक ही प्रश्न मे विकल्प समान हो।

सामान्यत चाही गई सूचनाओं के अभाव में परीक्षा का प्रश्न पत्र सुधारा नहीं जा सकता अध्यापन एवं परीक्षण विधियों का मूल्यांकन नहीं हो सकता। अनुवर्ती कार्यक्रम की रूपरेखा नहीं बनाई जा सकती, फलत उसकी (प्रश्न पत्र की) शैक्षणिक उपयोगिता ही समाप्त हो जाती है, जिस पर शैक्षिक सुधार व कक्षाध्यापन में सुधार हेतु आमूलचूल परिवर्तन का भवन खडा किया जा सकता है। सारांश रूप मे कहा जा सकता है कि प्रश्न पत्रों म वैकल्पिक प्रश्न का होना किसी भी आधार पर न्यायसगत नही ठहराया जा सकता।

वैकल्पिक प्रश्नों का औचित्य

परीक्षा के प्रश्न पत्रों मे वैकल्पिक प्रश्नो का दिया जाना परम्परा से चला आ रहा है तथा कोई भी इस विधान से हिलने का साहस नहीं करता है सभी आलोचना से डरते हैं एवं सभी उससे बचने का प्रयत्न करते हैं। विद्यार्थी शिक्षक तथा अभिभावक वकल्पिक प्रश्नों का प्रश्न-पत्रों में जोडना किस भाति उचित ठहराते हैं देखिये

विद्यार्थियों को यह विश्वास बना रहता है कि परीक्षा में १० या ११ प्रश्न होंगे तथा ५ प्रश्नों का उत्तर लिखना होगा। वे परीक्षा की तैयारी ही इस बात को दिमाग म रखकर करते हैं कि परीक्षा के प्रश्न पत्र में निश्चित रूप से विकल्प होगा। इसीलिए वे पाठ्यक्रम के कुछ चुने हुए अशों का अध्ययन करते हैं। लगभग आधे पाठ्यक्रम पर स्वामित्व करके वे

परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं। प्रश्न पत्र मे अधिक प्रश्न देकर ५ या ६ प्रश्न करवाने से विद्यार्थी चिन्ता एवं भय से मुक्त हो जाते हैं वे मूल पुस्तकें पढ़ने का प्रयत्न ही नहीं करते हैं, तथा बाजारू कुञ्जियों की मदद से वे उत्तीर्ण हो जाते हैं। पर यदि उन्हें समय रहते बता दिया जाय कि परीक्षा के प्रश्न पत्र में ५ ही प्रश्न पूछे जायेंगे तथा ५ ही के उत्तर भी देने होंगे तो प्रश्न पत्र की उद्देश्य मूलकता विश्वसनीयता तथा वैधता काफी मात्रा मे बढ़ जायगी तथा विद्यार्थियों को पता होने पर वे अपने आपको परीक्षा के लिए इसी दृष्टिकोण से तैयार करेंगे। केवल एक बार विद्यार्थियों का विश्वास प्राप्त कर प्रश्न पत्र बनाते समय परिवर्तन की आवश्यकता है।

दूसरी ओर प्रश्न पत्र म ५ प्रश्न देकर ५ ही प्रश्न हल करवाने से प्रश्न-पत्र तो उद्देश्यमूलक एवं विश्वसनीय बन जाता है पर इस प्रकार पाठ्यक्रम का कितना छोटा अंश परीक्षक प्रश्न पत्र के माध्यम से जांच रहे हैं। ५ प्रश्नों के बजाय १० प्रश्न देकर शिक्षक परीक्षक यह सन्तोष कर लेते हैं कि पाठ्यक्रम के उस बहुत बड़े अंश की जांच कर रहे हैं जिस पर विद्यार्थियों ने स्वामित्व कर लिया है पर इस भांति वे श्रम से बचने का प्रयत्न करते हैं। पाठ्यक्रम का कुछ भाग महत्त्वपूर्ण होता है जिस पर सदैव हर किसी भी शिक्षक की दृष्टि पड़ती रहती है। परीक्षक भी कई बार ऐसे ही प्रश्नों की प्रश्न-पत्रों म पुनरावृत्ति करते रहते हैं जिससे छात्र भी उनको इम्पोर्टेण्ट या वेरी इम्पोर्टेण्ट समझ कर तैयारी करते हैं। ऐसे प्रश्न पत्र विद्यार्थियों में व्यवहार परिवर्तन के उद्देश्यों पर आधारित नहीं होते हैं। पर यदि शिक्षकों को पता लग जाय कि प्रश्न-पत्र म दिये गये सभी प्रश्न विद्यार्थियों को हल करने होंगे तो वे छात्रों को पूरे पाठ्यक्रम का अध्ययन करायेंगे, जिससे विद्यार्थियों म मौलिक चिन्तन तथा सृजनात्मकता का विकास होगा।

प्राय ऐसा विश्वास किया जाता है कि परीक्षा के प्रश्न-पत्र में १०% प्रश्न सामान्य से उच्च बुद्धि वाले विद्यार्थियों के लिए, इतने ही अर्थात् १०% ही सामान्य स निम्न बुद्धि वाले विद्यार्थियों के लिए सम्मिलित किये जाते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था का आधार छात्रों की वैयक्तिक भिन्नता है। पर होता यह है कि आसान प्रश्न देख कर उच्च बुद्धि वाला प्रखर विद्यार्थी भी कठिन प्रश्न हल नहीं करता है। John N Stal Naker न अपने अध्ययन म पाया कि केवल १% या २% विद्यार्थियों ने वर्णनात्मक निबन्ध लिखने के बजाय कल्पनात्मक निबन्ध लिखना पसन्द किया। इसके दो पहलू प्रकाश में आते हैं

(i) क्या परीक्षा में मापन एवं मूल्यांकन की सामान्य कसौटी पर वैयक्तिक भिन्नताओं पर विचार करना न्यायसंगत है ?

(ii) क्या प्रश्न पत्र के ये विकल्प, वैयक्तिक भिन्नताओं के दृष्टिकोण से वास्तव में उपयोगी हैं।

ये दोनों पहलू किसी शोध के आधार पर ही उचित अनुचित बताये जा सकते हैं। प्रथम के लिए मूल्यांकन विधियों के विशेषज्ञों की राय जाननी होगी। दूसरे पहलू के लिए विद्यार्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं का इसी उद्देश्य से विस्तृत अध्ययन करना होगा। इस सम्बन्ध में बिना अध्ययन के कुछ कहना अविवेकपूर्ण होगा।

विद्यार्थियों के अभिभावकों को इस बात से सन्तोष होता है कि प्रश्न पत्र में १० प्रश्न दिये गये हैं तथा छात्रों को ५ प्रश्नों के उत्तर लिखने हैं। यदि छात्र कमजोर भी हुए तो भी किन्हीं ५ प्रश्नों के उत्तर तो वे दे ही सकेंगे। ऐसी स्थिति में कुल उत्तीर्ण विद्यार्थियों की संख्या बढ़ जायगी तथा माता पिता प्रसन्नता अनुभव करेंगे सन्तुष्ट होंगे। इस हालत में उन्हें वास्तविक स्थिति से अवगत कराने की जरूरत है तथा उस हालत में वे सभी प्रश्नों का उत्तर लिखना अनिवार्य करने पर आपत्ति नहीं करेंगे।

इस भांति कहा जा सकता है कि परीक्षा लेने वाले अभिकरण वैकल्पिक प्रश्नों वाले प्रश्न पत्र बनवा कर परीक्षार्थियों के साथ अन्याय करते हैं। इस सम्बन्ध में उन्हें शोधकार्य करके निर्णय लेना चाहिए। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि जब तक समान प्रश्न की रचना नहीं की जाती, और भिन्न भिन्न अभिकरणों द्वारा दिये गये अङ्कों को एक समान स्तर पर नहीं लाया जाता तब तक प्रश्न-पत्र में वैकल्पिक प्रश्न दिया जाता रहेगा। पर यह भी स्पष्ट है कि इस वैकल्पिक प्रश्न पद्धति का जितना शीघ्र उन्मूलन किया जा सके अच्छा होगा। यद्यपि यह विचार क्रांतिकारी लग सकता है, पर इस दिशा में प्रयत्न तो किया ही जाना चाहिए। आशा है, इस सम्बन्ध में मापन एवं मूल्याङ्कन विधियों के मान्य विशेषज्ञ तथा प्रबुद्ध शिक्षाशास्त्री और लेखनी उठायेंगे।

●●●

शिक्षा आयोग की दृष्टि मे निर्देशन सेवाये

– ○○ –

निर्देशन की सदव–भूतकाल में व आज–आवश्यकता रही है तथा कल भी रहेगी। आज विश्व राष्ट्र तथा स्थानीय स्थितियों के के कारण एव प्राविधिक–वैज्ञानिक विकास के कारण मनुष्य मनुष्य म तनाव बढ गया हैं। एक दूसरे का विश्वास नहीं करते सभी अपने सीमित स्वार्थों के लिए ही सोचते हैं। प्रजातन्त्र ही जीवन का एक ऐसा तरीका है जिसमे व्यक्ति की गरिमा एव उसके स्थान को आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इस विचार का आने वाली पीढी म क्रमे विकास हो यह शिक्षकों के सामने बहुत बडी चुनौती है।

निर्देशन सामाजिक एव राजनैतिक नेताओ माता – पिताओ तथा शिक्षकों का कार्यक्षेत्र है। निर्देशन की आवश्यकता न केवल शिक्षाविदो को है बल्कि समाज को भी है। ऐसी स्थिति मे निर्देशन के दर्शन एव कार्य से परिचित होना आवश्यक है। जनतन्त्र समाज, जो व्यक्ति की गरिमा का आदर करता है शिक्षा के एक अद्भूत रूप पर आधारित है। शिक्षा को वास्तविक बनाने के लिए एव समाज के साथ सुमधुर तारतम्य के लिए व्यवस्थित निर्देशन सेवाओ की आवश्यकता है। निर्देशन कार्यक्रम की सफलता इस क्षेत्र म कार्य करने वालों की प्रगाढ रुचि, विवेक पूर्ण सुझावो एव उनके योगदान पर निर्भर करती है। निर्देशन के तत्व ये हैं —

(१) स्वय को समझना तथा औरों के द्वारा समझना
(२) सामाजिक आवश्यकताओं का ज्ञान तथा प्राविधिक समाज म मूल्य
(३) विशिष्ट निर्देशन सेवाओं से बच्चे बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय, पसन्द, तथा स्वस्थ समायोजन म मदद पाते हैं तथा
(४) पाठ्यक्रम तथा शिक्षण के माध्यम से छात्रों को चुनौती वाले शैक्षणिक अनुभव प्रदान करना।

यहां पर इस विषय के कुछ अधिकारी विद्वानों के विचारों का अध्ययन करना अनुचित न होगा।

निर्देशन की परिभाषा देते हुए युनाइटेड स्टेटस आफ एजूकेशन ने लिखा है 'निर्देशन एक ऐसी क्रियात्मक पद्धति है जो व्यक्ति का परिचय विभिन्न उपायों से, जिनमें विशेष परीक्षण भी सम्मिलित है तथा जिनके माध्यम से व्यक्ति की प्राकृतिक शक्तियों का बोध भी हो, कराती है जिससे कि वह अधिकतम व्यक्तिगत हित कर सके।

श्री कज एवं अन्य महोदय के अनुसार "निर्देशन शिक्षा का पर्याय है तथा द्विपक्षीय क्रिया है। (अ) वितरण प्राप्त अवसरों का विभिन्न व्यक्तियों में वितरण तथा (आ) व्यक्ति को इस प्रकार मदद करना कि वह प्राप्त अवसर से अधिकाधिक लाभान्वित हो।'

जोन्स के अनुसार निर्देशन का अर्थ है "प्रदर्शन करना इंगित करना सूचित करना तथा पथ प्रदर्शन करना तथा इसका अर्थ सहायता देने से अधिक है।"

एड्‌. एण्ड विल्ली के अनुसार 'निर्देशन हर विद्यार्थी को मदद पहुंचाने के लिए उसके हर सम्भव विकास व समायोजन के लिए आयोजित सेवाए है।"

रूथ स्ट्रेंग कहते है निर्देशन का उद्देश्य है हर बालक के अधिकाधिक विकास को उन सम्भावनाओं की दृष्टि से जो कि उसे प्रकृति से प्राप्त है अग्रसर करना है।'

'क्रो एण्ड क्रो ने निर्देशन की परिभाषा देते हुए कहा है कि 'निर्देशन प्रदान नहीं है। वह अपनी विचार धाराओं को दूसरों पर लादना नहीं है यह उन निर्णयों का जिन्हें एक व्यक्ति को अपने लिए निश्चित करना चाहिए निश्चित करना नहीं है, यह दूसरों के दायित्व को अपने ऊपर लेना नहीं है वरन निर्देशन तो वह सहायता है जो एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति को प्रदान करता है। इस सहायता से वह व्यक्ति अपने जीवन का पथ स्वयं प्रदर्शित करता है। अपनी विचार धारा का विकास करता है अपने निर्णय निश्चित करता तथा अपना दायित्व संभालता है।'

इस प्रकार निर्देशन के निम्नलिखित उद्देश्य है –

१ निर्देशन सहायता है जो एक व्यक्ति को या व्यक्तियों के समूह को दी जाती है।
२ समस्या नहीं वरन व्यक्ति निर्देशन का केन्द्र बिन्दु है।
३ निर्देशन व्यक्ति को अपनी समस्याओं को हल करने में मदद करती है।
४ निर्देशन से व्यक्ति अपनी रुचि, धारणा, रुमान बुद्धि, व्यक्तित्व व अन्य कमजोरियाँ व अच्छाइयाँ जान लेता है।
५ इन ऊपर की बातों के आधार पर वह अपना निर्णय लेता है।
६ वह अपनी योजनाएं बनाता है।
७ वह योजनाओं पर कार्य करता है।
८ इसके दो पक्ष हैं—वितरण तथा समायोजन।
९ शाला में निर्देशन—

(अ) व्यवस्थित सेवाएं हैं।

(आ) प्रत्येक छात्र/छात्रा की मदद के लिए है।

(इ) सर्वाधिक सम्भव विकास व समायोजन का संकेत करती है

(ई) शाला पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अंग है।

इस प्रकार निर्देशन का प्रधान उद्देश्य जैसा कि ट्रेक्सलर ने व्यक्त किया है–प्रत्येक छात्र को इस प्रकार मदद देता है कि वह अपनी क्षमताओं तथा शक्तियों का ज्ञान प्राप्त कर सके तथा इन क्षमताओं और शक्तियों का विकास करते हुए उनका सम्बन्ध जीवन मूल्यों तथा जीवन उद्देश्यों में स्थापित कर सके और अन्त में छात्र को इस योग्य बना सके कि वह अपना पथ प्रदर्शन स्वयं कर सके।

उपर्युक्त विवेचन से निर्देशन सेवाओं की उपयोगिता तथा इनका महत्व स्पष्ट है। भारत में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (१९४८) ने भी इन सेवाओं पर बल दिया। इसके पश्चात श्री लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग (१९५३) गठित हुआ जिसने भी इन सेवाओं की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला। इस आयोग की भी राय है–निर्देशन छात्र तथा छात्राओं को अपने उन गुणों की दृष्टि से जिन पर वे स्वामित्व प्राप्त कर सकते हैं बुद्धिमत्ता पूर्ण भावी जीवन के लिए निर्णय लेकर योजना बना सकते हैं, एक कठिन कला है। इस सम्बन्ध में निम्न सुझाव प्रस्तुत किये —

१ शिक्षा निर्देशन को शिक्षा अधिकारियों के कार्यों पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

२ छात्रों की क्षमता रुचि, रुझान प्रकृति एव विभिन्न व्यवसायो के गुणों को देख कर उन्हें समुचित कार्यो म लगाना चाहिए।

३ सभी शिक्षण सस्थाओं म प्रशिक्षित निर्देशन अधिकारियों एव केरियर मास्टरों की नियुक्ति की जाय, तथा

४ केन्द्र को समस्त राज्यों में ऐसे प्रशिक्षणालय खोलने चाहिए जहा निर्देशन कार्यकर्त्ता उत्तम प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें।

जहा इन निर्देशन सेवाओं पर राधाकृष्णन् आयोग तथा माध्यमिक शिक्षा आयोग ने इतना बल दिया है वहां निर्देशन सेवाए कोठारी शिक्षा आयोग की दृष्टि से भी ओझल नहीं हुई हैं।

१५०० पृष्ठों के कोठारी शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन (१९६४'६६) के ६ वेंअध्याय में जो "शिक्षण विधिया निर्देशन एव मूल्याकन" से सम्बन्ध रखता है, ३३वें बिन्दु से ३९वें बिन्दु तक विद्यालयी निर्देशन सेवाओ का विवेचन किया गया है।

३३ निर्देशन सेवाए पाठयक्रम का अभिन्न भाग है। य सेवाए सभी विद्यार्थियों को प्राप्त होनी चाहिए तथा छात्रों को अपने निणय एव समायोजन करने म सहायक होनी चाहिए।

३४ प्राथमिक स्तर पर निर्देशन सेवाए —निर्देशन सेवाओं का कार्यक्षेत्र बाल मन्दिर से प्रारम्भ हो जाता है तथा इन सेवाओं का अधिक से अधिक स्कूलों में विस्तार किया जाना चाहिए।

(अ) इसके लिए कि शिक्षक बच्चों की अधिकाधिक मदद कर सके, शिक्षकों को प्रशिक्षण काल मे निदानात्मक परीक्षण तथा वैयक्तिक भिन्नता का ज्ञान कराया जाना चाहिए।

(आ) नौकरी प्राप्त प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों के लिए निर्देशन पाठयक्रमों का आयोजन।

(इ) व्यावसायिक साहित्य का सृजन, तथा

(ई) छात्रों तथा उनके माता पिताओं को अपने बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में मार्ग दर्शन विषयों के चयन में सहायता प्राप्ति।

३५ माध्यमिक स्तर पर निर्देशन सेवाएं — इस स्तर पर किशोर बालक बालिकाओं को अपनी रुचि, रुझान योग्यताओं के विकास, क्षमता तथा मानसिक योग्यता स्तर के साथ साथ अन्य बातों का ज्ञान होना चाहिए जिससे वे अपने लिए पाठ्यक्रम/व्यवसाय चुनने में अधिक विवेक से काम ले सकें।

३६ मूल उद्देश्य यह होना चाहिए कि सभी उच्चतर माध्यमिक शालाओं में जरूरत के अनुसार सभी उपयुक्त निर्देशन सेवाएं-एक प्रशिक्षित शाला परामर्शक की देख रेख में उपलब्ध हों। पर प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं तथा धनाभाव के कारण आगामी २० वर्षों के लिए—एक अल्पकालीन कार्यक्रम इस प्रकार स्वीकार किया जाय —

(अ) भ्रमण करते रहने वाले शाला परामर्शक द्वारा उपयुक्त निर्देशन सेवाएं १० शालाओं में उपलब्ध कराई जायें। शाला परामर्शक की मदद के लिए अन्य शालाओं के शिक्षक बन्धु तत्पर रहें।

(आ) कुछ चुने हुए स्कूलों में निर्देशन सेवाओं का हर संभव विस्तार–जो इस सम्बन्ध में आदर्श शाला की तरह कार्य करे—हो। ऐसे आदर्श स्कूलों की संख्या मंडल में एक एक ही हो।

(इ) इन शाला परामर्शकों को उपयुक्त मार्ग दर्शन देने के लिए राज्यस्तरीय निर्देशन कार्यालय में पर्याप्त प्रशिक्षित व्यक्तियों की उपलब्धि हो।

३७ सभी उच्च माध्यमिक शालाओं में अध्यापन करने वाले शिक्षकों को-नौकरी के पूर्व या नौकरी प्राप्त शिक्षकों को भी— निर्देशन के विचार से परिचित होना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो इसके लिए प्रशिक्षण महाविद्यालयों में भी उपयुक्त व्यक्तियों की नियुक्तियां करनी चाहिए।

३८ राज्य स्तरीय निर्देशन कार्यालयों एवं प्रशिक्षण महाविद्यालयों द्वारा निर्देशन सम्बन्धी व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए। उच्चस्तरीय प्रशिक्षण की व्यवस्था राष्ट्रीय स्तर पर की जा सकती है।

३९ प्रारम्भिक कार्यक्रम के रूप में निर्देशन साहित्य व अन्य सामग्री सृजन छात्रों के अवकाशकालीन कार्य तथा भारतीय स्थितियों में निर्देशन सम्बन्धी समस्याओं पर शोध आदि पहलुओं को सम्मिलित किये जा सकते हैं।

समालोचनाएं

योजनाएं बनती है, कागजों में, पर उन पर प्रयोग बहुत कम हो पाता है। हम भारतीयों को बहुत बढ़चढ़ कर बात करने की आदत हो गई है

पर काम करना नहीं आता। देखना यह है कि क्या हम इन सेवाओं के बारे में महत्वकाक्षी तो नहीं हो गये हैं ? क्या लक्ष्य प्राप्ति के योग्य हैं ? उत्तर प्रदेश मे जहा निर्देशन सेवाए भारत में सर्वप्रथम प्रारम्भ हुई थी– वही स्थिति अच्छी नही है। जिला निर्देशन केन्द्र बन्द कर दिय गये है। स्थिति बडी भयावह है। जनता को हम सन्तुष्ट नही कर सके हैं। फलत जनता का जो योग मिलना चाहिए वह हमे नहीं मिल पा रहा है। इस सम्बन्ध में और भी निम्न बातों पर विचार करना चाहिए।

(१) प्रशिक्षित व्यक्तियो की कमी —

हमारे पास इस क्षेत्र मे प्रशिक्षित व्यक्तियों की बडी कमी है कुछ व्यक्ति है अवश्य पर जिस पाठ्यक्रम से प्रशिक्षित हुए हैं उसका भारतीय-करण नही हुआ है। प्रशिक्षित प्रनामक शाला परामर्शक, शाला चिकित्सक केरियर मास्टर शाला मनोवैज्ञानिक आदि की बडी कमी है।

(२) धनाभाव —

भारत एक गरीब देश है। कई स्कूलो मे तो छात्र खुले में ही पढ़ते हैं–उनसे क्या आशा की जाय कि वे निर्देशन सेवाओ के लिए भी व्यव करे–ऐसी स्थिति मे कुछ स्कूलें चाहते हुए भी ऐसा नहीं कर सकती है।

(३) सस्था प्रधानो का उदासीनतापूर्ण व्यवहार —

अधिकांश प्रधानाध्यापक अपने चौथे आश्रम मे चल रहे हैं–वे कोई परिवर्तन पसन्द नहीं करते तथा यह कठिन है कि वे प्रगतिशील विचारो वाले अध्यापकों के साथ तालमेल बिठा सके।

(४) स्कूल के अन्य स्टाफ का असहयोग —

भारतीय शिक्षकों को पारिश्रमिक भी न्यूनतम मिलता है–अतिरिक्त समय मे पढा कर अपनी आय बढाते हैं यदि किसी प्रकार इन सेवाओं के बदले पारिश्रमिक दिया जा सके तो कार्य करने वालो पर उत्तरदायित्व डाला जा सकता है तब फिर उसके लिए उनसे पूछा भी जा सकता है अन्यथा हर व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी से मुक्त रहे हैं।

(५) शिक्षको पर अधिक कार्यभार —

भारतीय शिक्षकों को बहुत काम करना पड़ता है। उन पर कार्य का भार अधिक है। इन्हें ८ ८ पीरियड प्रतिदिन अध्यापन करना होता है तथा फिर प्रति सप्ताह ४०० ४०० छात्रो की उत्तर-पुस्तिकाओं मे शुद्धीकरण करना होता है अध्यापन सम्बन्धी कार्य ही इतना अधिक रहता है कि वे समय नहीं बचा पाते जिससे निर्देशन कार्य की ओर ध्यान दे सके।

(६) माता पिताओं का असहयोग —

भारत अशिक्षितों का देश है। अशिक्षितों में अन्ध विश्वास घर किये हुए है। माता पिता अपने बालकों के हित में आवश्यक सहयोग नहीं देते। घर का वातावरण और पारिवारिक स्थिति नहीं बन पाते।

(७) ग्रामीण क्षेत्रों की अधिक संख्या —

गांवों में रहने वाले बालक शहरों में स्कूलों की संख्या भी बहुत कम नहीं है। शिक्षकों को निर्देशन भी कम होता है तथा वह न अपनी स्थिति में वह दोनों के साथ न्याय नहीं कर सकता।

(८) त्रुटि पूर्ण परीक्षा प्रणाली —

भारतीय परीक्षा प्रणाली में कई दोष घुस गये हैं। परीक्षा न उद्देश्यों को ध्यान में रख कर ली जाती है न वह परीक्षा विश्वसनीय ही होती है। छात्र कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न रट कर पास हो जाते हैं तथा सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पर ध्यान नहीं देते। इस प्रकार छात्र की रुचियों क्षमताओं इत्यादि का ठीक ठीक ज्ञान नहीं हो पाता है और निर्देशन क्रिया असम्भव हो जाती है।

(९) सूचनाओं का संकलन तथा विश्लेषण करने के व्यवस्थित संगठन का अभाव —

भारत में न तो स्कूल स्तर पर और न प्रान्तीय स्तर पर ही कोई ऐसी संस्था है जो छात्रों के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनाएं संग्रह करे तथा संकलित सूचनाओं का विश्लेषण कर छात्रों की क्षमता, रुचि तथा योग्यता आदि का पता लगाए। आज की स्थिति को देखते हुए यह कार्य जिला एवं प्रान्तीय स्तर पर ही सम्भव है। इन सूचनाओं के अभाव में किसी प्रकार का निर्देशन नहीं दिया जा सकता।

(१०) परीक्षण सामग्री का अभाव —

हमारे देश में उपयुक्त परीक्षण सामग्री का पर्याप्त अभाव है। यदि कुछ टेस्टस प्राप्य है तो उनके मानक (नोमस्) विदेशी है जो भारत के लिए उपयुक्त नहीं हो सकते। स्वयं भारत ही इतना विशाल है कि एक जगह के मानक दूसरी जगह उपयुक्त नहीं हो सकते। सभी टेस्ट्स का भारतीयकरण होना भी आवश्यक है। परीक्षण सामग्री तो और, भारतीय भवन व फर्नीचर भी प्राप्य नहीं होता।

(११) रेफरल एजेंसियों का न होना —

यदि एक बालक को स्थानीय शाला म निर्देशन नहीं दिया जा सकता तो देश मे ऐसी एजेंसियों की पर्याप्त कमी है जहां आगे उनको भेजा जा

सके—जहाँ बच्चों को प्रविकार पूवक निर्देशन दिया जा सके।

(१२) निर्देशन काय की सफलता के लिए इन–सर्विस प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध मे प्रशिक्षण महा विद्यालयों से जुड़े हुए सेवा प्रसार विभागों व केन्द्रों ने काफी काय किया है। पर अभी करने के लिए पर्याप्त क्षेत्र पडा है। कई शिक्षक तो इनका नाम व काम अब तक भी नहीं जानते हैं।

(१३) शिक्षा म शोध काय भी अभी नहीं के बराबर हो पा रहा है। जो थोडा बहुत हो रहा है, वह नहीं के बराबर है। इस कारण भी भारत म निर्देशन काय सफल नहीं हो पा रहा है।

इन सब कठिनाइयो के होते हुए भी हमें घबराना चाहिये। यदि किसी व्यक्ति में काम करने की तमन्ना है तो वह अवश्य ही अपना रास्ता निकाल लेगा। पारिश्रमिक पूरा न मिले इसलिए काम भी अच्छा नही होगा–यह भी कोई तक नहीं है। शिक्षकों को सबसे बड़ा सतोप यह होना चाहिये कि वे समाज का बहुत बडा उपयोगी काय कर रहे हैं। इससे उन्हें आत्म सन्तोष होगा उन्हें दृढ निश्चय व मिशनरी उत्साह के साथ अपने काय में जुट जाना चाहिए।

व्यावसायिक निर्देशन

—●—

एक जमाना था जब धोबी का पुत्र धोबी या कुम्हार का पुत्र कुम्हार का काम करते रहे थे। इस व्यवस्था के अपने लाभ थे। पर आज यह बात कि बच्चा पतृक धधा ही करेगा, केवल इतिहास के पृष्ठों की सामग्री रह गई है। यह निश्चित है कि वातावरण का भी काफी प्रभाव पड़ता है पर जन्म जात गुणों को भिन्न वातावरण मे विकसित होने का अवसर दिया जाय तो बच्चा पतक व्यवसाय के सिवा अन्य धधा म भी सफलता प्राप्त कर सकता है।

व्यक्ति को अपने गुणो के अनुकूल यदि धधा मिल जाता है तो वह सन्तोष अनुभव करता है। समाज मे उसका अपना स्थान है व्यवसाय से उसका सामाजिक तथा आर्थिक स्थान (Status) भी प्रभावित होता है। आज जिधर देखो व्यक्ति बेकार है करने के लिए उनके पास काम नहीं है तथा दूसरी ओर काम मे लगे व्यक्तियों का सन्तोष नही है, वे अपने काम से असन्तुष्ट है कारण कि उनके पास उपयुक्त काम नहीं है इसलिए अन्य काम मिलने पर छोड देने को तत्पर है। इस स्थिति मे व्यावसायिक निर्देशन के महत्व को कम नहीं आका जा सकता।

उच्च माध्यमिक विद्यालय मे पढने वाले ग्यारहवी कक्षा के मानविकी सकाय के एक छात्र से एक बार पूछा कि बच्चे! तुम जीवन मे क्या करना चाहते हो? क्या धधा करना चाहते हो? बच्चे का उत्तर था—सा॰ब डाक्टर बनना चाहता हू। इसी प्रकार का एक और प्रश्न लेखक ने अपने बी एड कक्षा के छात्र से पूछा कि आप बी एड प्रशिक्षण के साथ निर्देशन का विशिष्ट प्रश्न पत्र पढ़कर क्या करना चाहते हो? उसका उत्तर भी बडा विनोद पूर्ण था। उसने उत्तर दिया— स्कूल में बच्चो को गाइडेंस पढायेंगे। इन बातो मे निर्देशन का महत्व स्वयं स्पष्ट है।

'शिक्षा और जन साधन' पुस्तक मे भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री वी के आर वी राव ने महाविद्यालय के छात्रो के लिए भी व्यावसायिक

निर्देशन की व्यवस्था पर जोर दिया है। इन्होंने सर्वेक्षण के आधार पर लिखा है कि अधिकांश विद्यार्थी व्यावसायिक निर्देशन की महत्ता को स्वीकार करते हैं।

व्यावसायिक निर्देशन के सम्बन्ध में बनी हुई भ्रान्ति

व्यावसायिक निर्देशन का यह अर्थ कदापि नहीं है कि बच्चों से कहा जाय कि तुम इन धन्धों के लिए उपयुक्त हो तथा न ही यह माना जाना चाहिए कि केवल यही धन्धा तुम्हारे लिए उपयुक्त है तथा इसी धन्धे में तुम्हें सफलता मिलेगी। व्यावसायिक निर्देशन विद्यार्थी का यह बीमा नहीं करता कि तुम्हें इस धन्धे में ही सफलता मिलेगी या फलाँ फलाँ तथा अन्य व्यवसाय में नहीं। व्यावसायिक निर्देशन किसी भी व्यवसाय में सफलता की सम्भावना बताता है जो आवश्यक नहीं कि शत प्रतिशत सही हो, इसलिए कुछ अंशों में उसके गलत होने की भी सम्भावना निश्चित रूप से रहती है। पर जन साधारण को यह अवश्य स्वीकार्य नहीं है। यही भ्रान्ति है जो निर्देशन सेवाओं के लोकप्रिय होने में बाधक बनी हुई है।

व्यावसायिक निर्देशन निर्देशन के सिद्धान्त के अनुसार ही विद्यार्थी की स्वेच्छा पर निर्भर है। इसमें बालक को शिक्षा निर्देश या आज्ञा या सलाह नहीं दी जाती। भिन्न व्यवसायों के लिये वांछित गुण, योग्यताओं का बालकों के समक्ष विवेचन किया जाता है विद्यार्थियों को इस योग्य बनाया जाता है उन्हें ये सब स्थितियाँ प्रदान की जाती है कि जिनमें वे अपने गुणों रुचियों स्थानों एवं योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए सर्वाधिक उपयुक्त धंधे का चुनाव कर सकें। निर्णय तो स्वयं विद्यार्थी को लेना है — शिक्षक तो मात्र इस प्रक्रिया में बालक की मदद करता है।

व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा

नेशनल वोकेशनल गाइडेंस एसोसियेशन के अनुसार "व्यावसायिक निर्देशन एक प्रक्रिया है जो व्यवसाय चयन, उसके लिए तैयार होने उसमें प्रवेश करने तथा उसमें दक्षता प्राप्त करने में सहायता देती है। इसका मुख्य उद्देश्य जीविका निर्माण पर निर्णय लेने में सहायता करने से है ये निर्णय तथा इच्छाएँ व्यावसायिक समायोजन का उद्देश्य सन्तोष-जनक ढंग से पूरा करती है।" मुरर व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा इस प्रकार देते हैं "व्यावसायिक निर्देशन व्यक्तियों को अपने व्यवसाय में समायोजन के लिए सहायता करता है तथा जन बल का प्रभावोत्पादक ढंग से उपयोग कर

सामाजिक काय व्यवस्था को सरलतम ढग से चलाने मे सुविधाए प्रदान करता है। "

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा इस प्रकार दी है "व्यावसायिक निर्देशन वह सहायता है जो कि एक व्यक्ति को व्यवसाय भवन से सम्बन्धित समस्याओ को हल करने हेतु दी जाती हैं जिसमें व्यक्ति की क्षमताओ का उनसे सम्बन्धित व्यवसाय मे सुविधाओ के साथ समायोजन हो सके।"

निर्देशन का रूप

सही एव वास्तविक स्थितिया प्रस्तुत की जाय। कई बाल बच्चे रेल्वे का गार्ड इसलिए बनना पसन्द करते हैं कि वे काफी समय रेल्वे में यात्रा कर सके तथा उन्हे गार्ड को झडियां हिलाते देख कर प्रसन्नता होती है। पर जब उन्हें स्टेशन पर ले जाकर बताया जाय कि चलती गाडी मे गार्ड रात को भी नहीं सो सकते–उनके बैठने का डिब्बा ही इस प्रकार का बना हुआ है कि वे केवल बैठ सकते हैं–तो कई बच्चे जो रात को अधिक देर तक नहीं जाग सकते और जिन्होंने पहले रेल का गार्ड बनने का निश्चय किया था अब वे अपना निश्चय बदल देंगे।

कई व्यक्ति केवल आर्थिक लाभ को ही प्रधानता देते हैं–ऐसे छात्रों को बड़े बड़े उद्योगों मे लगे वैल्डरों बिजली मिस्त्री या मैकेनिक से भेंट कर वाइये। उन्हें बताइये कि इनका वेतन व अन्य सुविधायें एक सकेण्डरी स्कूल के प्रधानाध्यापक के समान या उससे कहीं अधिक है तो वे व्यक्ति का समाज में स्थान पद प्रतिष्ठा पर विचार करेंगे। प्रधानाध्यापक अपने विद्यालय का राजा है वहां स्वतन्त्रता है काय को पहल करने का अवसर है। पर इसके दूसरी ओर वेल्डर या मिस्त्री तो निर्देशन में काम करता है वहां उत्प्रेरणा का कोई स्थान नहीं हैं।

व्यक्ति की रूचियों स्थानों तथा योग्यताओ का भी ध्यान रखना चाहिये प्रारम्भ में विद्यालय स्तर पर रूचियां परिवर्तित होती रहती है, बच्चों का सोचना विचारना काल्पनिक होता है अस्थिर होता है। किसी एक बार के परीक्षण के आधार पर लिये गये निर्णय सब हर स्थिति म लागू नहीं किय जा सकते। निर्णयों को लागू करने के पूर्व शिक्षक को पूरी तरह से आश्वस्त हो जाना चाहिये। यदि आवश्यक हो तो माता पिता से भेंट कक्षाध्यापक खेल शिक्षक पुस्तकाध्यक्ष से विचार विमर्श किया जा

सकता है विद्यालय में यदि बालक संचित अभिलेख पत्र उपलब्ध है तो उससे भी सहायता ली जा सकती है।

एक क्षेत्र में भी कई धंधे हो सकते हैं। उदाहरणार्थ चिकित्सा व्यवस्था डाक्टर कम्पाउण्डर नर्स परिवार नियोजन डाक्टर आँख नाक कान, दांत एवं अन्य रोग का विशिष्ठ डाक्टर दवाई विक्रेता दवाई प्रचारक एवं ज्ञान प्राप्त करना पशु चिकित्सक तथा इन सबसे महत्वपूर्ण कि समाज में किस प्रकार के चिकित्सक की कितनी मात्रा में जरूरत है।

धन्धे के लिए आवश्यक योग्यता शैक्षिक एवं प्रशिक्षण, रुचि, स्थान, प्रवेश का तरीका, आयु सीमा धन्धे का ज्ञान, भावी प्रगति के अवसर, आगे अध्ययन करने के तरीके पारिश्रमिक-वास्तविक एवं मौलिक कार्य की स्थितियां कार्य के घंटे स्वास्थ्य की देखभाल, दुर्घटना से सुरक्षा, भविष्य निधि सेवा निवृति लाभ प्राप्ति का ज्ञान भी समान रूप से आवश्यक है।

इस कार्य में विद्यालय का योगदान

शिक्षा के उद्देश्यों में एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह भी है कि बालक आधुनिक स्थितियों में समंजन कर सके तथा वर्तमान स्थितियों को देखकर निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में विद्यालय का योगदान नगण्य है। इसके लिए यह करना होगा कि हर शिक्षक व्यावसायिक मार्गदर्शक भी बने। उदाहरण के लिए भूगोल शिक्षक भूगोल के पाठ्यक्रम में ताम्बा पढ़ाते समय खेतड़ी के ताम्बा उद्योग संस्थान की सामान्य जानकारी दे दे। किसी विशिष्ट पद प्राप्ति के लिए कुछ न बताया जाय। जिस बालक की इस धन्धे में रुचि है-कक्षा में इतनी जानकारी से बालक में जिज्ञासा पैदा हो जाती है और वह बालक स्वयं उस शिक्षक से सम्पर्क स्थापित कर सांगोपांग जानकारी कर लेगा। आवश्यक रिक्त स्थानों का यदि संभव हो तो विद्यालय में ब्यौरा रखा जाय। इसी भांति प्रशिक्षण सुविधाएं प्रवेश के लिये आयु सीमा, न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता संस्थान की प्रवेश क्षमता संस्थान से मिल सकने वाली आर्थिक सहायता (यदि हो तो) छात्रावास, न्यूनतम मासिक व्यय शिक्षण शुल्क आदि अन्य प्रकार की सूचनाएं भी विद्यालय के लिए उपयोगी सिद्ध होती है। अंत में सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति का धन्धे के साथ समंजन हो, व्यावसायिक निर्देशन की जड़ें गहरी एवं मजबूत बनायगा।

इन सबसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि अनुवर्ती काय में किसी प्रकार की शिथिलता न बर्ती जाय। किन गुणों के किन किन विद्यार्थियों को किस प्रकार के धंधों में प्रवेश का निर्देशन दिया गया, वे विद्यार्थी उन धंधों में गये या नहीं, यदि धंधों में गये तो उनका समंजन किस स्तर का रहा–उनकी उपलब्धि कैसी रही ? व्यावसायिक निर्देशन के अनुसार धंधे ग्रहण न करने वाले बालक किन किन अन्य धंधों में गये– उनकी उपलब्धि कैसी रही ? इन सब कार्यों के लिए यदि आवश्यक हों तो उनका सेवाभिलेख देखा जाय, उनके उच्चाधिकारियों से भेंट की जाय, उनके गोपनीय प्रतिवेदन देखे जाय। पर इन सब का उद्देश्य व्यक्ति को अधिकतम लाभ पहुचाना होना चाहिए। यही अनुवर्ती काय आगे चल कर व्यावसायिक निर्देशन का दर्शन बन कर आधार का काम करेगा।

भाषा समस्या

—oo—

भारतवर्ष भाषाओं का अजायबघर है तथा भाषा समस्या पर प्रत्येक नागरिक का ध्यान लगा हुआ है। कुछ स्थितियां इस प्रकार की पैदा हो गई हैं कि त्रिभाषा सूत्र बड़ा महत्वपूर्ण माना जाने लगा है विभिन्न वर्गों के लोगों ने इसे सराहा है। कुछ लोगों ने इसकी यह कह कर तारीफ की है कि इससे बच्चों का ज्ञान बढ़ेगा, उनका मानस विस्तृत होगा, तो कुछ अन्य लोगों ने इसे भावात्मक एकता का शक्तिशाली घटक मानकर समर्थन किया है तो कुछ अन्य लोग इसलिये इसके पोषक हैं कि इससे विभिन्न भाषा-भाषी व्यक्तियों की सभ्यता से जानकारी मिलेगी। भाषा कोई भी हो, उसका अध्ययन आनन्द देता है, प्रसन्नता प्रदान करता है।

इस सम्बन्ध में विभिन्न शिक्षा आयोगों के विचार जानना भी लाभप्रद होगा। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (१९४८-४९) ने भाषा समस्या को दार्शनिक, भावात्मक एवं वास्तविकता की दृष्टि से देखा है। उसके अनुसार।

१ एक संघीय भाषा का विकास हो उसका उन्नर इतना विशाल हो कि विभिन्न भाषाओं के शब्द एवं मुहावरे प्राप्ति पाकर उसमें मिल सकें। यह संघीय भाषा देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी होगी।

२ उच्च शिक्षा के माध्यम के लिये अंग्रेजी के स्थान पर एक भारतीय भाषा।

३ उच्चतर माध्यमिक व विश्वविद्यालय स्तर पर छात्र को तीन भाषाओं से परिचित कराना, क्षेत्रीय भाषा, संघीय भाषा एवं अंग्रेजी।

आयोग के सुझाव व्यावहारिक एवं उचित लगते हैं। देश के साहित्य, दर्शन, विज्ञान को समृद्धिशाली बनाने के लिये भाषा का तीव्र गति से निरंतर विकास आवश्यक है। यह उचित है कि अन्य देशों से सम्बन्ध बनाये रखने

के लिये अंग्रेजी का पठन-पाठन भी आवश्यक है। उसकी उपयोगिता ठोस युक्तियों पर स्पष्ट की है।

ऐसा लगता है कि भाषाओं के अध्ययन के लिये माध्यमिक शिक्षा आयोग (१९५२–'५३) के विचार भी स्पष्ट नहीं थे। उसके अनुसार किसी भी छात्र को दो से अधिक भाषायें नहीं पढ़ाई जानी चाहिये जब कि उन्होंने नीचे के अनुसार व्यवस्था की है

१ मातभाषा या क्षेत्रीय भाषा या मातभाषा व शास्त्रीय भाषा का समन्वित पाठयक्रम

२ नीचे के भाषा-समूहों में से एक भाषा समूह चुना जाय–

(अ) हिन्दी (जिनकी मातभाषा हिन्दी नहीं है।)

(आ) प्रारम्भिक अंग्रेजी (उनके लिये जिन्होंने माध्यमिक कक्षाओं में अंग्रेजी नहीं पढी है।)

(इ) उच्च अंग्रेजी (जिन्होंने प्राथमिक एव माध्यमिक स्तर अंग्रेजी पढी है के लिये)

(ई) हिन्दी के सिवाय आधुनिक भारतीय भाषा

(उ) अंग्रेजी के सिवाय अन्य यूरोपीय भाषा

(ऊ) शास्त्रीय भाषा।°

अब जरा ऊपर की योजना पर ध्यान दीजिये। कल्पना कीजिये कि राजस्थान का एक विद्यार्थी मातभाषा के रूप में हिन्दी पढेगा। अब वह दूसरी भाषा के लिये शास्त्रीय भाषा चुनता है तो वह हिन्दी के सिवाय अन्य भारतीय भाषा का अध्ययन नही कर सकता जो स्थिति वाछनीय नहीं है। वह अंग्रेजी का भी अध्ययन नही कर सकता जो उसे अन्तर्राष्टीय सम्बन्धों स जोडती है यह स्थिति भी प्रसन्नतासूचक नही है। इसके विपरीत यदि वह अंग्रेजी चुनता है तो वह विदेशी साहित्य तो पढ सकता है ससार की गतिविधियो से जानकारी रख सकता है, पर देश की शास्त्रीय भाषा व अन्य

°Secondary Education Commission Report Ministry of Education Government of India New Delhi Publications Division Third Print 1956 p 86 87

भारतीय भाषा का अध्ययन नहीं कर सकता, यह स्थिति भी वांछनीय नहीं है, श्रेयस्कर नहीं है। इसमें केवल इस बात पर ध्यान दिया गया है कि विद्यार्थी पर पाठ्यक्रम का भार न पड़े।

इससे स्पष्ट है कि माध्यमिक शिक्षा आयोग भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था करते समय अपने आप में स्पष्ट नहीं था। आयोग ने एक प्रमुख तथ्य की अवहेलना की है—वह है अहिन्दी भाषी प्रदेशों के लोगों की भाषा सम्बन्धी आवश्यकता। इस द्विभाषा सूत्र से न अहिन्दी भाषी क्षेत्रों की आवश्यकता की पूर्ति हुई है और न हिन्दी भाषी क्षेत्रों की आवश्यकता की ही। यह निर्विवाद रूप से मानना चाहिये कि कोई भी भाषा सूत्र सामान्य जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति किये बिना सफल नहीं हो सकता। हाँ, वर्त्तमान माननीय केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रीजी भी दो भाषाओं के अध्ययन पर बल दे रहे हैं इस दृष्टि से यह व्यवस्था महत्त्वपूर्ण हो सकती है। मंत्री जी इस व्यवस्था को किस प्रकार कार्यान्वित करायेंगे, भविष्य ही इसका उत्तर देगा।

कोठारी शिक्षा आयोग (१९६४–'६६) के अनुसार उच्च माध्यमिक स्तर पर कोई भी तीन भाषायें, जिनमें आधुनिक विदेशी भाषा तथा शास्त्रीय भाषा सम्मिलित हो, पढ़ाई जाय। आयोग के अनुसार संशोधित त्रिभाषा सूत्र इस प्रकार है

१ क्षेत्रीय भाषा या मातृभाषा।

२ संघ की कार्यालयी भाषा या उसकी सहायक भाषा।

३ आधुनिक भारतीय भाषा या विदेशी भाषा जो ऊपर प्रथम व द्वितीय स्तम्भ में न आई हो और जिसके माध्यम से शिक्षा न दी जा रही हो। आयोग ने अल्प भाषा भाषियों के हितों की भी सुरक्षा की है।°

आयोग की राय के अनुसार ८ वीं से १० वीं कक्षा में तीन भाषायें अनिवार्यतः पढ़ाई जाय। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी अंग्रेजी व एक अन्य भारतीय आधुनिक भाषा तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में क्षेत्रीय भाषा, हिन्दी व अंग्रेजी पढ़ाई जाय।

आयोग ने यह सुझाव दिया है कि आधुनिक विदेशी भाषायें तथा

° Kothari Education Commission Report Ministry of Education, Government of India New Delhi Publications Division 1966 pp 190–197

आधुनिक भारतीय भाषायें सीखने की भी व्यवस्था वांछनीय है। इनमें से किसी भी भाषा को विद्यार्थी अपने आवश्यक पाठ्यक्रम के साथ-साथ या अंग्रेजी के स्थान पर भी पढ़ सकते हैं।

११ वीं या १२ वीं कक्षा (उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं) में कोई भी तीन में से दो भाषायें पढ़ाई जायें, जिनका विद्यार्थी ने ८ वीं कक्षा से १० वीं कक्षा तक अध्ययन किया है।

त्रिभाषा सूत्र इस प्रकार का प्रश्न बन गया है कि इस पर विभिन्न लोगों के दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिये यथा राजनीतिज्ञ, समाज सुधारक, शिक्षक विद्यार्थी, साहित्य एवं निर्माण-व्यवस्था। वैसे त्रिभाषा सूत्र की मंशा यह है कि इससे लोगों में भाई चारा बढ़ेगा, एक दूसरे के निकट आयेंगे। जब-जब भी केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री बदले, उन्होंने सदैव इस प्रश्न पर अपनी दृष्टि से सोचा। डॉ० त्रिगुण सेन का कहना है कि (देखिये २ जुलाई ६७ का नवभारत टाइम्स दैनिक) तीन भाषाओं का अध्ययन बालकों पर बोझा है-*भाषायें दो ही पढ़ाई जाय। जब भी भाषा सम्बन्धी बात उठती* है, तो वे स्पष्ट कहते हैं कि दो से अधिक भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य नहीं बनाया जाय। उनका यह भी कहना है कि एक ही कक्षा में एक ही साथ दो नई भाषायें लागू न की जाय।

चार दिन बाद ६ जुलाई, ६७ को वे कहते हैं (देखिये हिन्दुस्तान दैनिक) 'हिन्दी भाषी राज्यों में अंग्रेजी की शिक्षा अनिवार्य नहीं होगी और इसी तरह गैर हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी अनिवार्य नहीं रहेगी। इसी के साथ ही हिन्दी भाषी व अहिन्दी भाषी राज्यों के उन विद्यार्थियों के लिए अंग्रेजी व हिन्दी की व्यवस्था करनी पड़ेगी जो इन भाषाओं में से किसी को भी स्कूल की पढ़ाई के दौरान ऐच्छिक रूप से पढ़ाना चाहते हैं। ... आठवें दर्जे से ऐच्छिक विषय के रूप में कोई तीसरी भाषा भी पढ़ाई जा सकती है। डॉ० त्रिगुण सेन की अध्यक्षता में बनी संसदीय समिति की राय है कि क्षेत्रीय भाषा या मातृभाषा हिन्दी और अंग्रेजी पर कोई अन्य भाषा की शिक्षा देना वांछनीय होगा जहां उच्च माध्यमिक स्तर पर केवल एक अतिरिक्त भाषा के अलावा पढ़ाई होगी, वहां विश्वविद्यालय स्तर पर कोई भाषा अनिवार्य नहीं रहेगी। कालेजों में भाषा की पढ़ाई ऐच्छिक रहेगी।' इस विवेचन से स्पष्ट है कि त्रिभाषा सूत्र का कार्यान्वयन पुनः असम्भव दीख पड़ता है।

अन्य राजनीतिक दल भी भिन्न भिन्न राय रखते हैं। प्रजा समाजवादी

दल, सयुक्त समाजवादी दल व जनसघ अग्रेजी को हटा ही देना चाहते हैं तथा हिन्दी के पूर्ण समर्थक हैं। यहा हमें द्रविड मुनेत्र कपगम की राय भी ध्यान मे रखनी होगी वे हिन्दी को अनिवार्य नहीं बनाना चाहते और अग्रेजी को कायम रखना चाहते हैं।

जिन जिन बोर्डों या विश्वविद्यालयों ने इस सूत्र को अपनाया हैं वे भी इसकी आत्मा तक नहीं पहुच पाये हैं। यदि दक्षिण भारतवासी उत्तर भारत की भाषा पढते हैं, एक भाषा का भार उठाते हैं तो उत्तर भारतवासियों को भी दक्षिण भारत की कोई भाषा पढनी चाहिये तभी तो हम एक दूसरे के नजदीक पहुच सकते हैं। पर तीसरी भाषा के नाम पर अधिकाश शिक्षा सस्थाओं में सस्कृत भाषा पढाई जा रही है जो प्राचीन भाषा हैं। ऐसा करके त्रिभाषा सूत्र की आत्मा भी स्पर्श नहीं की जा रही है।

यहा हमें देखना यह हैं कि हम दक्षिण भारतवासी बन्धुओं की सहानुभूति जीतना चाहते हैं, उनकी सभ्यता व सस्कृति जानना चाहते हैं पर हम अपने आपसे पूछें कि मण्डल तो दूर, अपने पडोसी के बारे मे हम कितना जानते हैं? क्या हमारे मन में उनके प्रति सहानुभूति हैं? प्रश्न भाषा सीखने का नहीं, प्रश्न दष्टिकोण परिवर्तन का है।

शिक्षकों के दृष्टिकोण से भी इस पर विचार करना आवश्यक है। हर अध्यापक से यह आशा तो नहीं की जा सकती कि वह सभी भाषाओं का पण्डित होगा। ३५–४० छात्रों की एक कक्षा मे १० बच्चे तेलगु पढना चाहते हैं, ५ बच्चे कन्नड, ५ बच्चे मलयालम, ५ बच्चे सिंधी ५ बच्चे गुजराती, इसी प्रकार अन्य बच्चे और भाषायें पढना चाहते हैं। मान लीजिये, कन्नड के सभी विद्यार्थियों के पढने की व्यवस्था एक स्कूल में करदी गई अब यह भी मान लीजिये कि उस कक्षा मे ८ बच्चे विज्ञान वर्ग ऐच्छिक विषय के रूप में पढते हैं जिसकी व्यवस्था उस कन्नड भाषा की शिक्षा देने वाले स्कूल में नही है। इस प्रकार सविधान द्वारा स्वीकृत सभी भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था तो हर स्कूल में नही हो सकती। शिक्षकों की व्यवस्था कैसे होगी? बच्चों की रुचि के अनुसार सभी भाषाओं के शिक्षको की नियुक्ति की जाय तो ५ ५ बच्चो की कक्षायें प्रारम्भ करना निरा अपव्यय होगा। प्रथम तो सभी भाषाओं की जरूरत के अनुसार शिक्षक मिलना ही असम्भव है तथा यदि मिल भी जायें तो सरकार के लिए उनकी नियुक्ति करना असम्भव है।

त्रिभाषा सूत्र पर विचार करते समय विद्यार्थियों के हितों को भी

मोभम नहीं कर सकते । दिनों दिन विद्यार्थियों के पास पुस्तकों की संख्या बढ़ती जा रही है। रोज बच्चा को थैला भर कर पुस्तक स्कूल लानी व ले जानी पड़ती है। सभी मानते हैं कि बच्चों पर पुस्तकों व विषयों का दायित्व भार है। माध्यमिक कक्षा के विद्यार्थियों को सामाजिक ज्ञान सामान्य विज्ञान साधारण गणित उद्योग तीन भाषायें तथा तीन अन्य वैकल्पिक विषय पढ़ने पड़ते हैं। जो विद्यार्थियों के मानस पर भार स्वरूप है। यदि विद्यार्थियों पर विषयों व पुस्तकों का भार ही है तो क्या और एक विषय ही बढ़ाया जाय ? विषय किस लिये बढ़ाया जाय ? छात्र आज हायर सेकेण्डरी परीक्षा पास करके भी पोस्ट कार्ड पर पता नहीं लिख सकता तो उस छात्र से क्या आशा की जा सकती है ?

कनाडा, स्विटजरलैंड, मिश्र रूस, स्वीडन व जर्मनी में हर बच्चा तीन भाषाओं का अध्ययन करता है। भाषा पर या विषयों पर विद्यार्थी का अधिकार न होने का तात्पर्य विद्यार्थी पर विषयों का भार होना ही हो, ऐसी बात नहीं है। सम्भव है अध्यापक का तरीका ही त्रुटिपूर्ण हो जिससे विद्यार्थी ही लाभान्वित नहीं हो पा रहा हो।

आज प्रायः देखने में आता है कि विद्यार्थी माध्यमिक शालाओं की पढ़ाई के बाद शिक्षा बन्द कर देता है तथा रोटी रोजी की तलाश करता है। अंग्रेजी का उनके दैनिक व्यावहारिक जीवन से भी कोई निकट का सम्बन्ध नहीं है। एक बात और कि आज अधिकांश छात्र अंग्रेजी में ही अनुत्तीर्ण होते हैं। मध्यप्रदेश एवं बिहार सरकार ने तो अंग्रेजी में अनुत्तीर्ण छात्रों को उत्तीर्ण घोषित करवा दिया है। उत्तर प्रदेश की सरकार बिहार सरकार के पदचिन्हों पर चल रही है। राजस्थान के शिक्षा मंत्री ने भी इस प्रश्न पर सोचने का पिछले दिनों आश्वासन दिया था। ऐसी स्थिति में इस विषय की जनसाधारण के लिये उपयोगिता क्या है ? यह पहलू विचारणीय है।

प्रारम्भिक स्तर पर विभिन्न भाषाओं का अध्ययन प्रारम्भ किया जाय— इसके लिये आवश्यक साहित्य कहां है ? स्वर बोध या अक्षर ज्ञान जैसे हिन्दी पंजाबी प्राइमर या अंग्रेजी-कन्नड़ स्वर बोध की पुस्तकें कहां हैं जिनको हिन्दी या अंग्रेजी के माध्यम से समझ सकें ? त्रिभाषा सूत्र को सही अर्थों में लागू करने के पूर्व विद्वानों द्वारा हिन्दी या अंग्रेजी के माध्यम से समझी जा सकने योग्य सरल सहज, बोधगम्य स्वर बोध या अक्षर ज्ञान की पुस्तकें लिखवा ली जानी चाहिये। पर इस सम्बन्ध में कोई विशेष

प्रगति नजर नहीं आ रही है। क्या तृतीय भाषा को रोमन लिपि में या देवनागरी लिपि में लिखी जाय ? तृतीय भाषा को रोमन लिपि में लिखने से तीसरी भाषा की लिपि सीखने के भार से विद्यार्थी बच जायेंगे या फिर तीसरी भाषा को उसी लिपि में लिखी जाय। सम्भव है तृतीय भाषा के उच्चारण के समान अन्य भाषाओं में स्वर व्यञ्जन न मिलें। प्रश्न तीसरी भाषा को किस लिपि में लिखने का नहीं है। तीसरी भाषा पढ़ाने का तात्पर्य यह है कि कभी अवसर आने पर उस भाषा-भाषी बंधु से बातचीत द्वारा अपना काम निकल सके। तृतीय भाषा का अध्ययन सतत चलता रहना चाहिये। सेकेण्डरी या हायर सेकेण्डरी परीक्षा के बाद बंद कर देने से तो पढ़ा हुआ पाठ्यक्रम भी भूल जायेंगे। आज व्यवहार में स्थिति यही तथा ऐसा करने से तो उद्देश्य भी पूरा नहीं होगा— जिस उद्देश्य को लेकर तृतीय भाषा आरम्भ की गई थी।

हर भाषा के उच्चारण के लिये भौगोलिक पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक धरातल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बिना उपयुक्त भौगोलिक सांस्कृतिक पोषण पाये शिक्षक महोदय अध्यापन के समय न्याय नहीं कर सकते। इस सम्बन्ध में समय रहते उचित कदम उठाया जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में शिक्षकों के आदान प्रदान का तक दिया जा सकता — पर देखना यह है कि क्या मद्रास का शिक्षक कश्मीर में तथा बिहार का शिक्षक महाराष्ट्र में जम सकेगा ? सत्र के आरम्भ में या सत्रान्त पुनश्चर्या पाठ्यक्रम की व्यवस्था भी की जानी चाहिये। फिर भी कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि क्या यह अल्पावधि प्रशिक्षण पर्याप्त होगा ? क्या इस व्यवस्था से आवश्यकतानुसार शिक्षक तयार किये जा सकेंगे ? इसमें सन्देह है।

तृतीय भाषा के अध्ययन के लिये कितना समय दिया जाय? इसमें उत्तीर्ण होना आवश्यक रहे या नहीं इस पर प्रबुद्ध जनों को विचार करना चाहिये। कुछ स्थानों पर विद्यार्थियों को तृतीय भाषा की परीक्षा ही नहीं देनी पड़ती है, केवल कक्षा में उपस्थिति ही पर्याप्त है, कुछ स्थानों पर उत्तीर्ण होने के लिये अन्य भाषाओं की अपेक्षा तृतीय भाषा में कम अङ्क से ही काम चल जाता है। इन सब बिन्दुओं पर अग्रिम विस्तृत आयोजन आवश्यक है।

त्रिभाषा सूत्र का प्रयोग करते समय भाषा एवं साहित्य का अन्तर स्पष्ट होना चाहिये। अग्रिम रूप से यह भी तय कर लिया जाना चाहिये कि भाषा के साथ-साथ क्या साहित्य की भी शिक्षा दी जायगी ? यदि साहित्य की शिक्षा साथ-साथ न दी गई तो साहित्य की शिक्षा कब प्रारम्भ होगी ?

तृतीय भाषा के अध्यापन के साथ साथ उसके व्याकरण की शिक्षा का क्या स्थान होगा ? व्याकरण की शिक्षा के बाद भाषा का अध्यापन होगा या भाषा के अध्यापन के दौरान समय-समय पर व्याकरण के नियमों की भी शिक्षा दी जायगी ? तृतीय भाषा के शिक्षक को इन सब बिन्दुओं पर गंभीर मस्तिष्क से सोच कर तैयार रहना चाहिये ।

आशा है राष्ट्रीय शिक्षा नीति निश्चित करते समय इन सब बातों पर ध्यान दिया जायेगा ।

अर्थशास्त्र शिक्षण

- OO -

शिक्षा के स्वीकृत उद्देश्यो मे से 'आर्थिक दक्षता' भी एक है। यहा यह स्मरण रखना चाहिए कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अर्थशास्त्र के क्षत्र पर काफी विचार विमर्श हुआ है। समाज में सुधार लाने के लिए शिक्षकों, अर्थशास्त्रियों तथा समाज सुधारकों में विचार विमर्श होता रहा है। अर्थ शास्त्रियों एवं शिक्षकों ने इस पर भी विचार किया कि अर्थशास्त्र के शिक्षण को किस प्रकार अधिक उपयोगी बनाया जाय। तीव्र गति से वैज्ञानिक विकास अन्तर्राष्ट्रीय तनाव, तीव गति से उत्पादन इन सबका प्रभाव शाला पर भी स्पष्ट दीखता है।

जनतन्त्रीय नागरिकता व अच्छे नागरिकों का निर्माण आज शिक्षा के उद्देश्य बने हुए हैं। नागरिकता की शिक्षा मे शिक्षाशास्त्रियों ने इतिहास, नागरिक शास्त्र भूगोल, अर्थशास्त्र तथा समाज शास्त्र का शिक्षण तथा राजनैतिक संस्थाओं का ज्ञान एवं कर्तव्यों तथा अधिकारों का ज्ञान ही प्रमुख माना है। पर प्रश्न यह है कि क्या आज नागरिकता की शिक्षा ही पर्याप्त है? राजनीति के ज्ञान के आधार पर किये गये कई निर्णय आर्थिक नीतियों पर विचार नहीं करने से अधूरे ही रह जाते हैं। नागरिक नीतियों को उपभोक्ता श्रमिक किसान व व्यापारी अपने-अपने क्षेत्रों में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संस्थाओं में विचार करके प्रभावित करते हैं। मजदूर संघो व नागरिक दलो का प्रभाव भी स्पष्ट है। आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में राजनैतिक स्वतन्त्रता अर्थहीन है।

अर्थशास्त्र की शिक्षा की व्यवस्था आसान कार्य नहीं है। व्यापारी लोग कहते हैं कि छात्रों को स्वतन्त्र व्यापार के बारे में पढ़ाया जाय पर वे मुद्राप्रसार मुद्रा-संकुचन तथा बेकारी के विषय में कुछ भी नहीं कहते। श्रमिक दल कहते हैं कि अर्थतन्त्र में श्रमिकों का स्थान-पढ़ाया जाना चाहिए पर श्रमिक सम्बन्धों या प्रजनतन्त्रीय कार्यों के लिए बहुत कम संकेत

करते हैं। शालाओं में सभी वर्गों के बच्चे बिना किसी भेद भाव के शिक्षा पाते हैं अतः यह असम्भव है कि किसी एक वर्ग के हितों का ध्यान रख कर शिक्षा व्यवस्था की जा सके। प्रयत्न यह होना चाहिए कि सभी दलों के सामान्य हितों पर शिक्षा व्यवस्था आधारित हो, सामाजिक लाभ को दृष्टि में रखकर सभी समस्याओं पर वस्तुगत विवेचन हो। ऐसा करके वे सभी दलों की सहानुभूति प्राप्त कर सकेंगे और यह उत्तरदायित्व शालाओं का होना चाहिए।

आजकल शालाओं में प्रचलित पाठ्यक्रम विद्यार्थियों पर भार समझा जा रहा है। ऐसी स्थिति में सामाजिक आवश्यकता रुचि का ध्यान रखते हुए अर्थशास्त्र का पाठ्यक्रम तैयार करना आसान नहीं है। बहुत कम जगहों पर हायर सेकेण्डरी स्कूलों में अर्थशास्त्र पढ़ाने की व्यवस्था है। कई छात्र तो हायर सेकेण्डरी कक्षाओं में अर्थशास्त्र पढ़ते ही नहीं हैं। जो विद्यार्थी हायर सेकेण्डरी परीक्षा के बाद पढ़ना बन्द कर देते हैं वे तो अर्थशास्त्र का सामाजिक ज्ञान के साथ ही कुछ शिक्षण प्राप्त कर पाते हैं। ऐसी स्थिति में आर्थिक सक्षमता का उद्देश्य कहां तक प्राप्त हो सकेगा ? यह विचारणीय है।

कुछ स्थानों पर यह भी देखा जाता है कि स्कूलों में अर्थशास्त्र शिक्षण व्यवस्था तो है पर पढ़ने वाले छात्र नगण्य हैं। ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि छात्रों को आकर्षित करने वाला पाठ्यक्रम बनाया जाय नवयुवकों की रुचि के अनुसार पाठ्यक्रम में समाज व देश की समस्याओं का अध्ययन सम्मिलित किया जाय तथा इस बात का ध्यान रखा जाय कि इन बातों के अध्यापन के साथ आर्थिक सिद्धान्तों व तथ्यों का ज्ञान प्रदान किया जाय। शिक्षण में रुचि उत्पन्न करने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किये जाने चाहिये, जैसे–पाठ का प्रभावी प्रस्तुतीकरण, व श्रव्य दृश्य साधनों का प्रयोग आदि। अर्थशास्त्र के अध्ययन को कितना प्रोत्साहन मिला है–इसके लिए लेखक के पास कोई आंकड़े तो नहीं हैं पर विद्यार्थियों में अर्थशास्त्र विषय प्रिय होता जा रहा है अधिकाधिक विद्यार्थी इसे पढ़ने में रुचि बता रहे हैं।

आर्थिक मूल्य

वस्तुओं की अदल-बदल तथा वस्तुओं के उत्पादन व उपभोग से आर्थिक मूल्य जुड़े हुए हैं। इन पर मूलतः अच्छा जीवन निर्भर है। सेवाओं और वस्तुओं का उत्पादन हर नागरिक का कर्त्तव्य होना चाहिए। इसी सन्दर्भ में एक बार महात्मा गांधी ने कहा था कि जो मेहनत नहीं करता वह चोरी का अन्न खाता है। आज की अर्थ व्यवस्था यह है कि एक व्यक्ति कोई

भी काय सम्पूण रूप से पूरा नहीं करता, जिस प्रकार के दक्ष ,श्रम,में वह कुशल है वही काम वह करता है तथा शेष काय साथी लोगो के लिए छोड देता है क्योकि वे भी काम के उस भाग में दक्ष है।

अथतन्त्र का ज्ञान

किसी देश के,आर्थिक विकास में वहा के नागरिको को वहा की आर्थिक सम्पन्न वस्तुओं के उत्पादन–उपभोग–विनिमय वितरण, व सार–सम्भाल का ज्ञान बहुत महत्त्व रखता है। शाला का उद्देश्य यह होना चाहिए कि छात्र आर्थिक प्रणालियो के सम्बन्ध म ज्ञान सग्रह करने की अपेक्षा ज्ञान का दनिक जीवन म उपयोग करें। शिक्षक का यह चातुर्य होना चाहिए कि वह बच्चों को अधिक से अधिक आर्थिक प्रणालियों के बारे में,जानकारी प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु बनादे। जानकारी चारों ओर आस पास प्राप्त वस्तुओं के अध्ययन तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए–बल्कि इस दृष्टिकोण से जानकारी दी जाना चाहिए कि आज राष्ट्र परस्पर निभर हो गये हैं। बच्चों को न्यूनातिन्यून नाचे लिखा ज्ञान तो होना ही चाहिए

१ स्वयत्रचालित उद्योगों का ज्ञान श्रम-विभाजन, विभाजनो का सयोजन,
२ वृहद उद्योगों से पूँजी निर्माण तथा उसकी गति से सम्बन्ध, रुपये की आवश्यक मात्रा
३ श्रम का स्थान मजदूरी तय होने का तरीका, मजदूर का स्वामी व पूँजी से सम्बन्ध
४ मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया
५ अथतन्त्र मे सरकार का स्थान
६ मुद्रा व साख का स्थान एव मान और
७ अन्य आर्थिक प्रणालियां तथा उनका आलोचनात्मक मूल्याङ्कन।

विद्यार्थी आर्थिक प्रजातन्त्र, आर्थिक नियोजन के बारे में समझने का प्रयास करें। आने वाली पीढी को आर्थिक जगत में अधिक न्यायसगत, अधिक मानव कल्याणकारी तथा प्रजातन्त्र को व्यावहारिक बनाने के लिए शिक्षक शालाओं में महत्वपूण काय कर सकते हैं। बच्चों को केवल सूचना दी जाय, पढ़ाया ही जाय तो शिक्षा प्रचार का साधन मात्र हो जायगी। बच्चों को वाद विवाद करने, स्वतन्त्र निणय लेने, आलोचनात्मक दृष्टि से सोचने एवं शोध करने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए।

अर्थव्यवस्था में व्यक्ति का स्थान

निर्देशन —

जो विद्यार्थी माध्यमिक कक्षाओं की पढ़ाई समाप्त कर बाहर आये तो उन्हें अपनी पसंद रुचि रुझान व्यावसायिक धारणा एवं मूल्य का ज्ञान होना चाहिए। विभिन्न प्रकार से परीक्षणोपरान्त शिक्षक छात्र एवं अभिभावक मिलकर मूल्याङ्कन करें निश्चित करें। आर्थिक दृष्टि से कई लाभप्रद उद्योग हैं पर उन व्यवसायों में आवश्यकतानुसार बच्चों की रुचियां योग्यताएं एवं क्षमता नहीं है तो बच्चों को अपनी कमियां समझा कर उन व्यवसायों में प्रवेश करने से रोकना चाहिए। इससे व्यक्ति का परिवार का तथा मोटे रूप से राष्ट्र का हित होगा। किसी भी बच्चे के लिए कोई व्यवसाय निश्चित करते समय उसके माता पिता के घुघले विचारों पर ही आग्रह नहीं किया जाय बल्कि यह भी देखा जाय कि उस प्रकार का पाठ्य क्रम सम्पूर्ण करने पर बाजार में उस प्रकार के श्रम की कितनी मांग होगी क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों में श्रमिकों की मांग समय समय पर बदलती रहती है। रोजगार जीविकोपार्जन का साधन तो है ही, पर इसके साथ ही इन प्रश्नों पर भी विचार करना चाहिए कि बच्चा क्या बनना चाहता है ? उसकी किस प्रकार की सामाजिक आर्थिक प्रतिष्ठा है ? किस प्रकार के रोजगार मूल्य का विकास चाहता है ?

योग्यताएँ प्रकृतिप्रदत्त हैं जबकि रुचियां परिवर्तनशील। जब तक किसी योग्यता के साथ प्रगाढ़ रुचि नहीं होगी सफलता में संदेह हो सकता है। कल्पना कीजिये कि एक बच्चा डाक्टर बनना चाहता है। ७-८ वर्ष स्कूल में पढ़ने के बाद उसका परीक्षण किया गया तो वह उस व्यवसाय के लिए उपयुक्त नहीं पाया गया पर उसने यान्त्रिक क्षेत्र में अच्छी कुशलता प्राप्त करली। ऐसी स्थिति में बच्चे को चिकित्सा व्यवसाय से सम्बन्धित यान्त्रिक क्षेत्र में कार्य करने की राय दी जा सकती है। यदि उसका प्रभावी व्यक्तित्व है तो वह मेडिकल रिप्रजेन्टेटिव बन सकता है। यदि वह व्यवसाय में रुचि वाला व अच्छा प्रबन्धक है तो चिकित्सालय में व्यवस्थापक बन सकता है। इस प्रकार निर्देशन-सेवाओं का महत्व स्पष्ट है।

व्यावसायिक प्रशिक्षण

विभिन्न व्यवसायों में प्रवेश करने से पूर्व प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए। कई व्यवसायों में प्रवेश के लिए तो सामान्य तैयारी की जरूरत

होती है जसे– पूव की परीक्षा में प्राप्तांक। दूसरे प्रकार के प्रशिक्षण से विशिष्ट प्रकार की आदतें व प्रवृत्ति का विकास किया जाता है जैसे स्वच्छता स्फूतता, व्यवस्था, धैय, विश्वसनीयता–उत्तरदायित्व, आत्मनिभरता आदि। किसी भी व्यवसाय के लिये ये गुण उपयोगी हैं। इन पर बारम्बार आग्रह करके इन गुणों का विकास किया जा सकता है। इन गुणों की अधिक मात्रा अधिक सफलता प्रदान करायेगी। जो स्पष्ट, सुदर एव स्फूर्ति से लिख सकता है उस पर निभर रहा जा सकता है कि वह समय पर काम पूरा कर लेगा। प्रयोगा से सिद्ध हो गया है कि काम की आदतों का बुद्धि के स्तर से कोई सम्बध नहीं है।

बुद्धिमान् उपभोक्ता

उपभोक्ता की शिक्षा का–विशेषत आज के तकनीकी युग में–अत्यधिक महत्व है। हम सब उपभोक्ता हैं तथा दैनिक जीवन की जरूरत की विभिन वस्तुएँ खरीदते हैं। इस भांति खरीददारी में बुद्धिमानी बरतना आवश्यक है। उपभोक्ता मे बचत अच्छी व्यवस्था एव वस्तुओं के बारे में पूण ज्ञान होना आवश्यक है। मदी के समय में तो यह और भी आवश्यक हो जाता है। कि साधनों का अधिक सावधानी से उपयोग किया जाय जिससे उपभोक्ता भोजन वस्त्र, मकान, स्वास्थ्य एव मनोरजन के साधनो का बुद्धिमत्ता से उपभोग कर सकें, तकनीकी ज्ञान का विकास हो तथा विवेकपूण बचत की जाय। शाला जीवन में बचत को प्रोत्साहन दिया जा सकता है, सहकारी भण्डार के माध्यम से अच्छी व्यवस्था का विकास किया जा सकता है, वस्तुओं के बारे में ज्ञान दिया जा सकता है पर प्रश्न यह है कि देगा कौन व कब?

अधिकांश व्यक्ति नौकरी करते हैं। उन्हें समय नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में महिलाएँ खरीददारी करती है अत बालिका विद्यालयों में यह सब व्यवस्था होनी चाहिए। कई बार हम लोग विज्ञापनों के आधार पर वस्तुएँ खरीदते हैं। भारतवष का जहां तक प्रश्न है विज्ञापनों पर शत प्रतिशत विश्वास नहीं किया जा सकता अत केवल विज्ञापनों के आधार पर ही हमें वस्तुए नहीं खरीदना चाहिए पर हां उनका भी ज्ञान अवश्य होना चाहिए। विज्ञापनों से बिक्री बढती है उपभोक्ताओं को नई वस्तु का ज्ञान होता है, इससे उस वस्तु की मांग बढती है फलत उत्पादन को प्रोत्साहन मिलता है। बडी मात्रा में उत्पादन होने पर वस्तुओं का सस्ती दर पर उत्पादन किया जाता है जिससे उपभोक्ताओं को चीजें सस्ती मिलती हैं।

इस दृष्टि से विचारक बड़े उपयोगी होते हैं। इनके अतिरिक्त अनेक विषयों पर अपने भाषणों तथा जनसाधारण के लिए कई लेख प्रकाशित किया करते हैं तात्कालिक समस्याओं पर इनके माध्यम से सभी के विचारों का पता लगता है।

इनके विवेचन के बाद यहाँ अर्थशास्त्र शिक्षण के उद्देश्यों पर विचार करना समीचीन जान पड़ता है। किसी विषय का अध्यापन करना हो अध्यापन के पूर्व उसके उद्देश्य एवं लक्ष्यों का निर्धारण आवश्यक है। बिना लक्ष्यों को निर्धारित किये अध्यापन करना अंधेरे में तीर मारने के समान है। यदि लक्ष्य ही स्पष्ट नहीं है तो उन्हें प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता और न उनको प्राप्त करने के लिए उस दिशा में कोई प्रयत्न ही किया जा सकता है। अर्थशास्त्र शिक्षण के उद्देश्य देश के अर्थतन्त्र को दृष्टि में रख कर निश्चित किये जाते हैं। अर्थशास्त्र शिक्षण के उद्देश्यों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—१ सामान्य एवं २ विशिष्ट। प्रो० बाइनिंग एवं बाइनिंग, एम पी मुखर्जी तथा प्रो० [illegible] के अनुसार अर्थशास्त्र शिक्षण के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं

सामान्य उद्देश्य

१ देश की आर्थिक स्थिति का छात्रों को ज्ञान कराना भारतीय विद्यार्थियों के लिए यहाँ की कृषि उद्योग व्यापार आदि का ज्ञान आवश्यक है इससे छात्र आर्थिक वातावरण समझने के लिए सक्षम बनेंगे तथा दैनिक जीवन की व्यावहारिक समस्याओं को सुलझा सकेंगे।

२ छात्रों में आर्थिक समस्याओं के लिए व्यापक सामाजिक दृष्टिकोण का विकास करना जिससे वे आर्थिक समस्याओं के सुलझाने में सफल हो सकें तथा लाभ को दृष्टि में रख कर व्यवसाय का चुनाव कर सकें।

३ देश की राष्ट्रीय आय तथा रहन सहन के स्तर में वृद्धि करना। इन दोनों बातों से नागरिकों की आर्थिक स्थिति का पता लग सकता है योजनाओं के लक्ष्यों के बारे में संकेत मिल सकता है।

४ आर्थिक जीवन को उन्नत व सरल बनाने के लिए सामूहिक उपभोग, उत्पादन आदतों आदर्शों, इच्छा रुचि एवं टेव आदि को प्रोत्साहन देना।

५ दैनिक जीवन में अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के ज्ञान को व्यवहार में लाने के लिए छात्रों को प्रशिक्षित करना।

६ छात्रों को आर्थिक उन्नति एव सामाजिक सुधार के लिये तत्पर करना तथा,

७ छात्रों में श्रम के प्रति निष्ठा, गौरव एव प्रतिष्ठा उत्पन्न करना।

विशिष्ट उद्देश्य

१ लगान, लाभ कर द्वारा आर्थिक विषमता का निवारण सुझाना, आज भारत की यह मुख्य समस्याओ मे स एक है।

२ नागरिकों को कुशल प्रब धक बनाना।

३ पारिवारिक आय-व्यय के व्यावहारिक महत्व को समझने की क्षमता प्रदान करना जिससे वे भोजन, वस्त्र, मकान, स्वच्छता एव स्वास्थ्य पर विवेक से मितव्ययतापूण खच कर सकें।

४ कुशल उपभ क्ता के रूप में नागरिकता का विकास करना।

५ उपभोक्ता मे उस दशन का विकास करना जिससे वह अवकाश का सदुपयोग कर सके; साथ ही अच्छी क्रय कला का विकास करना जिससे वह अपनी व्यावसायिक रुचियों को सन्तुष्ट कर सके।

६ सावजनिक व्यय के महत्व को समझने योग्य बनाना।

७ वांछित आर्थिक मूल्यों का विकास करना।

८ छात्रों को उन स्रोतों से परिचित कराना जिनसे उपभोक्ताओं को सूचनाय मिलें।

९ आर्थिक कल्याण हेतु सहकार की वृत्ति का विकास करना।

१० लाभ की अर्थ व्यवस्था म उपभोक्ता के कार्यों की सराहना।

११ विज्ञापन एव प्रचार क तरीकों का तुलनात्मक मूल्यांकन करने योग्य बनाना।

अर्थशास्त्र की शिक्षा का क्षेत्र

विषय के रूप मे अथशास्त्र को महाविद्यालयों में अच्छी तरह परिभाषित किया जाता है। पर क्षेत्र के सम्बन्ध में हायर सैकेण्डरी स्तर पर भी बातचीत करना उचित लगता है। जहा तक राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोड का प्रश्न है अथशास्त्र हायर सकेण्डरी कक्षाओं म १९५७ से आरम्भ किया गया है इसके पूव अर्थशास्त्र का थोड़ा-बहुत ज्ञान सामाजिक ज्ञान के साथ दे दिया जाता था तथा कॉलेजों की इण्टरमीजियेट परीक्षा का एक

ऐच्छिक विषय नागरिक शास्त्र, भूगोल इतिहास आदि के समान एक विषय था। १९५७ के बाद भी सामाजिक ज्ञान एक विषय के रूप में पढ़ाया जाता रहा है। कुछ अन्य परिषदों में अर्थशास्त्र पूर्व से ही एक विषय के रूप में प्रचलित था–उदाहरणार्थ हाई स्कूल एवं इण्टरमीडियेट बोर्ड उत्तर प्रदेश इलाहाबाद।

अर्थशास्त्र के अध्ययन के विकास के लिए नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिये –

१ छात्रों के सामने अधिक प्रभावी ढंग से विषय चयन के पूर्व अर्थशास्त्र–शिक्षण के उद्देश्यों व क्षेत्र पर पर्याप्त प्रकाश डाला जावे।

२ अधिकाधिक शालाओं में अर्थशास्त्र के पठन-पाठन की व्यवस्था की जाय।

३ महाविद्यालयों को चाहिए कि वे अर्थशास्त्र सहित हायर सैकेण्डरी परीक्षा उत्तीर्ण छात्रों को प्रवेश के समय प्राथमिकता दें।

अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रम में आर्थिक सिद्धान्त, आर्थिक समस्याएं, व्यापारिक शिक्षा कृषि व व्यावसायिक शिक्षा सम्मिलित की जानी चाहिए। शिक्षण की मात्रा व किस्म इस पर निर्भर करेगी कि शिक्षक महोदय की तैयारी कितनी है? प्रयोग की जाने वाली पाठ्यपुस्तक किस स्तर की है? इसके लिए यह भी आवश्यक है कि अर्थशास्त्र की पुस्तक पाठ्यपुस्तक के रूप में स्वीकार करते समय पुस्तक की किस्म लेखक का अध्ययन अध्यापन अवधि भी देखी जानी चाहिए। अब तक होता यह रहा है कि अर्थशास्त्र की पुस्तकें महाविद्यालयों के प्राध्यापकों द्वारा लिखी होती हैं। वे व्याख्यान विधि से पढ़ाते हैं। महाविद्यालय साधन सम्पन्न होते हैं। पुस्तक लिखते समय भी उनके सामने उन्हीं महाविद्यालयों का चित्र रहता है। विद्यालयों की स्थिति उनके सामने नहीं होती। ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि अधिकाधिक शाला के अध्यापकों को अर्थशास्त्र की पुस्तकें लिखने को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। पाठ्यपुस्तक स्वीकृत करने वाले मण्डल को चाहिए कि वह एक से अधिक पाठ्यपुस्तकें स्वीकार करे। इससे शिक्षकों व छात्रों के सामने अच्छी पुस्तकें चुनने का विकल्प रहेगा। शिक्षकों के लिए भी संकेत-पुस्तिका तैयार की जानी चाहिए।

अर्थशास्त्र के अध्ययन के क्षेत्र में किन किन बातों का समावेश किया जाय? यह एक विवादास्पद प्रश्न है। अर्थशास्त्र के अध्ययन के क्षेत्र में

नीचे लिखी बातों को सम्मिलित किया जाना चाहिए —

१ क्या सभी नागरिकों में समान आर्थिक विचार व दृष्टिकोण हैं ?

२ आर्थिक क्षमताओं का हमारे स्कूली छात्रों में कहा तक विकास हो रहा है ?

३ प्राप्त की जाने वाली आर्थिक क्षमताओं को किस प्रकार विभिन्न कक्षाओं के स्तर पर बाटा गया है ?

४ हायर सकेण्डरी परीक्षा के पाठयक्रम में अर्थशास्त्र के अध्ययन को क्या भार दिया गया है ?

५ क्या विद्यार्थियों के काय व उनके अनुभवों को विषय से जोड़ा गया है ?

६ ये निणय लेने वाले कौन हैं ?

७ शिक्षण में किस प्रकार की सहायक सामग्री की जरूरत होगी ?

८ शिक्षण सहायक सामग्री कौन तैयार करेगा ? और

९ विशिष्ट दल व विशिष्ट रुचि के साथ शाला कैसे व्यवहार करेगी?

आर्थिक मूल्य एव स्वनिणय

गरीबी का डर व्यक्ति को सतत निर तर काय करते रहने को प्रेरित करता है। वृद्धावस्था प तन एव बेकारी का बीमा न होने से सामाजिक सुरक्षा बलना की बातें हो गई हैं, पर मूल बात यह है कि रुपया ही सब कुछ नहीं है। शक्तिचातुय स्वास्थ्य एव दक्षता का प्रतिस्थापन रुपया तो नहीं हो सकता। मनुष्य को ऐसे मूल्यो पर भी ध्यान देना चाहिए जो धन सम्पत्ति स सम्ब धित नहीं हैं। आदश बिंदु तक व्यक्ति का विकास हो, इसके लिए जरूरी है कि प्रकृति से प्राप्त व्यक्ति के गुणो का पूण विकास हो। धनी होना भी सफलता का एक गुण माना जा सकता है। चिकित्सक जो सेवायें प्रदान करते हैं उन्हें हम रुपयों म तो नहीं आँक सकते। श्रमिक, प्रब धक व पू जी विनियोग करने वाले झगड़ते हैं यही इस बात प्रमाण है कि उनकी सेवाओं का मूल्य भिन्न भि न है। इसी भांति वैज्ञानिक, समाज सेवी तथा सजनशील व्यक्ति के कार्यों को रुपया म नहीं आंका जा सकता। बड़े बड़े उद्योग सस्थानों म सफलता का अर्थ है वस्तुओं, उत्पादन के साधनों व वितरण पर नियन्त्रण। बड़े पमाने पर उत्पादन से वस्तु प्रति इकाई सस्ती पड़ती है, इससे पू जी का केन्द्रीयकरण होता है तथा लाभ की मात्रा

भी उसी अनुपात में बढ़ जाती है। शाला यदि बच्चों को मुद्रा प्राप्ति का कोई रास्ता बताती है तो वह बच्चों में मुद्रा के प्रति प्रेम व उसकी उपासना के बीज बोती है।

आर्थिक मूल्यों का समन्वय

यदि नकारात्मक रूप से कहा जाय तो समन्वय का अर्थ है 'विरोधी मूल्यों का अभाव।' व्यक्ति जिस काम में लगा हुआ है उससे उसका चरित्र, बुद्धि तथा सामाजिक स्तर जाना जा सकता है। वह अपने ही व्यवसाय में लगे व्यक्तियों को मित्र बनायेगा अपने व्यवसाय के लिए आवश्यक ज्ञान से सम्बन्धित पुस्तकें पढ़ेगा, व्यवसाय में इच्छानुसार हो वह सच्चाई, ईमानदारी साहस एवं धैर्य का विकास कर लेगा। वह अपने काम में अपने इष्टदेव के दर्शन करेगा— उसके आध्यात्मिक मूल्यों का विकास होगा। ऐसा शायद ही कोई व्यक्ति होगा जिसका व्यक्तित्व शत प्रतिशत रूप से उसके व्यवसाय के लिए आवश्यकतानुसार गठित हो। दैनिक जीवनक्रम से जीविका कमाने वालों के लिए यह एक दुःखद बात है कि ऐसे कामों में धैर्य साहस पहल ज्ञान शुद्धता सुन्दरता एवं चारित्र भावना नहीं होती। यदि कोई आदमी पूरे मन से काम नहीं करता है तो उसे अपने काम की पूरी मजदूरी लेने का हक भी क्या है? यदि श्रमिकों को उचित पारिश्रमिक, उचित निवास वस्त्र चिकित्सा सेवायें प्राप्त नहीं हैं तो यह आशा क्यों की जाती है कि उनका जीवन उद्देश्यों से सचालित है— व्यावसायिक मूल्यों से उनका जीवन सचालित है?

अर्थशास्त्र–शिक्षण का महत्व

भारतवर्ष विश्व का सबसे बड़ा जनतन्त्रीय राष्ट्र है। आर्थिक लोकतन्त्र के अभाव में राजनैतिक लोकतन्त्र मूल्यहीन है। साधारण नागरिकों की स्थिति अच्छी नहीं है उनके मतों को आसानी से खरीदा सकता है। आर्थिक विषमता सबसे बड़ा रोग है बेकारी का बोलबाला है इससे मुक्ति हेतु उद्योग व केन्द्रीय शिक्षा पर बल दिया जा रहा है। सभी लोग कुर्सी से चिपके रहना चाहते हैं इसके निवारणार्थ श्रम के प्रति आदर की भावना का विकास करना होगा। शालाओं में सहकारी भंडार के माध्यम से उनमें सहकार के प्रति प्रोत्साहन पैदा करना होगा। शोषण उद्योग, निर्धनता उद्योग धंधों की हीन दशा, कृषि की अवनति एवं अनाधिक्य आदि इसी प्रकार की समस्याएँ हैं जिनका अर्थशास्त्र का विद्यार्थी उपचार सोच सकता है। इस प्रकार आज की स्थिति में अर्थशास्त्र शिक्षण का अत्यधिक महत्व है।

शिक्षा के अविधिक साधन

—००—

आकाशवाणी से मनोरंजन के महत्व से कौन अपरिचित होगा ? बडे-बडे शहरों म लोग आकाशवाणी सुनकर आनन्द मनाते है। जबसे भारत मे आकाशवाणी केन्द्र आरम्भ हुए हैं हर मध्यम श्रेणी के व्यक्ति को भी मनोरंजन का लाभ मिलने लगा है। अब तक लोगों ने इसके विनोद रूपी महत्व को ही समझा है पर इसके शक्षणिक महत्व को भी किसी रूप मे कम नही आका जा सकता। मनोविनोद की अपेक्षा सस्कृति व ज्ञान के विकास के लिए इसका महत्व अधिक है।

पाश्चात्य देशों में आकाशवाणी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। भारत में अधिकाश व्यक्ति आकाशवाणी से गाने, समाचार व कहानियां सुनते हैं। यह एक सामान्य बात है कि जब आकाशवाणी से भाषण या वार्ताए प्रसारित होना आरम्भ होता हैं तो वे उसे बन्द कर देंगे। एक औसत भारतीय साहित्यिक व वैज्ञानिक बातचीत से ऊब अनुभव करता है। उसकी रुचि हल्के फुल्के कार्यक्रम की ओर रहती है। गाने के लिए जिज्ञासा भारतीयों के सोचने के अद्भुत तरीके पर निर्भर है।

यह आवश्यक है कि भारतीय श्रोता आकाशवाणी के महत्व को समझें। किसी भी स्थान पर होने वाली या दूर की घटना को भी इससे सुना जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति ध्यान के साथ नियमित रूप से आकाशवाणी सुनता रहे तो आकाशवाणी उसके लिए शिक्षक का काय कर सकती है। किसी भी आकाशवाणी केन्द्र के काय का अवलोकन कीजिये–वहां कई उपयोगी साहित्यिक वार्ताएँ राजनीतिक चर्चाए तथा आर्थिक समीक्षाएँ प्रसारित की जाती है गाने सुनाये जाते हैं जन साधारण की रुचि के अनुसार प्रख्यात लेखकों, राजनीतिज्ञों और विशेषज्ञों को वार्ताएँ देने के लिए बुलाया जाता है। डॉक्टर यह बताता है कि किस प्रकार हजा या चेचक से बचा सकता है एक उपन्यास लेखक अपनी कथा वस्तु के बारे में बताता है जबकि दूसरा राज-

मीनिश मत पत्र के सही उपयोग से लाभ पर एक भाषण दे सकता है। साथ ही साथ श्रोता विभिन्न शिक्षकों, वैज्ञानिकों समाज सुधारकों, मनोवैज्ञानिकों, स्वास्थ्य विशेषज्ञों से जानकारी प्राप्त करता है वह उनके सम्पर्क में आता है उनके साथ आत्मीयता जोड़ी जाती है यद्यपि वे दूर से बोल रहे हैं। इससे बच्चों को पत्र मित्र के चुनाव में मदद मिलती है जो अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास का एक तरीका है उनके प्रति सहानुभूति का विकास होता है। आकाशवाणी के सम्बन्ध में एक बात यह है कि वहाँ कोई स्कूल जैसा वातावरण नहीं होता। स्कूल बच्चों की ससुराल होती है वे स्कूल जाते हुए रोते हैं पर आकाशवाणी से सुनते हुए ऐसा नहीं होता। वार्ता देने वाला वार्ता को अधिक से अधिक रुचिप्रद एवं उच्च स्तर की बनाने का प्रयत्न करता है लोगों को समझता है। वह जानता है कि यदि वार्ता रुचिप्रद एवं ज्ञानवर्द्धक नहीं हुई तो उसे अगली बार आकाशवाणी में बोलने का अवसर नहीं मिलेगा। इससे सामान्य जनता का जीवन स्तर ऊपर उठाया जा सकता है। बच्चों में किस प्रकार की आदतें डाली जायें ? इसके लिए आश्रित कार्यक्रम तैयार कर आकाशवाणी से प्रसारित किया जाय। इससे बच्चे अधिक प्रभावित होंगे। इससे शिक्षकों को भी इस बात का पता चलेगा कि बालक किस बात को पसन्द करते हैं वे विषय को उसी रूप में कक्षा में प्रस्तुत करने की चेष्टा करेंगे जिससे बच्चे अधिक हृदयगम कर सकेंगे। वह विषय को स्पष्ट संक्षेप में टेक्नीकल टर्मस की जगह जन साधारण की भाषा प्रयोग करके सावधानी से समझा सकता है। वह इस प्रकार धारा प्रवाह बोलता है कि सामान्य व्यक्ति भी उसे समझ लेता है। वे विभिन्न प्रकार की रुचि प्रद सामग्री प्रस्तुत करते हैं। वे केवल एक दो विषयों या वार्ताओं तक ही सीमित नहीं रहते उनकी वार्ताओं में साहित्य विज्ञान कला संस्कृति राजनीति व चलचित्र आदि सभी विषयों को संयुक्त किया जाता है।

कई प्रकार के विशिष्ट कार्यक्रम भी आकाशवाणी से प्रस्तुत किये जाते हैं। उदाहरण के लिए—रवीन्द्र शताब्दी के अवसर पर उनकी कृतियों उनके व्यक्तित्व उनके जीवन चरित्र पर अधिकारपूर्ण सामग्री श्रोताओं को प्राप्त होती है। इसी प्रकार विविध भारती बच्चों के लिए तथा महिलाओं के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत करती है।

भारतीय अशिक्षित जनता को शिक्षित करने के लिए भी आकाशवाणी का कम महत्व नहीं है। इससे ग्रामीण क्षेत्र में प्रौढ़ों को शिक्षा दी जाती

है। इससे भारतीय ग्रामो मे फली अशिक्षा व अज्ञान के निवारण मे पर्याप्त मन्द मिली है। किसान‚ को कई लाभप्रद बातें मनोरंजन के माध्यम से सिखा दी जाती है। उनकी उदासी को दूर करने के लिए उन्हें तरह-तरह के गाते सुनाय जाते हैं। कई मामान रुचिप्रद व मनोरंजक कहानियां भी जुआ, मद्य पान ऋण की बुराइया से बचने के लिए कही जाती हैं। शादी विवाह के मौके पर अनाप शनाप खच को रोकने के लिए भी गाने वार्ताएँ प्रस्तुत का जाती है। कृषि विशेषज्ञ उन्हें बताता है कि किस प्रकार फसल की मात्रा बढाई जाय, किस प्रकार सुधार किया जाय, किस प्रकार हानिप्रद कीडे मारे जाय, किसानों की उपज बढाने के लिए, लघु उद्योगों के विकास के लिए तरीके बताये जाते हैं। सही दिशा में एक काय यह हुआ है कि सरकार कई जगह आकाशवाणी यन्त्र लगवाने म मन्द दे रही है।

आकाशवाणी स ञासकर्त्ता जन साधारण को सन्देश दे सकते हैं। इस प्रकार आकाशवाणी सभी देशों म प्रचार का एक साधन हो गया है। प्रस भी प्रचार का साधन हो सकता है पर आकाशवाणी म जन समूह को एक साथ प्रभावित किया जा सकता है।

जिस प्रकार के आचरण व्यवहार का विकास करना है उसके विकास में आकाशवाणी पर्याप्त मदद कर सकती है। वह एक प्रकार से सांस्कृतिक पुनरुद्धार का कटक है। आज के युग मे घर व शाला का सम्बन्ध टूट सा गया है— आकाशवाणी दोनों को मिलाता है—घर व स्कूल के बीच की खाई को पाटता है।

भविष्य म शिक्षा देने के लिए आकाशवाणी का पर्याप्त प्रयोग किया जायगा, ऐसी आशा है। आज के अमरीकन विश्वविद्यालयो में जहा २०—२५ हजार विद्यार्थी पढ़ते हैं आकाशवाणी मे ही प्रवचन दिये जाते हैं। भविष्य में आक्सफोर्ड व कम्ब्रिज विश्वविद्यालयो के सुविख्यात प्राफेसरो से विश्व भर के विद्यार्थियों के लाभ के लिए प्रवचन दिलाये जा सकते हैं। इस प्रकार आकाशवाणी द्वारा शिक्षा का भविष्य बडा उज्ज्वल दीख पड़ता है।

जो समाचार या वार्ता आकाशवाणी से सुनी जाती है, उसकी समालोचना लिखवाई जा सकती है मूल्यांकन के लिए केन्द्र सचालक के पास भेजी जा सकती है। इसस आने वाली पीढी म सनुलित दृष्टिकोण का विकास होगा, वे दूसरो को समझना सीखेंगे, भाई चारे का विकास होगा,

उनमें भले-बुरे के निर्णय करने की शक्ति का विकास होगा, वे उचित अनुचित बता सकेंगे और यही तो शिक्षा का मूल उद्देश्य है।

मर्यादायें—

आकाशवाणी का जितना उपयोग किया जाना चाहिये, उतना नहीं हो रहा है, वे केवल शोभा बढ़ाने की वस्तु मात्र बन गये हैं। आकाशवाणी एक महगा साधन है। हर स्कूल साधन सम्पन्न नहीं होता उनकी अपनी अपनी सीमायें होती हैं यदि वे आकाशवाणी यंत्र नहीं खरीद पाती हैं तो वे एक महत्वपूर्ण साधन से वंचित रहती हैं।

आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले सभी कार्यक्रम स्कूल के लिए उपयोगी हो, ऐसी बात नहीं है। विद्यालयोपयोगी कार्यक्रमों के लिए सचेत रह कर उनकी तालिका पूर्व ही तयार कर लेनी चाहिये। आकाशवाणी से समाचार या वार्ता जब प्रसारित हो तो कक्षाएँ बन्द करनी पड़ती हैं। कई बार ऐसा न होने पर विद्यार्थी सुनकर लाभ उठाने से वंचित रह जाते हैं।

आकाशवाणी से केवल सुना जा सकता है जबकि कक्षा के कमरे में उनको एक सजीव हड्डा मास वाले व्यक्ति से आत्मीयता होती है। बच्चों की रुचि सीखने की मात्रा का भी ध्यान शिक्षक रखते हैं। पर आकाशवाणी से इसकी कोई व्यवस्था नहीं की जा सकती। फिर कक्षा के कमरे म बच्चे अध्यापक जी से प्रश्न पूछ सकते हैं, अपने स देह दूर कर सकते हैं अपनी जिज्ञासा शान्त कर सकते हैं। पर आकाशवाणी से केवल सुन ही सकते है, उनसे शका समाधान या जिज्ञासा शान्त नहीं हो सकती।

सावधानिया—

आकाशवाणी को शिक्षा के साधन के रूप में प्रयोग करते समय निम्न सावधानिया बर्ती जानी चाहिए—

१ आकाशवाणी ही शिक्षा का एक मात्र साधन नहीं है। यह अन्य साधनो के समान ही एक साधन है—अत पूर्णत इस पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

२ आकाशवाणी से कक्षा के कमरे मे ही सुना जाय बाहर नहीं। ऐसा न करने से अन्य कक्षाओ को बाधा पहुचती है वे अव्यवस्थित भी हो सकती हैं।

३ छात्रोपयोगी कार्यक्रम ही प्रसारित किये जाने चाहिए। कार्यक्रम को चुनते समय छात्रों के ज्ञान, रुचि एवं आयु को भी ध्यान में रखना चाहिए। कार्यक्रम के बारे में पूर्व ही निश्चित हो जाना चाहिए तथा छात्रों को उसके अनुसार सूचित भी कर देना चाहिए।

४ आकाशवाणी से केवल सुना जा सकता है, कक्षा में कमरे की भांति छात्र टिप्पणियां नहीं ले सकते न दुबारा ही सुना जा सकता है, अतः एकाग्र होकर सुनने की आदत डालनी चाहिए।

५. आकाशवाणी से सुनने के बाद छात्रों से विचार विमर्श किया जाय उनसे सार समालोचना लिखवाई जाय, इससे बालकों में स्वस्थ एवं सतुलित दृष्टिकोण का विकास होगा वे विश्व नागरिकता की ओर अग्रसर होंगे।

भ्रमण व शिविर

भ्रमण में भारतवासी कम रुचि लेते हैं। पर यह भी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अविधिक साधन है। भ्रमण के समय दुनिया के झंझटों से मुक्ति मिल जाती है। चहचहाती चिड़िया बड़ी मनोहारी लगती है, प्राकृतिक सौंदर्य आंखों को आराम देता है-हरियाली मनभावन लगती है तथा कोई व्यक्तियों से जानकारी होती है इससे दूसरों के प्रति सहानुभूति का ज्ञान होता है। भ्रमण के समय साथी लोग ज्ञान के लिए होड़ करते रहते हैं भ्रमण में एक अनोखा ज्ञान प्राप्त होता है, ऐतिहासिक महत्व की वस्तुओं, विशाल प्रपात पुरातत्व के नमूने पर्वत का प्राकृतिक दृश्य न केवल मन को स्वस्थ रखते हैं पर मस्तिष्क को सोचने विचारने के लिए भी पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं। ताज महल या फतहपुरी सीकरी के खण्डहर या अजन्ता की गुफायें सदैव यात्रियों को अपनी ओर आकर्षित करती रही हैं।

भ्रमण एक प्रकार का व्यायाम है, वह स्वास्थ्य वर्द्धक है। दुर्गम पर्वतों पर चढ़ना पहाड़ियों पर घूमना, घाटियों से निकलना प्रपातों को निहारना झीलों में तैरना आदि से खोई हुई शक्ति की प्राप्ति होती है। भ्रमण से लौटकर व्यक्ति नई शक्ति एवं उत्साह के साथ फिर से कार्य में लग जाते हैं। निश्चित रूप से भ्रमण शाला व महाविद्यालय की शिक्षा का एक अभिन्न अंग होना चाहिए।

शिविर में प्राकृतिक अवलोकन मिलता है प्राकृतिक सौन्दर्य प्राप्त होता है जिसमें परम शक्ति व मनुष्य के बीच एक प्रकार का सम्बन्ध होता है। दुखी हताश व निराश व्यक्ति के लिए प्रकृति अवलोकन औषधि का काम

करती है, आत्मिक शान्ति मिलती है। ग्रतः व्यक्तियों के लिए शिविर ग्रानन्द का स्रोत है।

ग्राधुनिक समय में शहर के व्यक्तियों के लिए शिविर मनोविनोद का साधन माना जाता है। बर्फ से ढकी पहाड़ियों के दृश्य पुष्पों से प्राच्छादित फलों से लदे पेड़ों की झुरमुट से बहती हुई हवा पानी की शांत स्थिर सतह व्यक्ति के मस्तिष्क में आनन्द भर देती हैं। शिविर में बच्चे सहिष्णु दूसरों के प्रति सहानुभूति त्याग आज्ञा पालन, प्रेम, वात्सल्य अनुराग, प्रतियोगिता आदि सीखते हैं। प्रकृति की गोद में बांसुरी बजाना संगीत सुनना, सौन्दर्य निरीक्षण मन को आह्लादित करता है। शिविर जीवन व्यक्ति को स्फूर्त बनाता है।

बच्चों में आत्म प्रकाशन की बड़ी चाह होती है। वे चाहते हैं कि अन्य व्यक्ति उनकी प्रशंसा करे, उनको सराहे। इसके लिए बच्चों को भ्रमण एवं शिविर में पर्याप्त अवसर मिल सकते हैं। हंसी विनोद से बच्चे संतुष्ट होते हैं, उन्हें प्रसन्नता होती है जब दूसरे साथी उनकी मित्रता स्वीकार करते हैं उन्हें पास बिठाना चाहते हैं। इसे दूसरे शब्दों में सामाजिक स्वीकृति कह सकते हैं। बच्चे भ्रमण व शिविर जीवन में दूसरे साथी लोगों के सम्पर्क में आते हैं वे अच्छे अनुयायी होने के गुण सीखते हैं दूसरों का नेतृत्व करने के गुण सीखते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कक्षा के कमरे की अपेक्षा वे भ्रमण व शिविर में मानवीय गुण—प्रेम, सहानुभूति शिष्टाचार व्यापक दृष्टिकोण दूसरों के प्रति विचार अनुराग वात्सल्य करुणा आज्ञापालन कला के प्रति निष्ठा—आसानी से बात की बात में सीख लेते हैं

मर्यादायें

भ्रमण एवं शिविर शिक्षा के अविभिन्न साधन हैं। इनका पूरा पूरा उपयोग नहीं किया जा रहा है, इसके कुछ कारण हैं—

१ विद्यार्थियों को अधिक समय तक बाहर नहीं रखा जा सकता। घर से दूर रहने पर तरह तरह की आवश्यकताएँ हो सकती हैं सम्भव है जिन्हें आसानी से पूरा न किया जा सके।

२ कई बच्चे स्वास्थ्य की दृष्टि से कमजोर होते हैं, वे भ्रमण में साथ नहीं दे सकते, फलत वे इनसे होने वाले लाभ से वंचित रह जाते हैं।

३ भारतवासी धनी एव साधन सम्पन्न नहीं हैं, वे समय पर शाला का शुल्क भी नहीं भिजवा सकते। ऐसी स्थिति में भ्रमण व शिविर में भाग लेने के लिए छात्रा के अभिभावक व्यवस्था नहीं कर सकते।

४ अधिकाश भारतवासी निरक्षर है, बच्चियों की शिक्षा का उनमे रिवाज नहीं है। वे बच्चियों को स्कूल म पढने भी नहीं भेजते, बच्चियों के भ्रमण व शिविर की बात पर तो वे नाक भौंह सिकोडेंगे — पिछले दशक से बालिकाए स्कूलों मे आने लगी हैं। फिर भी माता पिताओ के दृष्टि कोण में बहुत बडा परिवतन हो गया हो, ऐसी बात नही है।

५ भ्रमण व शिविर मे क्या विषय वस्तु पढाई जायगी, किस प्रकार सौन्दर्यानुभूति कराई जायगी, किस प्रकार काव्य रसानुभूति कराई जायगी, हमारे शिक्षक इस प्रकार के समयानुकूल व्यावहारिक पाठ्यक्रम तैयार करने के योग्य नहीं है, जिससे भ्रमण व शिविर केवल आनन्द मनाने की वस्तु रह जाती है और वास्तविक उद्देश्य प्राप्त नही किया जा सकता।

सावधानिया

१ छात्रों को भ्रमण व शिविर में ले जाने के पूव ही उनके अभि भावकों से स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिए।

२ बच्चों को पर्याप्त आवश्यक वस्तुए लाने का सकेत दे देना चाहिए।

३ जिस जगह का भ्रमण करना हो, उस स्थान से सम्बन्धित पाठ्य क्रम पूव ही तयार कर लेना चाहिए। अच्छा तो यह हो कि एक अग्रिम दल वहां पहुचकर इस काय को पूरा करले।

४ जिस जगह भ्रमण करना हो, उस स्थान की स्वीकृति पूव ही प्राप्त कर लनी चाहिए।

५ जिस स्थान का भ्रमण करना या शिविर लगाना हो उस स्थान के रीति रिवाज, लोक परम्परा निभाने का पूरा प्रयत्न कीजिये। उन लोगों की उनके कार्यों म मदद कीजिये, उनके लिए विघ्न बाधा खडी न कीजिये।

६ भ्रमण से लौटने पर विद्यार्थियों से अपने अनुभव लिखवाना चाहिए जिससे आयोजकों को भविष्य के लिए नई संकेत मिलेंगे तथा बालकों की विचारधारा ज्ञात होगी।

७ जिस स्थान का भ्रमण किया है या शिविर लगाया है, लौटने पर वहां के अधिकारी को धन्यवाद का पत्र लिख दीजिये ऐसा करने से भविष्य में भ्रमण के समय कोई असुविधा आपके सामने नहीं आयगी।

इन सावधानियों पर ध्यान न देने से भ्रमण या शिविर में कई कठिनाइयां उपस्थित हो सकती है। ऐसी स्थिति में शिक्षा का उद्देश्य पूरा न हो सकेगा तथा भ्रमण एवं शिविर एकमात्र मनोरंजन एवं आनन्द के साधन मात्र रह जायेंगे।

अजायबघर

शिक्षा के अविधिक साधनों के रूप में अजायबघर का महत्व आधुनिक समय में बहुत बढ़ गया है। सीखने की प्रक्रिया में अजायबघर के योग का विचार ताजा ही है। अजायबघर में सजीव निर्जीव स्थिर अस्थिर नई पुरानी वस्तुयें संग्रह की जाती हैं उनकी सुरक्षा की जाती है उन्हें प्रदर्शित किया जाता है अप्राकृतिक गति प्रदान की जाती है तथा उनसे शैक्षिक लाभ उठाया जाता है। अजायबघर से सीखने के रूप में कक्षा के कमरे की मर्यादाओं से मुक्ति मिल जाती है और विद्यार्थी अपने सभी अंगों का प्राप्त पूर्व ज्ञान का सीखने में उपयोग करता है। विदेशी विद्वान लेखक हेरिसन[1] का कहना है कि सर्वप्रथम जब अजायबघर स्थापित किया गया तो उससे शिक्षा के अविधिक साधन के रूप में लाभ उठाने का विचार किसी के दिमाग में न था। धनी व्यक्ति अपनी रुचि की वस्तुयें संग्रह कर लिया करते थे प्रारम्भ में यही रूप रहा होगा कालान्तर में धीरे धीरे उनका स्थान सार्वजनिक संस्थाओं ने ले लिया। अजायबघर विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का अनोखा संग्रहालय है जहां से व्यक्तियों को जरूरत की सूचनायें प्राप्त हो सकती हैं। जहां तक सीखने का प्रश्न है प्रौढ़ों के लिए सम्भव है शाला की अपेक्षा अजायबघर अधिक उपयोगी हो सकता है।

वयस्कों एवं बच्चों के लिए अलग अलग अजायबघर हो सकते हैं तथा यदि सम्भव न हो तो वयस्कों के अजायबघर में ही बच्चों के लिए एक विभाग भी हो सकता हैं। यह निश्चित है कि लोगों की रुचि विचार, पसंद भिन्न भिन्न होते हैं अतः इन सबका ध्यान रखा जाना चाहिये।

अजायबघर समाज में शिक्षण का एक प्रबल साधन हो सकता है,

---

1 Harrison Molly Museums in Education Edu tional Abstrats 8 Feb 1956 Vol 1 No 27

समाज में वांछित परिवर्तन लाने के लिए भी इसका उपयोग किया जा सकता है। इससे इस बात का पता लगाया जा सकता है कि बच्चे फुरसत का समय कैसे गुजारते हैं? अजायबघर द्वारा प्रदत्त की गई दूसरी सेवायें प्रत्यक्ष बच्चों की शिक्षा से सम्बन्ध रखती हैं। इनसे चित्रकला व भूगोल के शिक्षण में, नागरिकता के निर्माण में, भाषा के विकास में, गणित में दक्षता प्राप्त करने में मदद मिलती है।

अजायबघर कई उपयोगी सेवायें करता है। वहां की भिन्न भिन्न प्रकार की वस्तुयें देखकर बच्चों में विचारशक्ति का विकास किया जा सकता है। वे कल्पना की उड़ान भर सकते हैं विभिन्न दिशाओं में सोचकर ज्ञान का विकास कर सकते हैं, सजीव निर्जीव के भेद को आसानी से समझाया जा सकता है, सजीव प्राणियों के प्रति सहानुभूति बच्चों में पैदा की जा सकती है। इससे उनमें भले-बुरे को समझने के ज्ञान का विकास होगा, वे संतुलित विचारधारा बना सकेंगे। इससे बच्चों में आलोचनात्मक दृष्टिकोण की प्राप्ति आयगी बच्चे अवकाश का अच्छा उपयोग कर सकेंगे, बच्चों को सौन्दर्यानुभूति कराकर उन्हें कविता रचने की प्रेरणा दी जा सकती है, चित्रकला के विद्यार्थियों को सुन्दर सुन्दर नमूने तयार करने को प्रेरित किया जा सकता है।

अजायबघर की सेवाओं का एक देश से दूसरे देश में स्थानान्तरण कर वहां के लोगों की सहानुभूति प्राप्त की जा सकती है तथा अपनी संस्कृति व सांस्कृतिक मूल्यों का वहां विकास किया जा सकता है।

जीवविज्ञान विषय कक्षा की अपेक्षा अजायबघर में कहीं अच्छा पढ़ाया जा सकता है तथा वह ज्ञान स्थाई होता है। इस प्रकार शिक्षण को अनुभव से सम्बद्ध किया जा सकता है।

कोलमैन[1] महोदय के अनुसार अजायबघर शिक्षण व शोध का अभिन्न व साधन है। उच्च कक्षाओं में जातिशास्त्र पढ़ाते समय अजायबघर का भरपूर उपयोग किया जा सकता है। इसलिए शिक्षा के साधन के रूप में इसके साधनों का विकास किया जाना चाहिये।

प्रत्यक्ष निरीक्षण व सर्वेक्षण के लिए बोर्ड द्वारा पाठ्यक्रम में अजायबघर सम्मिलित किया जाना चाहिये।

---

1 V Laurance Coleman College and University Museums A message for College and University Presidents American Association of Museums 1942 p 73

ये प्रजायबघर सामाजिक व सांस्कृतिक स्थितियों पर प्राधारित होते हैं तथा इनका मुख्य कार्य शैक्षणिक कार्यों का निबाहना है। प्रजायबघर का कितना महत्व है ? यह इससे जाना जा सकता है कि १६५६ में यूनेस्को ने एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रजायबघर स्थापित करने का अभियान चलाया तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भिन्न भिन्न जगहों पर तीन सेमीनार 'शिक्षा में प्रजायबघर का स्थान' विषय पर प्रायोजित किये। इसमें पढ़ गये ४७ पत्रों को Museum नामक पत्र में प्रकाशित किया गया है तथा एक अन्य पत्र Educational Abstracts के १६५६ के फरवरी अंक में ४७ सारांशों, संक्षेपीकरणों को स्थान दिया गया है।

शिक्षण या अध्यापन में प्रजायबघर की उपयोगिता पर भारत सरकार द्वारा नियुक्त की गई इस विषय की विशेषज्ञ समिति व माध्यमिक शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन, केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद ने समय समय पर शिक्षाविदों का ध्यान आकर्षित किया है।

ज्ञान अधिक से अधिक विद्यार्थियों तक पहुंच सके इसके लिये प्रजायबघर में वनस्पति शास्त्र भूगर्भ शास्त्र व अन्य सम्बंधित वस्तुयें संग्रह की जायें। उनका पूर्व योजनानुसार अधिकाधिक उपयोग किया जाना चाहिये।

प्रजायबघर का जितना उपयोग अध्यापन में होना चाहिये उतना नहीं हो रहा है। इसका एक मुख्य कारण तो यह है कि देश के पास साधन नहीं है, पर कुछ विद्वानों की राय में मुख्य कारण यह है कि प्रजायबघर के अधिकारियों तथा शिक्षकों में तालमेल नहीं है, दोनों को पर्याप्त जानकारी नहीं है। ऐसी व्यवस्था वांछनीय है कि अधिक से अधिक प्रजायबघरों का उपयोग शिक्षण में किया जा सके। अपने साधनों के अनुसार हर शाला में अपना एक प्रजायबघर होना ही चाहिये।

जीवन चरित

विश्व की महान विभूतियों के जीवन संघर्ष एवं संघर्ष पर विजय की कहानी बड़ी रुचिप्रद हुआ करती है यदि आप जीवन चरित्र से ऊब, निराशा या असन्तोष अनुभव करते हैं तो आत्मचरित पढ़िये। उदाहरण के लिए महात्मा गांधी की 'सत्य के प्रयोग' आपको एक नई दिशा, नई स्फूर्ति एवं नया उत्साह देगी। टगोर या नेहरू के आत्म चरित भी लिये जा सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये आत्म चरित आपको रुचिप्रद तो लगेंगे ही ये पुस्तकें आप में जीवन के प्रति रस, उत्तेजना एवं साहस भर देगी। जीवन

चरित से व्यक्ति को आनन्द मिलता है, उसके उत्साह में वृद्धि होती है। इसके सिवाय और भी कई प्रकार से लाभ उठाया जा सकता है।

हममें से कई व्यक्ति सम्पन्न एवं समृद्ध जीवन बिता रहे हैं। जो काम हम कर रहे हैं या जहां हम रह रहे हैं वहीं पर हमारा ध्यान केन्द्रित है। जीवन चरित के अध्ययन से जीवन की एक नई शैली से जानकारी मिलती है। सम्भव है यह जीवन की नई शैली हमारे वर्तमान जीवनक्रम से बिलकुल भिन्न हो। आपने कई बार आश्चर्य किया होगा पर जीवन चरित के पढ़ने से अब आपको अधिकारपूर्ण सूचनायें मिल गई हैं। आपके आगे के जीवन का दृष्टिकोण विशाल होना चाहिये। ऐसा तभी हो सकता है जब आप किसी महापुरुष का जीवन चरित पढ़ें। महापुरुष चाहे किसी काल, देश या श्रेणी का हो। जब आप उसके जीवन-चरित में रुचि लेंगे, जब उसके जीवन क्रम को जानेंगे, आप उसके पद-चिन्हों पर चलने की तैयारी करेंगे, कुछ बातें आपको सर्वथा नई व आश्चर्यजनक भी लगेंगी।

हर व्यक्ति का अपना-अपना जीवन क्षेत्र अपना अपना जीवन क्रम होता है। इसमें आप कई बार अनुभव करते हैं कि जो कुछ हम जानते हैं उससे भिन्न या नवीन कुछ नहीं है। जीवन चरित के अध्ययन के माध्यम से व्यक्ति अपना दृष्टिकोण विशाल बना सकता है। पाठक अपनी दुनियां को विशाल एवं जीवन बिताने के लिये रुचिकर बना सकता है। जीवन चरित के अध्ययन से सामान्यज्ञान की वृद्धि होती है। जब तक आप जीवन के विभिन्न पहलुओं पर गहन व बारीकी से विचार नहीं करेंगे जीवन चरित के अध्ययन से कोई विशेष लाभ न उठा सकेंगे। उदाहरण के लिए आप जगदीशचन्द्र बसु या डा० भाभा के बारे में पढ़कर अधिक लाभ नहीं उठा सकते जब तक कि आप अब तक की वैज्ञानिक खोजों के बारे में आवश्यक ज्ञान प्राप्त न कर लें। दूसरा उदाहरण देखिये—आपको राजनैतिक विचारधाराओं का, मान लीजिये ज्ञान नहीं है तो आप पंडित नेहरू का जीवन चरित्र पढ़ कर पूर्वाग्रहों पर दृढ़ रह सकते हैं और आपको तथ्यों में विरोधाभास लग सकता है। इतिहास के विद्यार्थी के रूप में आप इन तथ्यों की थोड़ी बहुत जानकारी रखते हैं। पर इन तथ्यों ने सम्बंधित व्यक्तियों के जीवन को किस प्रकार ध्वनित कर दिया-बदल दिया-यह जीवन चरित्र से ही स्पष्ट होता है। इतिहास इसमें सूचनाएं प्राप्त करने में मदद करता है। जीवन चरित का पढ़ना केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है वरन् इससे मानव को समझने में भी आसानी होती है। मानव समूह का अध्ययन करने से किसी व्यक्ति विशेष के बारे में अधिक जानकारी नहीं हो सकती। मनुष्य में दृष्टि-

कोण के विकास के लिए व्यक्ति विशेष के जीवन चरित का अध्ययन आवश्यक है। इससे उसका व्यक्तित्व परिलक्षित होता है। प्रत्येक पहलू उसके चारों ओर चक्कर लगाता है। जीवन चरित लिखने वालों का मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिये कि वे पात्रों को पसंदगिया प्रकाश में लायें तथा पाठक उन्हें आत्मसात करें उनसे पूर्ण जानकारी प्राप्त करें। व्यक्ति को बड़ा होता हुआ भी देखते हैं उनके विभिन्न गुणों पर भी ध्यान जाता है। कोई कारण नहीं है कि वे गुण, विशेषतायें या लक्षण महत्वपूर्ण न हों, कारण कि उसके भावी जीवन पर इन सबसे प्रकाश पड़ता है।

जीवन संघर्ष

मानव जीवन एक नाटक है। जिससे महान विभूतियों की शक्ति एवं दुर्बलता का आभास होता है। उनके जीवन में आई निराशायें असफलतायें अभाव, डर आप भी बचा लेते हैं। ध्यान रखिये, आप उनके जीवन में आई निराशाओं व असन्तोषों में हिस्सा न लीजिये। जीवन चरित व्यक्ति के जीवन में नायक के रूप में प्राप्त सफलता का ही लेखा जोखा नहीं है। हर व्यक्ति जीवन में संघर्ष पाता है तथा असफलता भी मिलती ही है। व्यक्ति वही है जो अपनी कमजोरियों पर विजय पावे तथा पूर्वाग्रहों पर दृढ़ न रहे। इससे व्यक्ति का अपने साथियों को समझने के लिए सहानुभूति, सहिष्णुता एवं मानवीय दृष्टिकोण प्राप्त होता है।

महान व्यक्तियों के जीवन चरित्र कभी न सूखने वाले प्रेरणा के स्रोत हैं जो दिवास्वप्न से परे ले जाकर वास्तविकता प्रदान करने वाले हैं वे गौरवशाली प्रेरणा के उद्गम है जो विलाप करने वालों को प्रसन्नता देने वाले तथा संघर्षों से लोहा लेने की शक्ति देने वाले हैं। आपको सत्य के जीते जागते उदाहरण मिलेंगे तथा उन्हें यह कहते हुए पायेंगे कि 'कुछ भी असम्भव नहीं है। कोई भी ऐसी विघ्न बाधा नहीं है जिस पर विजय न पाई जा सके।

आप बाल गंगाधर तिलक का जीवन चरित पढ़ जाइये जो महान राजनीतिज्ञ थे। शिक्षा के जो साधन प्राप्त थे तथा जिन विधियों की जानकारी थी उनसे उनको शिक्षित किया गया तथा वे बिना थके लगातार पढ़ते थे और अभ्यास करते थे।

यदि आप यह सोचते हैं कि प्रारम्भिक लाभ ही सब कुछ है, तो चार्ल्स डिकेन्स इसके अपवाद नहीं हैं। उनके पिता बिना सोचे समझे खर्च करते थे—उधार लेकर खर्च करते थे जिसके कारण वे जेल भी गये तथा

डिकेन्स का मनचाहे बच्चे के रूप में पालन पोषण हुआ। ऐसे सजीव उदाहरण बताते हैं कि अवसर आने पर जो आप जानते हैं उससे अधिक शक्ति व योग्यता का प्रदर्शन आप कर सकते हैं। पूर्णता पाने के लिए किसी बाधा को अपने सामने खड़ी न देखिये। यदि आपमें दृढ़ निश्चय व इच्छा शक्ति है तो आप अपना रास्ता अवश्य निकाल लेंगे।

अब साहसी व्यक्तियों के आत्म चरित पर भी ध्यान दीजिये। बहादुर, योद्धा तराकू, हवाबाज तथा गोताखोर के जीवन चरित किसी भी पुस्तकालय में मिल जायेंगे। इन्हें पढ़ते समय आपके बाल खड़े हो जायेंगे, अनायास ही आप इन महापुरुषों पर गर्व एवं प्रशंसा करेंगे।

जीवन चरित एक अन्य प्रकार का साहस भी देते हैं। वे व्यक्तियों को दुःखों एवं दुर्लभ परिस्थितियों में भी धैर्यशील रहना सिखाती है। आपको ज्ञात है कि राणा सांगा शारीरिक रूप से अयोग्य थे पर फिर भी धैर्य व साहस के साथ युद्ध में जूझते रहे। वे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त कर इतिहास में अपना नाम अमर कर गये हैं। महात्मा सूरदास जन्मांध होते हुए भी हिन्दी साहित्य में अमर हो गये हैं। उनका साहित्यिक योगदान उच्च श्रेणी का है।

साहस

प्रारम्भ में फैक्टरियों व कारखानों में निर्दयता से बच्चों के श्रम का शोषण किया जाता था। अंग्रेज लेखक शाफ्टसबरी को इससे बड़ी चिंता हुई। उसने देखा कि बच्चों को उचित पारिश्रमिक नहीं दिया जाता है—इसका उसने बिना ख्याल किये यह तय किया कि मानवता के भले के लिए उनको संरक्षण दिया जाना आवश्यक है। साहस अपूर्व गुण है—एक साहसी व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को भी साहसी बना देता है। भलाई भी ऐसा ही गुण है। एक भला व्यक्ति अपने को आदर्श रूप में प्रस्तुत करके कई लोगों को कल्याणकारी चिंतन की ओर मोड़ सकता है। जब आप किसी महान विभूति का आत्मचरित पढ़ते हुए उसमें खो जाते हैं तो अवश्य ही आप में भी उसके समान बनने की इच्छा जागृत होती है—उसके समान सेवा करने की भावना का विकास होता है। आप अपनी रुचि के अनुसार जीवन चरित चुन लीजिये। अपनी रुचियों का विकास कीजिये विशाल बनाइये। अन्य व्यक्तियों के बारे में अधिक से अधिक जानने का प्रयत्न कीजिये। इस प्रकार से आपको लाभ होगा, ज्ञान व समझ का विकास होगा। आप अपने जीवन को प्रसन्नचित्त एवं सुखहाल बनाने के लिए प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

मनोवैज्ञानिक परीक्षणो की उपयोगिता

—००—

शिक्षण या अध्यापन को अधिक उपयोगी एव प्रभावी बनाने के लिए शिक्षक, प्रधानाध्यापक, परामर्शक माता पिता एव शैक्षिक नेतत्व करने वाले को बालक की योग्यता रुचि रुझान समस्यायें धारणा विचार शक्ति एव मनोवृत्ति आदि के स्तर का ज्ञान आवश्यक है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ही यह है कि बालक स्वय स्थितियो का विश्लेषण कर स्वय निर्णय ले। कोई भी दो विद्यार्थी प्रकृतिदत्त गुणो विशेषताओं आदि म समान नहीं होते हैं। यही व्यक्तिगत विभिन्नता शिक्षा शास्त्रियो मनोवैज्ञानिकों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओ एव चिकित्सकों के लिये अध्ययन का बिन्दु बन गया है। जो कुछ विद्यार्थी कक्षा म बोलता है उत्तर देता है, उस के आधार पर शिक्षक बालक के ज्ञान का अनुमान लगाते हैं इसी भाँति चिकित्सक बच्चे को एक समग्र निगाह से देखकर उसके स्वास्थ्य का पता लगा सकते हैं। इन व्यवहारों की प्रामाणिकता के लिए एक से अधिक बार बालक का निरीक्षण कर लेना चाहिये। कुछ प्रखर बुद्धि वाले बालक स्वय भी अपने बारे म स्थिति का विश्लेषण कर ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। पर अच्छा यह होगा कि इस प्रकार के अनुमानों को परीक्षणों द्वारा प्रमाणित कर लेना चाहिये तथा आवश्यक हो तो अनुमानों म सुधार कर लेना चाहिये।

निर्णय लेने मे सहायक

यदि परीक्षण करते समय प्रमापीकृत परीक्षण का प्रयोग किया गया है तो शिक्षक को निर्णय लेने में सुविधा होगी। वे बच्चे की समूह के साथ तुलना कर सकेंगे व बच्चे का समूह के साथ सहयोग या प्रतियोगिता करते समय भी निरीक्षण कर सकते है। अमुक विद्यार्थी का स्तर निकृष्ट है-यह कहना ही काफी नहीं है। अब तक कक्षा म अन्य विद्यार्थियों के उत्तरों की तुलना म उसका उत्तर किस स्तर का है? इसी भाँति किसी विद्यार्थी को तेज या शरारती कह देना ही काफी नहीं है, सम्भव है

उसकी कक्षा के सभी साथी हो इसी प्रकार के हों। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कुछ भी कहना महत्वहीन है जब तक कि समाज सम्मत मूल्यो एव उन स्थितियों पर विचार नहीं किया जाता है।

परीक्षा दुधारी तलवार है

सुयोग्य अनुभवी एव दक्ष शिक्षक परीक्षणों की सहायता से छात्र की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करते हैं। यदि यही परीक्षण सामग्री अदक्ष व अनुभवहीन शिक्षकों के हाथो म पड गई तो छात्र को, लाभ के स्थान पर हानि भी हो सकती है। विद्यार्थी को समझने के लिये परीक्षण का प्रयोग किया जाता है तो परीक्षणों का उपयोग भी उन दक्ष एव प्रशिक्षित शिक्षकों के द्वारा ही होना चाहिये जो परीक्षणा के बारे मे पूण ज्ञान रखत हैं।

परीक्षण के बारे मे विद्यार्थियो को कहा जाय या नही

परीक्षण लेने का उद्देश्य विद्यार्थियो को स्पष्ट बताया जाना चाहिए, इससे वे परीक्षण को अधिक रुचि से लेंगे। उन्हें यह भी बताया जाना चाहिये कि यह उनके अपने लाभ के लिए है। परीक्षण लेकर विद्यार्थियो के विरुद्ध कोई षड्यत्र तो कर नहीं रहे हैं—फिर उनसे छिपाने में कौन सी बुद्धिमानी है? परीक्षण को जाचने में विद्यार्थियो की भी सहायता ली जा सकती है। परीक्षण एक व्यक्ति का काय नहीं है। इस बात पर बल दिया जा रहा है कि परीक्षण भी 'सामूहिक प्रयास' है।

इन परीक्षणो का सबसे महत्वपूण उपयोग यह है कि ये किसी के लिये भविष्यवाणी कर सकत हैं। जब कोई परीक्षण किसी विद्यार्थी को दिया जाना है तो वह उसकी सम्प्राप्ति बताता है। यदि यह सम्प्राप्ति भावी सम्प्राप्ति की ओर सकेत नहीं करती तो वह निरथक है। सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के तात्कालिक उपयोग के लिये चिन्तित नहीं है पर वे यह जानना चाहते हैं कि परीक्षण देने वाले के व्यवहार भविष्य मे किस प्रकार के होंगे? सावेगिक परीक्षणोपरान्त यदि कोई मनोवैज्ञानिक या चिकित्सक यह बताता है कि अमुक विद्यार्थी का सांवेगिक कुसमन्जन है तो उसके सुधार के उपाय सोचे जायेंगे। भविष्यवाणी किसी भावी व्यवहार के लिये की जाती है।

शाला में विद्यार्थियों के वर्गीकरण में भी इनसे मन्द ली जा सकती है, पर इसके लिये सावधानी बर्ती जानी चाहिये कि यदि वर्गीकरण न

किया गया तो इससे क्या हानि होगी ? या हो सकती है ? इस सम्बन्ध में परीक्षण कुछ नहीं बताता। वर्गीकरण करते समय सावधानी रखनी चाहिये कि विद्यार्थियों में हीन भावना पैदा न हो जाय। यदि प्रखर बुद्धि वाले छोटे बच्चे को बड़े बच्चों के साथ रखा गया तो दूसरे बड़े बच्चे उसकी बातों को बचपना कह कर चिढ़ा सकते हैं। इसी भांति छोटा प्रखर बुद्धि वाला बच्चा उनके साथ समन्जन नहीं कर पाएगा। कुसमन्जित विद्यार्थी शाला घर आदि के प्रतिकूल विचार भी बना लेते हैं वे अपने को असुरक्षित भी अनुभव कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में वे समाज के विद्रोही सदस्य भी बन सकते हैं। इन सब बातों का हल अग्रिम सोच लिया जाना चाहिये।

उत्तम उपलब्धि के आधार पर किसी विद्यार्थी का उच्च कक्षा के लिये छात्रवृत्ति देने के लिये चुनाव किया जा सकता है किसी प्रत्याशा की नियुक्ति के लिये भी भविष्यवाणी उपयोगी हो सकती है किसी विशेष व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिये भी इसी आधार पर उम्मीदवारों का सफलतापूर्वक चुनाव किया जा सकता है। व्यावसायिक संस्थानों में इस प्रकार के परीक्षणों के आधार पर नियुक्तियों के लिये पर्याप्त क्षेत्र है।

प्रखर बुद्धि बालकों को अधिक मात्रा में गृह कार्य दिया जा सकता है। सामान्य छात्र से अधिक गृह कार्य उन्हें बताया जा सकता है वे सामान्य स्तर के गृह कार्य को सामान्य विद्यार्थियों की अपेक्षा शीघ्र पूरा कर सकते हैं।

इससे निर्देशन कार्यकर्ताओं को अपना कार्य सुचारु रूप से करने में सुविधा होती है। किस विद्यार्थी की क्या रुझान है ? बुद्धि किस स्तर की है ? क्या रुचि है ? वह किस व्यवसाय में सफलता प्राप्त कर सकेगा ? उसी के अनुसार उसे पाठ्यक्रम इंगित करते हैं अध्ययन की सुविधा जुटाते हैं। किसी भी छात्र को कोई विशेष पाठ्यक्रम सुझाने के पूर्व वे उसकी रुचि, रुझान, अ रुच, मां बाप की आर्थिक स्थिति, पाठ्यक्रम के समाप्त होने तक लगने वाला समय तथा व्यक्तित्व के गुणों पर भी विचार करते हैं। इन सब बातों के प्रकाश में वे निर्णय लेने की स्थितियां विद्यार्थी के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। उन्हें छात्रों को यह भी बताना होता है कि केवल उच्च स्तर की बुद्धि ही किसी व्यवसाय में सफलता की एक मात्र कुंजी नहीं है।

ये परीक्षण मनोवैज्ञानिक ढंग पर निर्मित होते हैं। ये परीक्षण विश्वसनीय भी होते हैं। परीक्षक की मनोदशा का उत्तर पत्रों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है जो उत्तर सही है चाहे कोई भी परीक्षक इन उत्तर पत्रों

का परीक्षण करें वही का सही उत्तर पायेंगे। समय का अन्तर देकर विभिन्न परीक्षकों द्वारा जांचने पर फलों म कोई अन्तर नहीं पड़ता है। उत्तर पत्रों को जांचने के लिये कुन्जियां तयार की हुई रहती हैं जिससे जांचने म सुविधा होती है। एक परीक्षण को चाहे जितनी ही बार लिया जाय या एक उत्तर पत्र को चाहे कभी भी या कहीं भी जांचा जाय, सही उत्तर एक ही रहेगा। ये बालक की मनोवैज्ञानिक दशा को ध्यान में रख कर तयार की जाती हैं और विद्यार्थियों की आवश्यकता पर बल दिया जाता है। ज्योंही कोई बालक परीक्षा देता है तो वह क्रमश परीक्षा के लिये तैयार होता चलता है। सरल से कठिन की ओर, आसान से जटिल की ओर सिद्धान्त का पालन किया जाता है।

इन परीक्षणों की रचना उद्देश्यों को सामने रख कर की जाती है अतः इन परीक्षणों को जिस वस्तु या उद्देश्य या पाठ्य सामग्री का परीक्षण करना होता है उसी का परीक्षण करती है। इनसे विद्यार्थियों का कक्षा में स्थान निश्चित करने म मदद मिलती है। प्रखर बुद्धि के बालकों को चुनौती देने वाले प्रश्न भी प्रश्नपत्र मे सम्मिलित किये जाने चाहिये। इससे शिक्षक को भी यह जानने में मदद मिलती है कि बालक किस विषय के किस क्षेत्र या किस अंश में उच्च या कमजोर है। इसस शिक्षक विद्यार्थी की कम जोरी के कारणों को खोज सकता है विश्लेषण कर सकता है। शिक्षक या परामर्शक यह जानना चाहता है कि विद्यार्थी किन कारणों से कमजोर है? विद्यार्थी की सम्प्राप्ति को कसे सुधारा जाय? विश्लेषण केवल विद्यार्थी की सम्प्राप्ति के सम्बन्ध में ही नहीं वरन दैनिक हर व्यवहार के लिये आवश्यक है। विश्लेषण से यह ज्ञान होता है कि सम्प्राप्ति को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने वाले घटक क्या क्या हैं? यदि कारणों का पता लग जाय तो उनसे छुटकारा पाने के उपाय सोचे जा सकते हैं व्याधि का उपचार किया जा सकता है। कारणों का निवारण कर विद्यार्थियों को अधिक सीखने के लिये प्रेरित कर सकता है। प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि परीक्षा के समय स्वतन्त्रता पूर्वक पुस्तकें प्रयोग करने से तथा विद्यार्थियों द्वारा उत्तर पत्रों का परीक्षण करने से उन्होंने अधिक सीखा है। इस प्रकार परीक्षण विद्यार्थियों को प्रेरित करते हैं। इस क्षेत्र में और शोध किये जाने की गुंजायश है।

बुद्धि परीक्षणों की बहुत ही आलोचना हुई है तथा उन्हें मापन एवं मूल्यांकन के अपूर्ण साधन कहा गया है। आलोचना में सत्य का कुछ अंश

हो सकता है पर वे सम्भावित सम्प्राप्ति की ओर सकेत करती ही है यह वर्गीकरण साधन है। इसके आधार पर शालाओं का पाठ्यक्रम बनाने मे मदद मिलती है, शिक्षक उसी के अनुसार शिक्षण योजना, प्रस्तुतीकरण, गृह काय की व्यवस्था कर सकते हैं। इसी पर शाला की साख, प्रगति एव नाम निभर करता है। बुद्धि परीक्षणो का उपयोग एव मर्या । से शिक्षको को परिचित होना चाहिये। सावेगिक कुसमञ्जन एव समस्यायें बुद्धि परीक्षणो की सम्प्राप्ति को प्रतिकूल प्रभावित करती है। फलत शाक्षणिक सम्प्राप्ति क सम्ब ध मे भ्रा तिपूण विचार बनाया जा सकता है। बुद्धि परीक्षण विद्यार्थियो को देते समय परीक्षण हेतु प्रतियां, कक्षा पर निय त्रण विद्यार्थियो को सूचनायें देना अटकल लगाना एव परीक्षण क लिए उन्हें प्ररित करना आदि बातो पर भी (यद्यपि इन बातो पर यहां प्रकाश नहीं डाला गया है।) शिक्षकों प्रधानाध्यापकों एव शाला परामर्शको को, जो सफल मनोवज्ञानिक परीक्षण के लिए आवश्यक है, अनिवायत ध्यान देना चाहिए।

— o —

समाजमिति

—०●—

शिक्षा म मनोविज्ञान के प्रवेश से शिक्षा के क्षेत्र में ही क्रांतिकारी परिवर्तन हो गया है। आज के शिक्षाशास्त्री उस वातावरण पर अधिक बल देते हैं जिसमें बालक विचरण करता है, रहता है, काम करता है। सभी शिक्षाशास्त्री एक मत से मानते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य बालक के अस्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है जिससे वह मानवता के कल्याण मे अपना अभूतपूर्व योगदान दे सके। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक बालक का केवल समाज स दूर अलग थलग एकाकी बालक के रूप म नहीं बल्कि एक कक्षा के सदस्य के रूप में उसका अध्ययन करे।

शिक्षक छात्रों को दल के सदस्य के रूप में पढ़ाता है अत यह और भी आवश्यक है कि वह उस दल के बालकों के पारस्परिक सम्बन्धों की क्रियाओं एव प्रतिक्रियाओं को भी समझे। छात्रों में मधुर सम्बन्ध होने पर अध्यापन कितना प्रभावी हो सकता है, यह सभी जानते हैं। यह भी जरूरी है कि शिक्षक हर छात्र को पृथक पृथक इकाई समझ, उसे अन्य बालकों से मौलिक रूप से भिन्न माने। बच्चा समूह में रहता है, अपने व्यवहार से साथियों को तथा साथियों के व्यवहार से स्वय प्रभावित होता है। ऐसी आशा की जाती है कि जिस विद्यार्थी-समाज मे जितने कम तनाव या जटिलतायें होंगी, उनका समायोजन उतना ही अच्छा होगा।

बच्चे किन परिवारों से आये हैं, उनके माता पिता की आय क्या है माता पिता एव भाई बहिनों का शैक्षणिक स्तर क्या है बच्चा किस पड़ोस में रहता है—आदि बातों के आधार पर शिक्षक अनुमान लगा सकता है कि बालक की क्या महत्वाकांक्षाए हो सकती हैं। बच्चो की भावनाओं का सहज ही अनुमान लगा सकते हैं वे बालकों के सीखने की सीमा का भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। इससे शिक्षण के लिए उपयुक्त वातावरण बनाने में शिक्षक को मदद मिलती है। पाश्चात्य देशों में सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन कक्षा

के सुधार में बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ है पर प्राय देखा गया है कि भारतीय शिक्षक इस प्रकार के प्रयोगात्मक अध्ययन की आवश्यकता ही अनुभव नही करते हैं। ऐसी आशा की जाती है कि ऐसे अध्ययन भारतीय विद्यालयों में भी उपयोगी सिद्ध होंगे तथा विद्यार्थी अधिक सीखने की ओर अग्रसर होंगे।

समाजमिति का अर्थ

अंग्रेजी के शब्द Sociometry का हिन्दी रूपान्तर समाजमिति है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इससे एक समूह के सदस्यों की सामाजिक दूरी मापी जाती है। किसी भी कक्षा या बालकों के समूह में उनके अपने साथियों के साथ सम्बन्ध जानने के लिए समाजमिति महत्वपूर्ण साधन है। यह मुख्यत आकर्षण या अनाकर्षण (या हटाव) के विचार पर आधारित है। सामाजिक विज्ञानों मे इसका विकास पिछले बीस वर्षों से बहुत अधिक हुआ है तथा कई क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रकाश मे आये हैं। समाजमिति तकनीक के साथ प्रसिद्ध समाज वैज्ञानिक मोरेनो (Moreno) का नाम मुख्य रूप से जुड़ा हुआ है।

Helen Jenning के अनुसार संक्षेप में समाजमिति किसी विशिष्ट समय किसी विशिष्ट समाज की इकाई के मध्य पाये जाने वाले सामान्य सम्बन्धों का साधारणतया रेखांकित प्रदर्शन है। सम्बन्ध बताने वाली मुख्य रेखायें या चित्र मे स्वीकृति या त्याग स्पष्ट करने वाली रेखायें समाजमिति द्वारा एक ही दृष्टि मे स्पष्ट हो जाती है।'

Andrew and Willey के अनुसार 'समाजमिति एक ऐसा चित्र है जिसमें कुछ चिह्न तथा शब्द किसी सामाजिक समूह के सदस्यों की सामाजिक स्वीकृति या त्याग का ढग प्रदर्शित करने के लिए प्रयुक्त होते हैं।'

Carter V Good के अनुसार 'समूह की रचना को प्रदर्शित करने के लिए समूह मे व्यक्ति की स्थिति—यथा लोकप्रिय एकाकी, प्रतियोगी, परित्यक्त आदि प्रदर्शित करने के लिए समाजमिति एक सर्वाधिक उपयुक्त साधन है।'

सबसे आसान रूप में समाजमिति द्वारा विद्यार्थियों से यह पूछा जाता है कि आप किस साथी के साथ कक्षा म बैठना पसन्द करते हैं। प्रश्न बनाते समय उद्देश्यों का ध्यान रखा जाना भी नितान्त आवश्यक है। पसन्दगी के कारणों को भी यदि पूछे गए हों तो, विश्लेषण कर लिया जाता है।

उदाहरण देखिये —

यदि निकट भविष्य में कक्षाध्यापक आपके बैठने की व्यवस्था बदलना चाहे तो आप किनके साथ बैठना पसद करेंगे ?

	साथी का नाम	पसदगी का आधार
प्रथम पसद		
द्वितीय पसद		
ततीय पसद		

इस प्रकार के तथ्यों को, जो आकर्षण बताते हैं, सकारात्मक तथ्य कहते हैं। यही तथ्य नकारात्मक भी बन सकते हैं जो दूरी या अनाकर्षण या हटाव का सकेत करते हैं। जैसे—आप कक्षा मे किस साथी के साथ बैठना पसद नहीं करते ? पसन्दगी की ही भाति यदि पूछे गये हों तो नापसदगी के कारणों का भी विश्लेषण कर लिया जाता है। उदाहरण देखिये—

	साथी का नाम	नापसदगी का कारण
प्रथम नापसद	--	----
द्वितीय नापसद		---
ततीय नापसद		

मान लीजिये, किसी कक्षा के बालकों को समाजमिति प्रश्नावली दी गई जिसमें तीन स्थितियां (1) कक्षा मे साथ बैठना (11) पिकनिक म बाहर साथ जाना तथा (111) मध्यावकाश के समय अल्पाहार करना प्रस्तुत की गई तथा प्रत्येक स्थिति के लिए तीन तीन पसदगी मांगी गई। विद्यार्थियों द्वारा उत्तर लिखने पर पूर्तिशुदा प्रश्नावलियाँ सग्रह करली गई। कक्षा के सभी बालकों से प्राप्त इन प्रश्नावलियों का सारिणीकरण इस प्रकार कर लिया जाता है —

	राजीव	सजय	विजय	अजय	धनञ्जय
राजीव		१ ३	१ ०,२	२,२ ३	३ ०,१
संजय	१ ३ ३		३ २ २	२	१,१
विजय	१,० १	२ २,२		१ ०,३	३ ३
अजय	२ ०,१	१,३,२	३ २ ३		१
धनञ्जय	१,० २	१ २ ३	२ ३	३,०,१	

यह सारिणी केवल पांच छात्रों की है। जितने अधिक छात्र होंगे, सारिणी उतनी ही बड़ी होगी। कई शोधकर्ता केवल आवृत्तियों का जोड़

कर लेते हैं तथा कई अन्य शोधकर्ता प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय को क्रमश: ५, ३, १ या ३ २ १ अधिभार देकर भी जोड़ कर लेते हैं। इस सारिणी में ध्यान देने की बात यह है कि तीनों स्थितियों की पसंदगियाँ एक साथ दर्शायी गई हैं। यदि कोई शोधकर्ता चाहे तो इन तीन स्थितियों की पृथक पृथक तीन सारिणियाँ भी तैयार की जा सकती हैं। मान लीजिये, यदि एक विद्यार्थी को प्रथम स्थिति में एक पसंद मिली है पर दूसरी स्थिति में कोई पसंद नहीं मिली पर फिर तीसरी स्थिति में पसंद मिल गई तो उस विद्यार्थी को पहली तथा तीसरी स्थिति में मिली पसंदगी के बीच शून्य लिखा गया है। उदाहरण के लिए विमल को प्रथम स्थिति में प्रथम पसंद तथा दूसरी स्थिति में कोई पसंद नहीं मिलने से शून्य तथा तीसरी स्थिति में दूसरी पसंद मिली है जिसे १ ० २ लिख कर दर्शाया गया है।

इसी के लिए एक दूसरी विधि यह भी है—जिसमें अनुमान लगाया जाता है। विद्यार्थियों के सम्मुख कल्पना पर आधारित कुछ तथ्य रखे जाते हैं। जैसे—वह सदैव दूसरों की मदद करता है या वह हमेशा चुगली खाता है आदि आदि तथा विद्यार्थियों से पूछा जाता है कि ये तथ्य किन-किन विद्यार्थियों पर लागू होते हैं। पक्ष-विपक्ष की विभिन्न आवृत्तियाँ गिन लेने से कक्षा में विद्यार्थी का स्थान निर्धारण करने में मदद मिलती है। यह समाजमिति का ही दूसरा रूप है। निरीक्षण से भी इस विधि का लाभ उठाया जा सकता है। बच्चा किन के साथ खेल के मैदान पर जा रहा है या वह प्रार्थना में किनके साथ है। उसे टॉफी देकर भी पूछा जा सकता है कि तुम यह किसे देना पसंद करोगे? मानलो यदि वह विद्यार्थी आज स्कूल नहीं आया तो तुम यह टॉफी अन्य किस विद्यार्थी को दोगे? इसी भांति क्रम बढ़ सकता है। इन्हीं विधियों में मुख्य हैं— स्वमूल्यांकन विधि दल में सक्रिय विद्यार्थी के रूप में भाग लेना सामूहिक पसन्दगी लेखा, लक्ष्य आधारित बहुसम्बन्धों के अनुसार समाजमिति समयानुमान—किसके साथ कितना समय बिताना बूझो तो जानें अनजाने मे आँखें बन्द करना तथा देखना कि वह किसका-किनका नाम लेता है। ये सभी विधियां भी समाजमिति की जगह प्रयोग की जा सकती हैं।

समाजमितीय प्रदत्तों का विवेचन

एक समय था जब समाजमिति के प्रदत्तों के गुणात्मक विवेचन की प्रधानता थी। आज समाज वैज्ञानिकों का ध्यान गुणात्मक विवेचन से हट कर संख्यात्मक विवेचन पर केन्द्रित हो गया है। आज इनका मुख्यत चार

तरीकों से विवेचन किया जाता है –

1 मानेखीय विवेचन (Sociogram)
२ मान विवेचन (Index)
३ सांख्यिकीय विवेचन
४ मिठीय विवचन

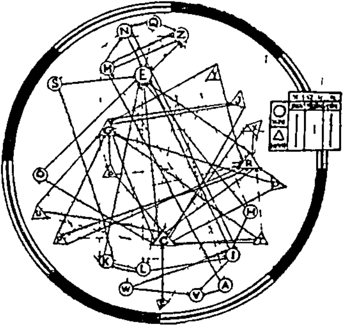
मानखीय विवेचन

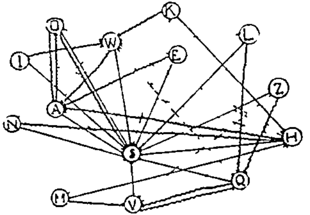
यह विवेचन प्रारपक लगता है। इसम प्रावपण को तीरो तथा दुराव या हटाव या प्रनाकपण को उलटे तीरों — प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पस' को क्रमश सीधी रेखा, कटती रेखा तथा रेल लाइन की रेखा से बताया जाता है, यदि चाहे तो भिन्न-भिन्न स्याही या रगों का भी प्रयोग किया जा सकता है, यदि प्रथम, दूसरी तथा तृतीय पसद पूछी गई है तो। बालक तथा बालिका के लिए भिन्न-भिन्न चिह्न निश्चित कर लिये जाते हैं। यदि कोई विद्यार्थी उस भिन्न अनुपस्थित विद्यार्थी को अपनी पसद दे देता है तो उसे भिन्न सकेतों स दर्शाया जा सकता है। इसे समाज प्रालेख (Sociogram) कहते हैं तथा इसमे दो छात्रों के बीच रेखा की दूरी पर ध्यान नहीं दिया जाता है। इसमें ध्यान देने की यह बात भी है कि पहली, दूसरी तथा तीसरी पसद को समान महत्व दिया गया है। इस प्रकार के प्रालेख का महत्वपूण उपयोग यह है कि इससे उपसमूहों का ज्ञान हो जाता है।

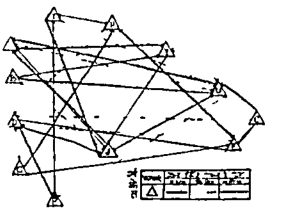
कुछ भी हो समाज प्रालेख से कक्षा की तथा यदि कक्षा म उप समूह हों तो उनकी जानकारी मिलती है सीधी कटती या प्र य प्रकार की रेखायें विद्यार्थियो के पारस्परिक सम्बन्धों की जानकारी देती हैं जिससे कक्षा के वातावरण के बारे में अनुमान लगाने में मदद मिलती है।

मानविवेचन

मानविवेचन समाज प्रालेख के प्रदत्तों पर ही मार देकर किया जाता है। इसमें महत्वपूण बात यह है कि सभी पसन्दगियो को समान माना जाता है। यह सामान्य ज्ञान की बात है कि किसी भी विद्यार्थी की लोकप्रियता या परित्यक्तता उसको मिले प्रधिमार से निश्चित की जाती है। मान विवेचन के क्षत्र म ही समाजमिति को उपयोगिता तथा व्यावहारिकता की बात बताकर समस्या खड़ी कर दी जाती है। परीक्षित विद्यार्थी समूह से प्राप्त निर्णय विनेपताओं के प्राधार पर तैयार किये प्रापसी सह-सम्बधों के प्रदत्त इस क्षेत्र में गैद्धान्तिक साहित्य तयार करने में बहुत मदद करते हैं।




K
O
W
I
E
L
Z
A
N
H
S
Q
M
V



साख्यिकीय विवेचन

मानविवचन के आधार पर जो प्रश्न उभरते हैं, उनका उत्तर साख्यिकीय विधियां ही देती हैं। दो सख्याओं में परिवर्तन या वृद्धि समय के बीतने से हुई है या समूह के सगुणन (Cohesiveness) से, या अवसर की भूमिका से, आदि प्रश्नों का उत्तर सांख्यिकीय विधि काईस्क्वायर (Chi square) से ही दिया जा सकता है। इस विधि से प्राप्त मूल्यों तथा अनुमान किये गये मूल्यों मे सम्बन्ध देखा जाता है।

मितीय विवेचन

यह विवेचन समाज आलेख से भी सरल है। इसमें समाजमिति के प्रदत्तों का कलात्मकता से सक्षिप्त कर स्पष्ट विश्लेषण की ओर झुकाव बढ़ जाता है। समाज आलेख के प्रदत्तों से ही छात्र द्वारा पसन्गी तथा नापसन्गी की आवृत्तियों के आधार पर ही मानविवेचन किया जाता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि उपसमूह मे बालक का स्थान बार बार कैसे बदलता है। आपसी सम्बन्धों से, नेतृत्व के गुणों से कक्षा में उपसमूह बन जाता है। ऐसा करते समय कई बार नापसन्गी के प्रदत्तों पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

इन सबसे जटिल विधि Factor Analysis की है इन चारों विधियों पर विचार करते हुए कक्षाध्यापक एक शोध कार्यकर्त्ता के रूप में कक्षा के उपसमूहों का ज्ञान प्राप्त कर अधिक लाभ उठा सकता है तथा बालकों का हित कर सकता है।

भारतवर्ष आर्थिक प्रगति के सक्रमणकाल से गुजर रहा है। आयोजित विकास म मानवशक्ति एक महत्वपूर्ण घटक है। आज स्थिति यह है कि रोजगार के अवसरो तथा रोजगार प्राप्त करने वालों मे कुछ अशों तक तालमेल नहीं है। एक तरफ उच्च शिक्षा एव प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति बेकार है तथा दूसरी ओर उपयुक्त आदमी न मिलने से पद रिक्त पड़े हैं, उपयुक्त विकास नहीं हो पा रहा है। कितना अच्छा हो यदि व्यक्ति समाज का एक उपयोगी एव उत्पादक सदस्य बन सके। इसके लिए शिक्षा प्रणाली में सामाजिक, आर्थिक एव पारस्परिक हितों को मद्‌देनजर रख कर सतुलन लाना होगा। बच्चा के पारस्परिक सम्बन्धों का उनकी शैक्षणिक सम्प्राप्ति, विकास एव वृद्धि पर गहरा प्रभाव पड़ता है। एक विद्यार्थी जो कक्षा में कुसमन्जित है, सम्भव है, विद्यालय से घृणा करने लग जाय, ऐसा विद्यार्थी आगे चल कर समाज का उपयोगी सदस्य नहीं बन सकता। शिक्षा के रूप

में उस विद्यार्थी पर किये जाने वाले सभी प्रयास निरर्थक सिद्ध होंगे—श्रेम का अपव्यय होगा। जनतान्त्रिक सिद्धान्तों पर आयोजित विकास के समय इस प्रकार के अपव्यय से हर सम्भव प्रयत्न करके बचा जाना चाहिए। जहां तक पारस्परिक असमन्जस समाप्त किया जा सके या न्यूनातिन्यून किया जा सके तो मानव शक्ति का मानव कल्याण के लिए अधिकाधिक उपयोग हो सकेगा।

समाजमिति की उपयोगिता

समान रुचि, पसन्द एव चयन वाले छात्रों को किन्ही विशिष्ट कार्यों में एक साथ बिठा कर काय कराने में भी अधिक सफलता की आशा की जा सकती है। परित्यक्त सभी विद्यार्थियों को एक ही वग में रखने की अपेक्षा उनको चयन के अनुसार विभिन्न वर्गों में बदलने स छात्रो में अधिक समन्जन आयेगा तथा काम भी सुचारु रूप से होगा। समय के अन्तराल पर समाजमिति फिर से दी जाय तो परित्यक्त छात्रों की सख्या कम आती है ऐसी आशा है।

जिन गुणो पर कक्षा के विभिन्न छात्र एक सा लगाव प्रकट करें उन छात्रो को समान रुचि वाले समझ कर उनका दल बनाने से वे अधिक त म यता से काम कर सकेंगे जिससे अच्छे काम की आशा की जा सकती है, ऐसे बालक कक्षा में अधिक सीख सकेंगे।

इस प्रविधि को शोध कार्यों में बड़े लाभ के साथ उपयोग किया जाता है। प्राय इसका उपयोग समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा नेतृत्व प्रतिमान (Pattern) बच्चो का सामाजिक समन्जन भावकता स्थान दलीय सम्बन्ध एव दलीय नतिकता का अध्ययन करने में किया जाता है। नैतिक जीवन म इससे बालक को उसके समूह मे लोकप्रियता परित्यक्तता, आक पण तिरस्कार नापसदगी आदि का ज्ञान होता है जो उसका सामाजिक स्थान बताते है। समाजमितीय चरो का जनसंख्या शास्त्र सामाजिक आर्थिक स्थान आयु लिंग भेद शिक्षा का स्तर सांस्कृतिक एव व्यक्तित्व के प्रति मानो के साथ भी अध्ययन किया जाता रहा है। इस प्रविधि को शिक्षा, व्यवसाय सामुदायिक सेवायें सनिक सेवायें चिकित्सा विज्ञान एव मनोचिकित्सा विज्ञान म भी उपयोगिता के साथ काम मे ली जाती है। कई बार इसकी उपयोगिता अनुपयुक्त सख्यात्मक प्रश्नों के कारण सीमित हो जाती है।

समाजमिति से शिक्षक निम्न प्रकार के विद्यार्थियों का पता लगा सकते हैं —

लोकप्रिय

किन्हीं विशेष गुणों के कारण किसी एक छात्र को सभी साथियों द्वारा पसन्द किया जाना। Moreno के अनुसार ऐसा विद्यार्थी नायक हो सकता है पर अनिवार्यत ऐसा हो ही, यह भी जरूरी नहीं है। कई बार पसन्द न किया गया साथी भी विशेष स्थितियों के कारण नायक बन जाता है।

एकाकी

कुछ छात्र ऐसे भी हो सकते हैं जिनको न विद्यार्थी मित्र बनाना चाहते हैं न लेना। कक्षा के साथी ऐसे छात्र के प्रति तटस्थ रहते हैं। अत ऐसे छात्रों को तटस्थ भी कहा जा सकता है।

प्रतिस्पर्द्धी

एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक से अधिक छात्रों का होड़ करना।

गुटबन्दी

छोटे छोटे समूह बनाकर रहने वाले छात्र गुटब दी करने वाले माने जाते हैं। ऐसी गुटबन्दी में तीन से अधिक विद्यार्थी होने पर उसे जजीर (Chain) कहते हैं।

तिरस्कृत

छात्र-समाज द्वारा न अपनाये जाने वाले छात्र, जिन्हे नापसद किया गया हो तिरस्कृत छात्र कहलाते हैं।

इस प्रकार छात्रों का स्थान मालूम कर शिक्षक विद्यालय में समाजमिति का निम्न प्रकार से उपयोग कर सकते हैं —

छात्रो का वर्गीकरण

शालाओं में विद्यार्थियों की सख्या दिनोदिन बढ़ती जा रही है, और न किसी छात्र को प्रजातन्त्र के युग में विद्यालय म प्रवेश देने से मना ही किया जा सकता है। हर कक्षा के कई कई वग होते हैं। अब तक की परम्परागत प्रणाली यह रही है कि विद्यार्थियों को उनके द्वारा पढे जाने वाले विषयों के अनुसार बाट दिया जाय। इस प्रकार के वर्गीकरण के अपने कई लाभ हैं। पर एक विषय के एक से अधिक वग हों तो अन्य बातों—बुद्धि, रुचि पिछली शैक्षणिक सम्प्राप्ति तथा स्थान आदि—पर भी ध्यान दिया जा

सकता है। यहाँ पारस्परिक सम्बन्धों को भी नहीं भुलाया जा सकता। Helen Jenning के अनुसार "विद्यालय में विद्यार्थियों का सीखना उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर निर्भर करता है।" सामान्यतया शिक्षक जानते हैं कि किसी भी विद्यार्थी का सीखना उसकी शैक्षणिक सम्बन्धित समूह या कक्षा में उसके स्थान के अनुसार अनुकूल या प्रतिकूल प्रभावित हो सकती है। सभी विद्यार्थी कई तरीकों से प्रेरित कर सकते हैं या बाधा डाल सकते हैं। विभिन्न तरीकों से सम्बन्धित मानवीय सम्बन्ध शैक्षणिक उद्देश्यों की प्राप्ति में योगदान करते हैं। वे वैयक्तिक विकास में सहायक होते हैं तथा सीखने की अधिक प्रेरणा देते हैं।

दलीय सम्बन्धों में परिवर्तन का माप

व्यक्ति जिस समूह में रहता है वह समूह उस व्यक्ति के विकास में मदद करता है। पारस्परिक क्रिया प्रतिक्रिया के बीच ही व्यक्ति का विकास होता है। विद्यार्थी की प्रसन्नता व विकास बहुत सीमा तक उसके साथियों पर निर्भर करती है जिनके बीच वह अपने को सुरक्षित अनुभव करता है। इसके लिए बहुत जरूरी है कि समूह व उपसमूह या गुट के सदस्यों के सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तनों का समय समय पर निरीक्षण करते रहना चाहिये। इन परिवर्तनों की जानकारी रखने के लिए तथा विद्यार्थियों को उनके सम्बन्धों को मधुर बनाने के लिए निर्देशन सेवाएं अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

किसी समय किसी एकाकी बालक को समाज का अधिक उपयोगी सदस्य बनाने के लिए किये गये प्रयत्नों के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों के माप के लिए Sociogram का उपयोग किया जाता है। कक्षा के कमरे में किये जाने वाले प्रयोगों सहित समाजमिति से कई प्रकार के अध्ययन किये जा सकते हैं। प्रखर बुद्धि वाले बालकों के उत्तरों की अपेक्षा समान बुद्धि वाले बालकों के उत्तरों से सामाजिक सम्बन्धों को समझने में अधिक मदद मिलती है।

विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान

भिन्न भिन्न बच्चों की भिन्न भिन्न समस्याएँ होती हैं। एक बच्चा शर्मीलेपन के कारण दूसरों से बात नहीं कर सकता दूसरा बच्चा अन्तर्मुखी है तथा सदैव अपने ही विचारों में खोया रहता है। इसी प्रकार अन्य बच्चे एकाकी, उपेक्षित एवं तिरस्कृत हो सकते हैं। इन्हें शिक्षकों की सहानुभूति या सहायता की आवश्यकता है। ऐसे बच्चों को समाज के उपयोगी सदस्य

बनाने के लिए विद्यालय-परामर्शक का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसे विद्यार्थी हर शाला में या हर कक्षा में मिल जायेंगे। यदि शिक्षा का उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास मान लिया जाय तो ऐसे विद्यार्थियों की सामाजिक विकास के क्षेत्र में भी मदद की जानी चाहिये। ऐसे बच्चों का पता लगाने के लिए समाजमिति, केवल समाजमिति ही, उपयोगी एवं एक मात्र साधन है।

गुटबन्दी की खोज

कई बार कक्षा में धर्म, रंग, सामाजिक आर्थिक स्थिति के आधार पर गुट बन जाते हैं। इस प्रकार की गुटबन्दी बड़ी हानिकारक है तथा स्कूल में जनतान्त्रिक उद्देश्यों पर प्रहार करती है। विद्यार्थियों से पसन्द व पसन्दगी के कारण पूछ कर तथा उनका विश्लेषण कर गुटबन्दी के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। तभी शिक्षक स्वस्थ वातावरण के विकास की ओर अग्रसर हो सकते हैं—इसके लिए ऐसे अधिकाधिक आयोजन आवश्यक हैं जिनमें अधिकाधिक विद्यार्थियों को भाग लेने का अवसर मिले।

इस विधि की परिसीमायें

समाजमिति का कार्य प्रश्नावली विधि पर आधारित है। इसलिए प्रश्नावली विधि की सभी मर्यादाएँ यहां भी लागू हैं। इसके सिवाय सामाजिकमापन के लिए निरीक्षण विधि भी प्रयोग की जा सकती है जैसे उत्सवों में भाग लेते समय बालक बालिका का निरीक्षण प्रातःकालीन सम्मेलन में विद्यार्थियों का निरीक्षण आदि आदि। कुछ ऐसी भी स्थितियाँ हो सकती हैं जब विद्यार्थी प्रश्नावली के माध्यम से सही उत्तर न दे। भारतीय स्थितियों में विशेषतः यौन सम्बन्धी प्रश्नों पर विद्यार्थियों से सही उत्तरों की आशा नहीं की जा सकती।

समाजमिति में वैधता एवं विश्वसनीयता की समस्या

अधिकांश अनुसन्धानकर्त्ताओं ने पाया है कि समाजमिति से प्राप्त प्रतिमान (Pattern) मुख्यतः वयस्य बालकों के साथ समय के अन्तराल पर भी समान ही पाया जाता है। अतः समाजमिति विधि में वैधता का परीक्षण करना बड़ा जटिल एवं कठिन कार्य है।

समाजमिति प्रयुक्त करते समय सावधानियां

१ विद्यार्थी काफी समय से साथ रह रहे हों तथा वे एक दूसरे को पहचानने लग गए हों।

२ सामान्यतया इसका उपयोग एक कक्षा में ही किया जाना चाहिए।

३ विद्यार्थियों को ऋणात्मक पसंदगियां देने का आग्रह करना चाहिए, इससे गणना करने में कठिनाई आ सकती है पर ऋणात्मक पसंदगियों के नाम की घोषणा नहीं किया जा सकता। यह इस पर भी निर्भर करेगा कि ऐसा जानने का उद्देश्य क्या है?

४ जो निर्देश विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत की जाय, वह स्पष्ट हो तथा सरल भाषा में लिपिबद्ध हो।

५ विद्यार्थियों को यह कह दिया जाना चाहिए कि आप अपनी पसंद आज कक्षा में उपस्थित मित्रों को ही दीजिये। ऐसा न करने पर अनुपस्थित मित्रों को तो आप अपनी पसंद दे देंगे पर ये किसको पसंद करते हैं—यह ज्ञात नहीं हो सकेगा।

६ विद्यार्थियों को इस बात का विश्वास दिलाइये कि वे बेझिझक होकर अपनी पसंद या नापसंद लिखें—यह जानकारी दूसरों को नहीं बताई जाएगी तथा इसका उपयोग केवल उनके मनो-कल्याण के लिए किया जायेगा।

७ विद्यार्थियों के वास्तविक नामों का प्रयोग न कर संकेतों (Cod ings) का प्रयोग करना चाहिए जिससे विद्यार्थियों में किसी प्रकार का मनमुटाव या वैमनस्य पैदा नहीं हो।

विशेष

समाजमिति की उपयोगिता पर सभी समाज मनोवैज्ञानिक एक मत नहीं हैं तथा यह वाद विवाद का विषय बना हुआ है। उनके अनुसार यदि समान रुचि, समान बुद्धि या समान रुझान के अनुसार कक्षाओं में विद्यार्थियों के दल बना दिये गये तो कक्षा एकदम नीरस या एकरस (Dull or Monotonous) हो जायगी। इसलिए आज के मनोवैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि कक्षा में कुछ सीमा तक विभिन्नता उपयोगी होती है। Moreno भी कुछ सीमा तक ऐसी ही राय रखते हैं। पर वे यह भी कहते हैं कि समाजमिति का विभिन्न तरीकों से व्यवहार करके इसकी उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है।

समाजमिति के सम्बन्ध में अमरीका में नये विचार पनप रहे हैं कि कोई छात्र एकाकी या परित्यक्त नहीं होता। शोधकर्ता प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पसन्द ही तो साधारणतया पूछते हैं, क्या पता उनको चौथी या उससे

भी अपनी पसन्द मिल जाय। इस प्रकार उनको एकाकी तो नहीं पर Underrated या कम प्रतिमान प्राप्त करने वाले छात्र सम्बोधित किये जा सकते हैं। इतना सब होते हुए भी William V Goode and Pale K. Hatt के अनुसार, यदि इस विधि का उपयोग सावधानी से किया जाय तो ये शोध बहुत बड़े हितकारी साधन सिद्ध हो सकते हैं क्योंकि ये साधारणतया स्थान निर्धारण (Scaling) की समस्या का निवारण करते हैं। कक्षा-गृह में प्रयोग करके इससे एकाकी छात्रों को कुशल सामाजिक सभ्य बनाने में बड़ी मदद मिलती है।

अभी समय है कि शिक्षक समाज के सदस्यों को शिक्षा देने की प्रक्रिया में अपनी स्थिति के लिए जागृत हो सकें। उन्हें अपने विद्यार्थियों को अधिकतम वस्तुगत रूप से जानना चाहिए तथा उन्हें सामाजिक सदस्य के रूप में विकसित होने के लिए अधिकाधिक निर्देशन देना चाहिए। विकसित देशों में सामूहिक सम्बन्धों को जानने के लिए समाजमिति सफलतापूर्वक प्रयोग की जाती है। हमारे साथियों को इससे प्रेरणा लेनी चाहिए तथा विद्यार्थियों के कल्याण के लिए इसका उपयोग सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

आपात्काल में विद्यालयों की भूमिका

एक बार अलबर्ट आइन्स्टीन ने कहा था कि "तीसरा विश्वयुद्ध होगा या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता, पर यदि चौथा विश्व युद्ध हुआ तो वह कंकड़ और लकड़ियों के बीच लड़ा जायगा।" इससे स्पष्ट होता है कि मानव जाति तृतीय विश्व युद्ध में ही समाप्त हो जायगी।

इसी भांति एटली ने एक जगह लिखा है कि 'युद्ध मानव मस्तिष्क में प्रारम्भ होते हैं, अतः मानव मस्तिष्क को शान्ति से रहने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।"

एक समय था जब युद्ध हाथी घोड़ों तथा सैनिकों से लड़ा जाता था जिस देश के पास हाथी घोड़े जितने अधिक हों उसे उतना ही अधिक शक्तिशाली माना जाता था। पर आज लड़ाई के तरीके ही बदल गये हैं, जिनमें हाथी, घोड़ों तथा इसी प्रकार पदल सनिकों का महत्व नगण्य हो गया है। आज पलक झपकते ही भारी मात्रा में नर-संहार किया जा रहा है। बंगला देश में पाकिस्तान के फौजी शासकों ने क्या नहीं किया? यह पाठक अच्छी तरह जानते हैं तथा उन्होंने ४ दिसम्बर १९७१ को तो भारत के विरुद्ध विधिवत युद्ध की घोषणा कर ही दी थी।

इस जन आपत्ति के समय में सभी राजनैतिक दलों ने अपने आपसी मतभेद भुला दिये-सभी एक स्वर से राष्ट्र की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो गये एक लक्ष्य एक नेता एक देश, एक राष्ट्र का स्वर सुनाई पड़ने लगा। इसी को कहते हैं भारतीय सांस्कृतिक विभिन्नता में भी एकता। सभी दल सभी दल नेता राष्ट्रीय संकट के समय एक पंक्ति में खड़े हो गये। इस समय में हर नागरिक को एक सक्षम देशभक्त का कर्त्तव्य निभाना है। इस भूमिका के निर्वाह के लिए विद्यालयों के योगदान को भी नहीं भुलाया जा सकता। विद्यालय समाज का छोटा रूप है जहां बालक भावी जीवन को बिताने का प्रशिक्षण पाते हैं। पिछले कुछ समय से विद्यालय तथा समाज के बीच खाई

बढ़ती गई है। इसी से देश में विनोबाजी का यह कहना महत्वपूर्ण है कि 'विद्यालय को समाज में तथा समाज को विद्यालय में घुसना चाहिए।' इससे स्पष्ट है कि विद्यालय की भूमिका केवल छात्रों के लिए ही नहीं वरन अभिभावकों, उनके माता पिताओं के लिए भी समान रूप से उपयोगी है, अपरिहार्य है।

शिक्षा बालक को जीवन के लिए तैयार करती है अतः विद्यालय को समाज तथा राष्ट्र की बदलती हुई परिस्थितियों पर ध्यान देना चाहिए। शिक्षा व्यवस्था करते समय वर्तमान आवश्यकताओं पर ध्यान देना चाहिए। आपातकाल तथा सामान्यकाल की आवश्यकताओं में अन्तर होता है। इसे भुलाया नहीं जा सकता। विद्यालय को जो कार्य सौंपा गया है उसे भावी तथा वर्तमान आवश्यकताओं को दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता। देश रक्षा के कार्यक्रम में युवकों को बौद्धिक तथा प्रभावी कार्य करने के लिए प्रोत्साहन देने हेतु विद्यालयों को आगे आना चाहिए। आपत्ति के समय में विद्यालयों का कार्य केवल कक्षा के कमरों में शिक्षण मात्र तक ही सीमित नहीं रहता वरन उन्हें और भी कई कार्यक्रम हाथ में लेने होते हैं।

विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कर्तव्य है— अधिक से अधिक पढ़ना तथा अवकाश के समय शिक्षकों के मार्गदर्शन में राष्ट्र रक्षा के विभिन्न कार्यों में उपयोग करना। राष्ट्र रक्षा के इन कार्यों की रूपरेखा इस प्रकार तयार की जा सकती है

१ राष्ट्रीय आपत्ति को सही अर्थों में समझना।

२ नागरिक रक्षा कार्यक्रम को समझना, मित्रों एवं पड़ोसियों को समझाना खुले स्थान में मकान में, छविगृह में, मोटर या बाइसिकल पर होने पर क्या करना है तथा क्या नहीं करना है बताना, लापरवाही से होने वाली हानियों से परिचित कराना। भारतीय ग्रामीण जनता को, पड़ोसियों को समाचार पत्रों से, पोस्टरों से सब साधनों से सुरक्षा के साधनों की जानकारी देना उन्हें साधारण भाषा में, सम्भव हो तो स्थानीय जबान में समझाना।

३ प्राथमिक चिकित्सा एवं आग बुझाना सीखना तथा आवश्यकता के समय इसका उपयोग करना।

४ नौजवानों के लिए भेंट में जाने वाली विभिन्न प्रकार की वस्तुओं

की समय समय पर घोषणा होती रहती है, उनको यथा स्थान (प्रधान मंत्री, मुख्य मंत्री या जिलाधीश के कार्यालय तक) पहुंचाना।

५ विद्यालय को सामूहिक सूचना केन्द्र बनाना जहां लोगो को समय समय पर विभिन्न प्रकार की सूचनायें मिल सकें, इसके लिए ऊंची कक्षा के छात्रों की मदद ली जा सकती है।

६ छात्रो को शारीरिक स्वस्थता के लिए तयार करना तथा कठोर परिश्रम करने के लिए प्रोत्साहन देना।

७ अफवाहो को रोकना, न सुनना, न दूसरो को सुनने के लिए प्रोत्साहन देना, उनका खण्डन करके सही जानकारी देना, सदव साथियो नागरिको का मनोबल बनाये रखने का काय करना, उनके प्रोत्साहन से सनिको का उत्साह दुगुना हो जाता है।

८ यदि चिकित्सक सलाह दे तो रक्तदान करना।

६ विद्यालय जाते समय, बस से उतरते समय या पडोस मे कही भी कोई अजनबी दीखे या इसका व्यवहार असमान्य लगे तो तुरत इसकी सूचना पुलिस थाने को देना।

१० व्यय जाने वाले साधनो की जानकारी प्राप्त करना।

११ सेना मे नियुक्त व्यक्तियो के परिवारों की जानकारी तथा आवश्यक मदद देना।

१२ ऊंची कक्षा के छात्रों की मदद से राष्ट्रीय लक्ष्यो पर आधारित समाज के हिताय मनोरञ्जन कायक्रम का आयोजन करना।

१३ राष्ट्रीय कायक्रम के प्रसार हेतु छात्रों की सहायता से प्रदर्शनी का आयोजन करना।

विद्यालय को ये सब काय वहा के प्रधानाध्यापक के मार्गदर्शन म करना चाहिये। प्रधानाध्यापक इस काय के लिए एक परिषद का गठन कर सकते हैं। इस परिषद मे वरिष्ठ अध्यापक छात्र नेता तथा विद्यालय के कार्यों म रुचि लेने वाले अभिभावको को भी सम्मिलित किया जा सकता है। यदि विद्यालय म शिक्षक अभिभावक सघ (Parent-Teacher Association) काय कर रहा है तो उसकी भी मदद ली जा सकती है। देश के नागरिको का काय कुशलता, शांति व धय से सनिको को बल मिलता है।

विद्यार्थियों को स्पष्ट बताया जाना चाहिए कि इन सब कार्यों में भाग लेने का मतलब विद्यालय से छुट्टी होना कदापि नहीं है। ये सब कार्य प्रति दिन समय म करने हैं। इनमें स्वेच्छा से तथा सेवा की भावना से भाग लिया जाना चाहिए। इन कार्यों को विद्यालय समय के बाद, छुट्टी के दिन, अवकाश के समय रखा जाना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो बच्चों को सीनियर तथा जूनियर दो दलों मे भी बाटा जा सकता है। यह विभाजन इस पर भी निर्भर करेगा कि इन कार्यों में भाग लेने वाले कितने छात्र हैं। इन सब परिषदों की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि विद्यालय कितना साधन सम्पन्न है तथा समाज से कितनी सहायता प्राप्त कर रहा है। ये परिषदें निम्नलिखित हो सकती हैं

(अ) कृषि परिषद्	(ई) सामाजिक अध्ययन परिषद्
(आ) विज्ञान परिषद्	(उ) उत्पादकता परिषद् तथा
(इ) वाणिज्य परिषद्	(ऊ) गृह विज्ञान परिषद्

उदाहरण के लिए इन परिषदों के काय इस प्रकार हो सकते हैं— कृषि परिषद् विद्यालय कृषि फार्म बनाये तथा नागरिका को किचन गार्डन की जानकारी दे, विज्ञान परिषद् नागरिकों को विज्ञान के उन सिद्धान्तों की जानकरी कराये जिनका प्रयोग उद्योग व सुरक्षा कार्यों म हो वाणिज्य परिषद् कोषागार व सहकारी समितियों की जानकारी कराये, सामाजिक अध्ययन परिषद् सांस्कृतिक एकता, राष्ट्रीय प्राकृतिक साधनों का उचित प्रयोग, आपत्तिकाल में बचत तथा सही उपभोक्ता की आन्तों की जानकारी एव आपातकालीन नियमों की जानकारी कराय उत्पादकता परिषद् विभिन्न प्रकार के गम कपडे, निवार तथा खादी बुनना गृह विज्ञान परिषद् पौष्टिक भोजन बनाना रोगों की चिकित्सा, वयस्कों की रक्षा, समाज सेवा कार्यों में सहायत , आदि काम हो सकते हैं। इसी भांति साहित्यिक परिषद भी बनाई जा सकती है जो प्रेरणा देने वाले गीत, राष्ट्रभक्ति से ओत प्रोत नाटक तथा कहानियां लिखकर जवानों का साहस बढा सकते हैं। स्मरणीय है कि यह सूची पूण नहीं है और भी कई काय जोडे जा सकेंगे।

शिक्षका का योगदान

केवल सनिक शक्ति से ही देश शक्तिशाली नहीं बनता बल्कि कृषि तकनीकी वैज्ञानिक, औद्योगिक दृष्टि से भी देश को समुन्नत बनाना चाहिए। ये सब दक्ष व्यक्ति एक ही दिन में तैयार नहीं होते, इस दृष्टि से विद्यालयों का मार्गदर्शन महत्वपूर्ण है। शिक्षकों को बालकों के विकास हेतु

उनका समय तथा ध्यान लगाना चाहिए, जितने की उनको आवश्यकता है। कक्षाओं में पर्याप्त रोशनी तथा हवा मिल सके, उनमें अच्छी आदतों का विकास हो उन्हें स्वस्थ रहने के नियम बताये जायें, कक्षा तथा विद्यालय को स्वच्छ रखने के लाभ समझायें, आदि कार्य करने चाहिए।

कक्षा के कमरे के बाहर भी छात्रों को मार्ग-दर्शन की आवश्यकता होती है। सामूहिक जीवन बिताने की, दल के साथ कार्य करने की, आलोचनात्मक ढंग से समाचार पत्र पढ़ने की, उत्पादक कार्यों की व्यवस्था करने का उनका उत्तरदायित्व है।

शिक्षकों को विद्यार्थियों में बिजली की चीजों का प्रयोग करना साधारण आग बुझाने के यंत्र बनाना तथा आग बुझाने के तरीके सीखना, गैस व बिजली की देखभाल तथा मरम्मत, भोजन की सुरक्षा के साधनों की जानकारी, विद्यालय में काम आने वाले साधारण उपकरण तथा यंत्र बनाने का कौशल पैदा करना चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षक ही बौद्धिक नेता है जो उन्हें समय पर उचित निर्देशन दे सकता है तथा इस कार्य में वे बच्चों का उपयोग कर सकते हैं।

एक महत्वपूर्ण कार्य और कि शिक्षक सेना सैनिक अधिकारियों से सम्पर्क करें जो सेवानिवृत्त हो चुके हों उनको विद्यालय में बुलाया जाय, छात्रों को युद्ध आदि के सम्बन्ध में आवश्यक एवं उपयोगी जानकारी दी जाय। वे बालकों की जिज्ञासा शान्त कर सकेंगे जिससे बालकों का बौद्धिक विकास होगा। इस सम्पर्क से जो फल निकलेंगे उससे शिक्षकों का स्थान एवं महत्व समाज के सामने स्पष्ट होगा।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि आपातकाल में विद्यालय की भूमिका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।

—०—

शिक्षा के जीविकोपार्जन के उद्देश्य के सन्दर्भ मे वुनियादी शिक्षा बनाम कार्यानुभव

—०—

भिन्न भिन्न समय पर भिन्न भिन्न दर्शन एवं सिद्धान्त शिक्षा के क्षेत्र में जोर पकड़ते रहे हैं। पर किसी ने भी आज तक जनसाधारण की आशाओं इच्छाओं भावनाओं, आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया है। गांधी जी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा इस आलोचना की अपवाद हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। गांधी जी ने स्वाधीन भारत को एक सुखी राष्ट्र के रूप में देखने की कल्पना की थी जिसमें कोई भूखा नहीं सोयेगा, कोई किसी का शोषण नहीं करेगा किसी को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होंगे, सबको विकास के लिए समान अवसर प्राप्त होंगे राजनैतिक तथा आर्थिक शक्तियां मुट्ठी भर लोगों के पास नहीं रहेंगी, कोई सड़क पर रात नहीं गुजारेगा, सत्ता का विकेन्द्रीकरण होगा ग्रामीण शहरों की ओर नहीं भागेंगे, नागरिक उत्तरदायित्व वहन करेंगे, हर व्यक्ति अपने परिश्रम से रोटी कमायेगा तथा खायेगा समाज में हिंसा नहीं होगी, वर्गहीन समाज की रचना होगी कोई दरिद्र व निरक्षर नहीं होगा, श्रम का आदर होगा इस प्रकार संक्षेप में सादा जीवन एवं उच्च विचार जीवन का लक्ष्य होगा।

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण घटक है। ऐसे समाज की रचना के लिए गांधी जी ने जो भी कार्य किये उनमें से बुनियादी शिक्षा-व्यवस्था का आयोजन भी इस लक्ष्य प्राप्ति की ओर एक कदम है। इसी शिक्षा पद्धति को आगे चल कर शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली कहा गया है। इस प्रकार का समाज रचना हेतु गांधी जी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के तीन मूल्य थे—

१ शिक्षा के अभिन्न कार्य क्रम के रूप में श्रम की महत्ता।

२ समाज सेवा के सार्थक कामों में विद्यार्थियों व शिक्षकों को सम्मिलित कर उनमें सामाजिक जागृति तथा उत्तरदायित्व का विकास करना।

१ सभी धर्मों की मौलिक एकता के आधार पर धर्म निरपेक्षता या सर्व धर्म समभाव का विकास।

इस प्रकार गांधी जी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा का आधार ही ध्येय या सुदामी या सम्वर्धन है। वे इसके द्वारा ग्रामोत्थान, आर्थिक समानता, दस्तकारी का विकास राष्ट्रीय भावात्मक एकता तथा सामाजिक उन्नयन चाहते थे।

वर्धा मे १९३७ में गांधी जी के सभापतित्व में हुए सम्मेलन में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये गए—

१ सात वर्ष तक निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा
२ शिक्षा माध्यम मातृभाषा
३ समस्त शिक्षा उद्योग के माध्यम से–उद्योग स्थानीय वातावरण पर आधारित
४ उद्योग से शिक्षकों के वेतन का भुगतान

गांधी जी के अनुसार शिक्षा का अर्थ है बालक का सर्वांगीण विकास–बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं शारीरिक तथा शिक्षा का कार्य है बालक को अपनी इन प्रच्छन्न शक्तियों का सर्वोत्तम विकास करने के लिए सुविधायें प्रदान करना। गांधी जी शिक्षा में आत्म निर्भरता लाना चाहते थे जिसके लिये उन्होंने साधन माना ग्रामीण उद्योग धंधे को। उद्योग धंधा शिक्षा का साधन ही नही अहिंसक समाज निर्माण का तत्व हैं जिसमे श्रम तथा श्रमिकों का सम्मान किया जाय। डॉ० जाकिर हुसन के सभापतित्व में बनी पाठ्यक्रम रचना समिति ने तय किया कि—

१ निःशुल्क अनिवार्य आठवर्षीय शिक्षा
२ शिक्षा का माध्यम मातृभाषा
३ शिक्षा का आधार सामाजिक व भौतिक वातावरण के अनुसार हस्तकला
४ बाल केन्द्रीय शिक्षा
५ आत्म निर्भरता पर बल नहीं, शिक्षा का कुछ खर्च पूरा करना
६ दैनिक कार्य के अनुसार मूल्याङ्कन
७ यथा सम्भव पाठ्य पुस्तकों के प्रयोग पर रोक
८ सहगामी प्रवृत्तियों-सफाई, स्वास्थ्य, नागरिकता, खेल तथा मनोरंजन को शिक्षा मे पर्याप्त स्थान
९ अहिंसक समाज की रचना मे अग्रसर होना

बालकों को शिक्षा शून्य में नहीं बल्कि उस समाज के सन्दर्भ में दी जानी चाहिए जिसमें वह रहता है। इस समाज की आवश्यकतायें, रीति रिवाज आशाएं आकांक्षाएं उस शिक्षा व्यवस्था से प्राप्त होना चाहिये। संक्षेप में विद्यालय में बालक का समाजीकरण होना चाहिये। विद्यालय के विभिन्न कार्यक्रमों में छात्रों से सहकार, सेवा भावना त्याग, सहिष्णुता, न्याय स्नेह, स्वतन्त्रता, अनुशासन एवं आपसी अवबोध का विकास होना चाहिए।

गांधी शताब्दी समारोह के अवसर पर केन्द्रीय शिक्षा एवं युवा सेवा मंत्रालय द्वारा सेवाग्राम से ६ से ११ फरवरी १९७१ तक आयोजित गोष्ठी में पाया कि—

"पिछली तीन दशाब्दियों से गांधी जी के शैक्षिक आदर्शों को भारतीय शिक्षा के लिए उपयुक्त ठोस एवं महत्वपूर्ण माना है, पर देश की लाखों कक्षाओं में इन आदर्शों के दर्शन नहीं होते।"

उद्योग के माध्यम से शिक्षा बौद्धिक विकास तथा बालक को तत्पर बनाने के साथ ही साथ विद्यार्थी मे सुन्दरता एवं मधुरता की प्रशंसा करने की भावना, उद्देश्यों के प्रति सात्विकता तथा सजगता का विकास करती है।

आज चारों ओर से व्यवसायोन्मुखी शिक्षा की दुहाई दी जा रही है। रूसो की राय के अनुसार दिन भर व्याख्यान देने की अपेक्षा घण्टे भर के शारीरिक श्रम के माध्यम से अधिक उपयोगी पढ़ाया जा सकता है। रविन्द्र नाथ ठाकुर ने शिक्षा को बौद्धिक विकास के साथ-साथ रोटी रोजी का भी साधन माना। इसी भांति गांधीजी बालकों को उद्योग के माध्यम से शिक्षित करने पर जोर देते थे। उनके अनुसार बौद्धिक प्रशिक्षण का मुख्य साधन व्यवसाय ही था। शिक्षा आयोग (१९६४–'६६) ने भी कार्यानुभव को शिक्षा का अभिन्न अंग माना है।

कार्यानुभव को बुनियादी शिक्षा परिवर्तित रूप या नई बोतल में पुरानी शराब ही कह सकते हैं। पर कार्यानुभव में कुछ नवीनता भी है। एच पी राजगुरु के अनुसार—

'What is new in work experience is it re-orientation of the Basic Education Programme to the society which is changing with the help of science and technology to keep in tune with the social order when it has become frozen

round the indigenous crafts and village employed patterns'

संविधान के अनुसार शिक्षा चूंकि राज्य का विषय है अत कार्यानुभव का भी भिन्न भिन्न राज्यों में या अधिकारियों ने स्वतन्त्रतापूर्वक भिन्न भिन्न अर्थ लगाया है। एक जगह कार्यानुभव से अर्थ व्यवसायोन्मुखी शिक्षा से है दूसरी जगह अन्य शैक्षिक कार्यों की अपेक्षा व्यवसाय पर अधिक ध्यान देना है, तीसरे स्थान पर कार्यानुभव का अर्थ सभी शिक्षा व्यवस्था उद्योगों को धुरी मान कर उसके चारों ओर करनी है, चौथे के अनुसार विद्यालय की किसी भी अहगामी प्रवृत्ति को कार्यानुभव कहा जा सकता है पांचवें के अनुसार कार्यानुभव का मतलब काम करते हुए प्रशिक्षण पाना है तथा छठे के अनुसार कार्यानुभव अस्थायी कार्य तथा हॉबिज है। इन सभी अर्थों में इस बात को भुला दिया गया है कि काय शक्षिक, सायक, रचनात्मक, उत्पादक के रूप मे शिक्षा के पाठयक्रम मे स्थान पाये।

शिक्षा आयोग (१९६४–'६६) के अनुसार खाद्य पदार्थों मे आत्म निर्भरता आर्थिक विकास पूण रोजगार सामाजिक राष्ट्रीय तथा भावात्मक एकता, जीवन स्तर मे सुधार एव भौतिक साधनो के विकास के साथ साथ मानव साधनो के विकास हेतु ध्यान देना चाहिए। इन सबके लिए शिक्षा का महत्वपूर्ण भूमिका है तथा आयोग की राय के अनुसार शिक्षा को मानवीय आवश्यकताओं तथा आशा आकांक्षाओं से जोडना चाहिये। दूसरे श ों में कहा जा सकता हैं कि शिक्षा को उत्पादकता से जोडी जाय।

आयोग के अनुसार कायानुभव से तात्पय है 'विद्यालय मे घर में कारखाने मे, औद्योगिक सस्थान मे या इसी प्रकार के और किसी सस्थान मे उत्पादन कार्यों में विधियों मे क्रियात्मक रूप से भाग लेना।' उत्पादकता आर्थिक विकास की जननी है। इस प्रकार शिक्षा न केवल व्यवसायोन्मुखी हो वरन उसका अर्थोन्मुखी पहलु भी महत्वपूर्ण है इन दोनों में स तुलन बना रहना भी आवश्यक है।

कार्यानुभव को वांछित व्यवहार कौशल, दृष्टिकोण एव वत्तियों के परिवर्तन हेतु बौद्धिक सामाजिक, एव भौतिक क्रियाओ के रूप में लिया जाना चाहिए जो बालक की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके, इससे समाज में बौद्धिक एव भावात्मक समन्जन में मन्द मिलेगी। इस प्रकार का कार्यानुभव भी मोटे रूप से मानवीय सम्पदा मे उत्पादक ही कहा जाना चाहिए।

आज का युग मशीन का युग है। अत सफल नागरिक जीवन के लिए शिक्षा का ध्येय बालक को आधुनिक उद्योग, उसकी कार्य प्रणाली, उत्पादन तथा उसकी समस्याओं से बालक को परिचित कराना है। कार्यानुभव दूर दर्शी हो, गत्यात्मक हो, जो काय करने की वास्तविक स्थितियों मे किया जाय तथा उत्पादन समाजोपयोगी हो। कार्यानुभव से उत्पादकता तथा क्षमता का विकास हो अधिक नहीं तो कम से कम शिक्षा का खच ही निकल। कार्यानुभव के पीछे मुख्य सिद्धान्त 'करके सीखना' (Learning by doing) है तथा बालक कार्यों मे व्यस्त रह कर प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता है।

आयोग के अनुसार भिन्न भिन्न स्कूलो मे कार्यानुभव की शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार की जा सकती है—

१ निम्न प्राथमिक कक्षाएँ	उद्देश्य—साधारण हस्तकाय क्रियायें—हाथ का साधारण काय, कागज काटना, मिट्टी-कुट्टी का काम
२ उच्च प्राथमिक कक्षाएँ	उद्देश्य—तकनीकी चिंतन क्रियायें—साधारण फर्नीचर तैयार करना, कपडे बुनना कातना विशिष्ठ शिक्षक का मागदशन
३ माध्यमिक स्तर	उद्देश्य—प्रशिक्षण प्राप्त करना क्रियायें—लकडी का काम, धातु का काम, यांत्रिकी, चित्रकला आदि व्यावहारिक काय के साथ फिल्म प्रदशन, वार्तालाप, व्याख्यान, औद्योगिक सस्थान का भ्रमण मागदर्शन विशिष्ठ प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक पर
४ उच्च माध्यमिक स्तर	उद्देश्य—आर्थिक लाभ प्राप्त करना। ऊपर दिये उद्योग धधे विद्यालय के साधन एव समाज की आवश्यकताओं के अनुसार चुने हैं पर अधिक बल इस पर दिया जाय कि बालक कारखान में या खेत पर वास्तविक स्थिति में काम करे क्रियायें सही अर्थों मे उत्पादनोन्मुखी हों।

round the indigenous cr
patterns'

संविधान के अनुसार शिक्षा चू
का भी भिन्न भिन्न राज्यों में या अर्
श्रय लगाया है । एक जगह कार्यानुभ
दूसरी जगह अ य शाक्षिक कार्यों की
है, तीसरे स्थान पर कार्यानुभव क
धुरी मान कर उसके चारों ओर
की किसी भी सहगामी प्रवत्ति को
अनुसार कार्यानुभव का मतलब बा
के अनुसार कार्यानुभव अस्थायी का
बात को भुला दिया गया है कि का
के रूप मे शिक्षा के पाठयक्रम मे स

शिक्षा आयोग (१९६४-'
निभरता, आर्थिक विकास, पूण रो
एकता, जीवन स्तर मे सुधार एव
मानव साधनो के विकास हेतु ध्या
महत्वपूण भूमिका है, तथा आयोग
आवश्यक्ताओ तथा आशा आका
कहा जा सकता है कि शिक्षा को

आयोग के अनुसार कार्यानु
कारखाने मे, औद्योगिक सस्थान
उत्पादन कार्यों में, विधियों मे
आर्थिक विकास की जननी है ।
हो वरन उसका अर्थोंमुखी पहलु
रहना भी आवश्यक है ।

कार्यानुभव को वांछित
परिवर्तन हेतु बौद्धिक सामाजिक,
चाहिए जो बालक की मनोवैज्ञानि
समाज में बौद्धिक एव भावात्मक
कार्यानुभव भी मोटे रूप से मा
चाहिए ।

आज का युग मशीन का युग है। अत सफल नागरिक जीवन के लिए शिक्षा का ध्येय बालक को आधुनिक उद्योग, उसकी कार्य प्रणाली, उत्पादन तथा उसकी समस्याओं से बालक को परिचित कराना है। कार्यानुभव दूर दर्शी हो गत्यात्मक हो, जो कार्य करने की वास्तविक स्थितियों में किया जाय तथा उत्पादन समाजोपयोगी हो। कार्यानुभव से उत्पादकता तथा क्षमता का विकास हो, अधिक नहीं तो कम स कम शिक्षा का खर्च ही निकल। कार्यानुभव के पीछे मुख्य सिद्धान्त 'करके सीखना' (Learning by doing) है तथा बालक कार्यों में व्यस्त रह कर प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता है।

आयोग के अनुसार भिन्न भिन्न स्तरों में कार्यानुभव की शिक्षा व्यव स्था इस प्रकार की जा सकती है—

१ निम्न प्राथमिक कक्षाएँ
उद्देश्य—साधारण हस्तकार्य
क्रियायें—हाथ का साधारण कार्य, कागज काटना, मिट्टी-कुट्टी का काम

२ उच्च प्राथमिक कक्षाएँ
उद्देश्य—तकनीकी चिंतन
क्रियायें—साधारण फर्नीचर तैयार करना, कपड़े बुनना, कातना
विशिष्ठ शिक्षक का मार्गदर्शन

३ माध्यमिक स्तर
उद्देश्य—प्रशिक्षण प्राप्त करना
क्रियायें—लकड़ी का काम धातु का काम, यान्त्रिकी चित्रकला आदि
व्यावहारिक कार्य के साथ फिल्म प्रदर्शन, वार्तालाप, व्याख्यान, औद्योगिक संस्थान का भ्रमण
मार्गदर्शन विशिष्ठ प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक का

४ उच्च माध्यमिक स्तर
उद्देश्य—आर्थिक लाभ प्राप्त करना।
ऊपर दिये उद्योग धन्धे विद्यालय के साधन एव समाज की आवश्यकताओं के अनुसार चुने हैं पर अधिक बल इस पर दिया जाय कि बालक कारखाने में या खेत पर वास्त विक स्थिति मे काम करे क्रियायें सही अर्थों में उत्पादनोन्मुखी हों।

कार्यानुभव मे प्रायोग ने रूस के समान बुनियादी शिक्षा से कहीं अधिक कार्यों की तालिका दी है। ऊपर के कार्यों के सिवाय चमड़े व गत्ते का काम, कसीदाकारी, सीना पिरोना मिट्टी के बर्तन बनाना, मधु मक्खी पालन आदि भी जोड़े जा सकते हैं। प्रायोग ने यह भी संकेत किया है कि रूस की तरह एक शैक्षणिक सत्र में बारह दिवस Social Production Practice के रूप म भी सभी विद्यार्थियों को चाहे वे शहरी हो या ग्रामीण पूर्णरूप से उद्योग की व्यावहारिक शिक्षा दी जानी चाहिये। ऐसा काय पाचवी कक्षा के लिए तीन कालांश प्रतिदिन तथा छठी से आठवीं कक्षा के लिए चार कालांश प्रतिदिन से अधिक नहीं रखा जाना चाहिये। इन व्याव हारिक कार्यों के अनुभव देते समय बालकों की आयु विद्यालय म पूर्व प्राप्त प्रशिक्षण तथा विद्यालय के साधन आदि बातों का ध्यान रखना चाहिये। यहाँ इन कार्यों का कक्षावार विभाजन इस प्रकार है—

पांचवीं कक्षा—सब्जियाँ तथा फल फूल के पौधों की रक्षा

छठी कक्षा—फल फूल उगाना आलू सब्जियां खाद्यान विद्यालय खेत पर उगाना

सातवीं कक्षा—फलो का संरक्षण मुर्गीपालन राज्य के कृषि भूखण्डों पर खेती करना

आठवी कक्षा—ऊपर के कार्यों में से जरूरत के अनुसार पौध संरक्षण सघन कृषि काय उद्यानो की देख भाल आदि।

कार्यानुभव पर राजस्थान मे काय

किसी भी क्षेत्र मे नया काम शुरू करने म राजस्थान सदैव अग्रणी रहा है। यही बात शिक्षा के क्षेत्र म किये जाने वाले नये प्रयोगों के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती हैं। शिक्षा आयोग (१९६४–६६) का प्रतिवेदन प्रकाशित होने के पूर्व ही १९६१–६२ मे इस विचार पर तत्कालीन शिक्षा निदेशक ने बीकानेर की सबसे बडी स्कूल में काय आरम्भ किया। आगे चल कर इस प्रत्यय पर कई विद्यालयो ने काय किया जिसमें विभिन्न प्रकार के उद्योग सम्मिलित किये गये। इस काय को निम्नलिखित उद्देश्य मध्य नजर रखकर आरम्भ किया गया—

१ अध्ययन के साथ बच्चो को आर्थिक अर्थ लाभ देना

२ अवकाश का लाभदायक उपयोग

३ अनुशासन, स्वसहायता एव सहकार की भावना का विकास तथा

४ बच्चों में स्वनिर्भरता एव श्रम की महता का विकास।

इन उद्योगों से होने वाले शुद्ध लाभ को इस प्रकार बांटा जाना तय किया—

१ काम में भाग लेने वाले विद्यार्थी को	७०%
२ पर्यवेक्षक	१५%
३ लिपिक व चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी	१०%
४ सुरक्षित निधि	५%

यह भी व्यवस्था की गई कि कोई भी विद्यालय बच्चों को इस प्रकार के काम में व्यस्त करने के लिए छात्र निधि से प्रारम्भिक खरीद के लिए दो हजार रुपये ऋण के रूप में उधार ले सकती है। विभाग की स्वीकृति से विद्यालय में प्राप्त मशीनें, औजार व अन्य वस्तुएं भी प्रयोग की जा सकती हैं।

कार्यानुभव

आगे चल कर इसे कार्यानुभव नाम दिया गया तथा इसके उद्देश्य पर विचार कर पुनर्निर्धारण किया गया—

१ राष्ट्रीय विकास में मदद करना
   - अ उत्पादकता तथा कार्य को शिक्षा से जोड़ना
   - आ राष्ट्रीय समन्वय
   - इ आर्थिक विकास से जुड़े मूल्यों का विकास, तथा
   - ई आधुनिकीकरण

२ मानवीय सम्पदा का उपयोग
   - अ शिक्षित एव विशिष्ठ तकनीक प्राप्त व्यक्तियों को उत्पादन कार्यों में लगाना
   - आ विद्यार्थियों में श्रम की महत्ता, कठोर परिश्रम, आत्मनिर्भरता उत्तरदायित्व, अनुशासन, सहकार, प्रजातांत्रिक विचार एव मूल्यों का विकास,
   - इ श्लाघा एव साधन सम्पन्नता, तथा
   - ई विद्यार्थियों की अतिरिक्त शक्ति का उपयोगी कार्यों में मार्गान्तरीकरण

१ कार्य एवं रोजगार के जगत से जानकारी

अ भविष्य के लिए व्यावहारिक प्रशिक्षण,

आ छात्रों को व्यवसायों की जानकारी

इ उत्पादन की प्रक्रिया में विज्ञान का प्रयोग तथा

ई उत्पादन की प्रक्रिया में सूझ बूझ का विकास,

मई १९६६ में शिक्षा विभाग के अधिकारियों की एक बैठक जयपुर में हुई जिसमें कार्यानुभव तथा सीखो कमाओ योजना की मुख्य-मुख्य बातों को स्पष्ट किया गया।

सीखो कमाओ योजना

किसी विशिष्ट प्रकार की रुझान वाले विद्यार्थियों को सही धंधों में उस उद्योग में व्यस्त रखना विद्यालय समय के सिवाय इन धंधों में बालकों की स्वेच्छिक एवं अवकाश के दिन लम्बी अवधि तक की, उपस्थिति बालकों में तकनीक का विकास तथा आगे चल कर इस धंधे को ग्रहण करने योग्य बनाना, व्यावसायिक आधारों पर योजना का कार्यान्वय, आशावादी एवं गत्यात्मक दृष्टिकोण, इससे स्कूल के दैनिक कार्यक्रम में कोई हस्तक्षेप या बाधा न हो। कार्य करने वाले छात्रों को दो भागों में बांटा गया—

१ मुख्य— बिना मदद एवं मार्ग दर्शन करने वाले।

२ सहायक—ऐसे छात्र जो दूसरों के मार्ग दर्शन मे काम करें।

प्रयत्न यह किया जाता है कि सहायक छात्र मुख्य छात्र से नीचे की कक्षा मे पढता हो। हर मुख्य विद्यार्थी के साथ एक सहायक विद्यार्थी जोड दिया गया। इस प्रकार मुख्य विद्यार्थी जब स्कूल छोड देगा तो सहायक विद्यार्थी उसका स्थान लेने योग्य बन जायगा।

इन सब कार्यों के लिए प्रधानाध्यापक की देख रेख में समितियां होती हैं। उत्पादित वस्तुओं के गुणों एवं योग्यता की परख होती है कीमत निर्धारण के लिए भी मानदण्ड निश्चित किया हुआ है विक्रय के तरीके निश्चित हैं–जिला स्तर पर एक विक्रय केन्द्र जयपुर मे स्थापित किया गया है। शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिये भी राज्य मे तीन प्रशिक्षण केन्द्र कार्यरत हैं, हिसाब किताब रखने के लिए भी रजिस्टर आदि रखे गये हैं तथा समितियां बनी हुई हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि देश में तीव्र गति से औद्योगीकरण करने के लिये कार्यानुभव का योजनाबद्ध खूब प्रचार हो, जिसम समाचार पत्र आकाशवाणी, विचार गोष्ठी सभा, शिविर का उपयोग देन में उपयुक्त वातावरण बनाने के लिए किया जाय, बहुकला संस्थान, कृषि एवं प्राविधिक महाविद्यालय, तकनीकी प्रशिक्षण संस्थान तथा अन्य व्यवसायों के संस्थान प्रशिक्षण व अल्पावधि पाठ्यक्रम तैयार कर ऐसे शिक्षक तैयार करे जो विद्यालय में काम कर सकें कार्यानुभव के क्षेत्र म विद्यार्थियों का मार्ग दर्शन कर सकें।

सिंहावलोकन

संक्षेप में यही गांधी जी की बुनियादी शिक्षा है। प्रश्न उठता है कि क्या आज के वैज्ञानिक युग में यह सब बुनियादी शिक्षा के लक्ष्य है? और यदि लक्ष्य नहीं है तो क्या यह कल्पना मात्र नहीं है? हर प्रकार की शिक्षा पर विचार गोष्ठियां, कार्य शालायें, वार्तालाप एवं संगोष्ठियां होती रही है पर मूल प्रश्न यह है कि 'शिक्षा किस वास्ते?' का उत्तर कोई नहीं देता है तथा सहेज ही विनोबा जी का यह कथन याद आ जाता है कि 'भारतीय शिक्षा का बानरीकरण हो रहा है।

ऐसा कहा जा सकता है कि शिक्षा के उद्देश्यों तथा कार्यानुभव के उद्देश्यों में तालमेल नहीं है। यदि शिक्षा का उद्देश्य ही रोटी मान लिया जाय तो लेखक को कुछ नहीं कहना है, पर ऐसा नहीं है। आठवीं या दसवीं कक्षा उत्तीर्ण करते ही बच्चा रोटी कमा सके तो फिर विद्यालयों में एम ए, एड या बी ए बी एड या बी ए, एम एड, या एम ए एम एड, उपाधि धारी शिक्षक रखने की आवश्यकता नहीं है—तब आवश्यकता है सुथार दर्जी चित्रकार या लुहार या अन्य ऐसे ही धंधे जानने वाले कामगर रखने की जो बच्चों को चीजें बनाना सिखा सके। बुनियादी शिक्षा में उत्पादकता पर बहुत अधिक बल दिया गया है इससे तो सम्भव है, विद्यालयों का स्वरूप ही बदल जायगा, वे कुटीर उद्योग धंधों के केन्द्र बन जायेंगे या उत्पादक संस्थान बन जायेंगे। शिक्षा का उद्देश्य रोटी कमाना भी हो सकता है पर यही एक सर्वोपरि उद्देश्य हो यही एक मात्र उद्देश्य हो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। शिक्षा का उद्देश्य बच्चों में उत्तरदायित्व का विकास करना है उनका मानस विकसित करना है, सुनागरिक बनाना है रोटी कमाना भी इन्हीं सब उद्देश्यों के समान एक उद्देश्य बन सकता है पर यही सब कुछ नहीं है यह भी तो मानना ही होगा। साथ ही

यह भी डर बना रहेगा कि शिक्षकों का नैतिक पतन न हो जाय। वे विद्यालयों को कारखाने तथा छात्रों को श्रमिक समझने लगेंगे, ऐसी स्थिति में वे अधिकाधिक उत्पादन की चेष्टा करेंगे।

प्राथमिक विद्यालयों में बालकों को लम्बे समय तक कताई बुनाई या मिट्टी के काम में या उद्यान में व्यस्त नहीं रखा जा सकता। मनोविज्ञान के अनुसार छोटे बच्चे लम्बे समय तक एकाग्रचित भी नहीं हो सकते। वे आत्म प्रदर्शन, मुक्त कार्य व्यापार तथा कार्यों में विभिन्न पसन्द करते हैं। *आरम्भ में बालक की रुचि भी इतनी विकसित नहीं होती कि वे व्यवसाय* का चुनाव कर सकें। फिर शिक्षकों की ओर से कोई न कोई व्यवसाय उन पर थोप दिया जाता है। बालकों में श्रम की महत्ता या काम करने की इच्छा सहज तथा स्वाभाविक रूप से (spontaneous) आनी चाहिए। बच्चे स्वयं अनुभव करें कि कार्य करना, सीखना उनके लिए हित कर है।

मनोविज्ञान के अनुसार बारह वर्ष की आयु के पूर्व बालक को हस्त कला नहीं सिखाना चाहिए। फिर यदि छोटी कक्षा से बालक कुशल श्रमिक बन कर निकलने लगें तो एक कठिनाई और सामने आयगी कि मार्केट ला के अनुसार कानूनन उनको छोटी उम्र में अल्प वयस्क होने से नौकरी पर नहीं रखा जा सकेगा फक्टरी एक्ट के अनुसार उनको काम पर नहीं लगाया जा सकता। ऐसी स्थिति में दक्ष श्रम भी बेकार होगा। यदि विद्यार्थी की अपेक्षा उद्योगों पर अधिक ध्यान दिया जाय तो यह भी सराहनीय स्थिति नहीं होगी। ऐसी व्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय साधारण आम सभा की राय के भी विपरीत है जिसने २० नवम्बर १९५० को सब सम्मति से बच्चों के अधि*कारों की घोषणा की और बताया कि अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र बिना किसी* भेदभाव के बच्चों के अधिकारों और स्वतन्त्रता को स्वीकार करता है। घोषणा पत्र के छठें सिद्धान्त में बताया गया है कि—

'बच्चे के समुचित व्यक्तित्व के लिए प्रेम और सद्भावना की आवश्यकता होती है। बच्चा यथा समय अपने माता पिता के प्रेम और संरक्षण के वातावरण में विकसित होता है। किसी भी दशा में बालक को उसकी माता से पृथक नहीं किया जा सकता है। असहाय और अनाथ बच्चों के *विकास का उत्तरदायित्व समाज व राज्याधिकारियों को लेना होगा।* बड़े परिवारों के बच्चों के पालन पोषण के लिए आर्थिक सहायता वांछनीय है।"

"बच्चों को शिक्षा की ही भांति खेलने और मनोरंजन के अवसर देना समाज तथा राज्याधिकारियों की जिम्मेदारी होगी।'

आठवें सिद्धांत के अनुसार

"प्रत्येक दशा में बच्चों के संरक्षण और सहायता को प्राथमिकता दी जाएगी।"

नवें सिद्धांत के अनुसार

"बच्चों को सभी प्रकार के अत्याचार और शोषण से बचाया जाए, उन पर किसी भी प्रकार का बंधन नहीं होगा किसी भी बालक को एक निश्चित न्यूनतम आयु से पूर्व सेवा कार्य के लिए नियुक्त नहीं किया जाएगा। उसे किसी भी दशा में ऐसी नौकरी या सेवा नहीं दी जाएगी जिसका उसके स्वास्थ्य तथा शिक्षा पर कुप्रभाव पडे अथवा उसके शारीरिक मानसिक या नैतिक विकास में बाधक हो।"

कार्यानुभव मे कई अवांछनीय तत्व काम कर रहे हैं। बाजार की बनी हुई चीजें भी इन स्टालो पर देखी गई हैं। चाक के डिब्बों मे कम्पनी की ही स्लिपें भी मिली हैं तथा कमीजों पर बाजार के दर्जियों की स्लिपें चिपकी देखी गई हैं। यदि इसी का नाम कार्यानुभव है या सीखो कमाओ योजना है तो कोई भी साधारण समझ बूझ रखने वाला व्यक्ति उनके जारी रखने के लिए अपने मुह से 'हाँ' नही कर पायेगा।

बाजार की बनी वस्तुए वहा रखी गई हैं। कार्यानुभव के द्वारा बनी वस्तुए बताने पर उन्हे अधिक मूल्य पर स्कूल मे क्रय की जाती है तथा लाभ बच्चों पर्यवेक्षक तथा अन्य कर्मचारियों को मिलता है। इसी प्रकार दूसरे शब्दों मे कहा जा सकता है कि ये वस्तुए बाजार भाव से महगी होती हैं और विद्यालय के धन का दुरुपयोग होता है।

कई जगहा पर कार्यानुभव के नाम पर बाजार के आदमियों को काम पर लगाया हुआ है जो स्थिति सराहनीय नही हैं। जो वस्तुए बच्चे बनाते हैं वे कभी कभी तो इतनी घटिया किस्म की होती है कि उन्ह कोई भी खरीदना पसन्द नही करता है। कई बार विद्यार्थियों द्वारा बनाई हुई वस्तुओं की फिनिशिंग एवं शक्ल सूरत भी बेहूदा होती है।

कई जगहों पर कार्यानुभव के नाम पर बाजार के आदमियों का काम लगाया हुआ है जो स्थिति सराहनीय नहीं है। जो वस्तुएं बच्चे बनाते हैं वे कभी कभी तो इतनी घटिया किस्म की होती हैं कि उन्हें कोई भी खरीदना पसन्द नहीं करता है। कई बार विद्यार्थियों द्वारा बनाई हुई वस्तुओं की फिनिशिंग एव शक्ल सूरत भी बेहूदा होती है।

आर्थिक दृष्टि से यह लाभप्रद योजना नहीं है। बच्चों से अधिक मात्रा में उत्पादन नहीं हो सकता, छात्रों का काफी समय नष्ट होता है, सामान की काफी टूट फूट होती है बालक बहुत अधिक सामान नष्ट कर देते हैं। बच्चों से बहुत अधिक उच्च किस्म के उत्पादन की आशा नहीं की जा सकती फलत बच्चा द्वारा उत्पादित वस्तुएँ कुशल एव दक्ष कारीगरों से बनी वस्तुओं के मुकाबले मे बाजार मे ठहर नहीं सकती हैं। इसीलिए उनको लाभ के साथ उचित मूल्य पर बेचा भी नहीं जा सकता है। इस प्रकार प्राथमिक या उच्च प्राथमिक स्तर पर शिक्षा में आत्मनिर्भरता की बात करना केवल कल्पना है।

वर्तमान पाठ्यक्रम निश्चित है बधा हुआ है, इसमें इधर-उधर नहीं हुआ जा सकता। जब तक पाठ्यक्रम में संस्था प्रधान को हेर फेर या परिवर्तन करने की सुविधा प्राप्त न हो, बुनियादी शिक्षा कोई भला नहीं कर सकती है।

बुनियादी शिक्षा मे विद्यालय, समाज समाज के सदस्यों का सहयोग भी नहीं चलाया जा सकता पर अशिक्षित या अर्द्ध शिक्षित माता-पिता की बुनियादी शिक्षा के मूल्यों मे कोई आस्था नहीं होती। बड़े-बड़े शिक्षाविकारी लोग अपने बच्चों को इन विद्यालयों मे पढ़ने नहीं भेजते। कोई भी हाथ से काम करना पसन्द नहीं करता है तथा हाथ से काम करने वाले को हेय दृष्टि से देखते हैं। जनसाधारण क्रमश इस तथ्य से परिचित हो जाते हैं तथा जानने लगते हैं कि खतरा उठाने के लिए प्रयोग करने के लिए तो हमारे बच्चे हैं यहीं से बुनियादी शिक्षा पर उनका विश्वास डगमगाने लगता है। बच्चों में कठोर परिश्रम श्रम की महत्ता तथा सादगी की वृत्ति का विकास करने में भी शिक्षक समुदाय असफल रहा है। केवल इतना ही नहीं कार्यानुभव के लिए जनसाधारण में काम के महत्व के लिए उपयुक्त दृष्टिकोण का विकास नहीं हो पाया है।

बौद्धिक विकास कक्षा में केवल सूचना देने भर से सम्भव नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी में दृष्टिकोण ज्ञान व कौशल का विकास हो। ऐसा न करने से विद्यार्थी का मानसिक तथा शारीरिक विकास पिछड़ा रहता। साहित्य एव सूचनाओं को पाठ्यक्रम में गौण तथा उद्योग को प्रमुख स्थान दिया गया है इससे वांछित विकास नहीं हो पाता। विद्यालय के साढ़े पांच घण्टों में से साढ़े तीन घण्टे उद्योग को देने से अन्य विषयों के लिए कम समय बचता। दूसरे बच्चे का मानसिक विकास पूर्ण नहीं हो

पाठ्य सिर्फ हस्तशिल्प को खूब समय देने से ही बालक का बहुमुखी विकास नहीं किया जा सकेगा। फिर वास्तव तो यह है कि उस हस्तशिल्प में भी बालक निपुण नहीं हो पाता। इस प्रकार कहा जा सकता है कि World of Work तथा World of Study में सतुलन का निर्वाह नहीं हुआ।

बुनियादी शिक्षा प्रणाली प्रशासकों एव अधूरे प्रशिक्षण प्राप्त सूचनाए, मार्ग दर्शन एव मूल्याकन विधियों के जानकार पर्यवेक्षकों के हाथों में असफल हो रही है। योग्य, अनुभवी एव समर्पित शिक्षकों का अभाव है। ऐसे शिक्षकों का तो नितान्त अभाव है कि उन्हे एक से अधिक हस्तशिल्पों का ज्ञान हो। कार्यकर्ताओं के लिए उपयुक्त साहित्य तथा पाठ्यक्रम योजना, पाठ्यक्रम निर्देशिका मूल्याकन के साधन सदर्भ ग्रन्थ आदि नहीं है। इन सबसे महत्व पूर्ण कि इन सब कार्यों के लिए आवश्यक धनराशि कहां है? शिक्षक नये प्रत्यय के अनुसार प्रशिक्षित न होने से अध्यापन के समय खीचतान कर समवाय (correlat on) सायेंगे जिससे छात्रों की पाठ मे रुचि नहीं रहेगी ऐसा समवाय न व्यावहारिक होगा और न स्वाभाविक ही। प्रो० नायडू (पी एस) के अनुसार अध्यापन प्रभावपूर्ण होना चाहिए इसलिए इसका सम्बन्ध बालक के निजी अनुभवों से जोड़ा जाए। इस समस्या के निवारण हेतु आयोग ने सुझाव दिया है कि व्यावसायिक सस्थाओं के कर्मचारियों से काम लिया जाये। पर यदि ऐसा किया गया तो बौद्धिक तथा शारीरिक श्रम मे भेद बढ जाएगा जो वाछनीय नहीं है तथा उद्देश्यों की प्राप्ति मे स देह बना रहता।

महत्वपूर्ण यह है कि जो कुछ ज्ञान विद्यार्थी प्राप्त करे वह सार्थक हो। सार्थक इस अर्थ मे कि वह बालक को उद्योग तथा सीखने के वक्त आने वाली जरूरतों को पूरा करे। दूसरे शब्दों में इसे व्यावहारिक साक्षरता (Functioual Literacy) कहा जा सकता है। पर आज स्थिति यह है कि बालकों को ढर सारी आवश्यक सूचनायें दे दी जाती है जिसका उसके जीवन के लिए कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं है। वैसे भी यह अपूर्ण शिक्षा पद्धति है क्योंकि यह शिक्षा सात से चौदह वर्ष की आयु वालों के लिए ही है, उससे पहले तथा बाद की शिक्षा, व्यवस्था क्या होगी? इस पर मौन हैं? यहा यह भी समान रूप से महत्वपूर्ण है कि इसे IAS, IPS, IFS तथा अन्य प्रतियोगी परीक्षाओं में क्यों नहीं जोड़ा जाता? जिससे कुशल अधिकारी प्राप्त हो सकें।

भिन्न भिन्न पाठशालाओं म समय, स्थिति, प्राप्त धनराशि, तक नीकी ज्ञान साधन, वातावरण के अनुसार भिन्न भिन्न कार्यानुभव प्रारंभ किये जायेंगे। इस प्रकार यह सफेद हाथी सिद्ध होगा। स्कूलों के पास सीमित साधन होते हैं ऐसी स्थिति म सभी वांछित व्यवस्था न हो सकेगी। ऐसा लगता है कि कार्यानुभव का सिद्धांत प्राथमिक स्तर पर कैसे लागू होगा ? इस सम्बन्ध मे आयोग भी अस्पष्ट है। उद्देश्य सराहनीय है, पर उनकी प्राप्ति के तरीके विधियां तथा शिक्षा का अभिन्न भाग बनाने के आधार पर आयोग मौन है। प्राथमिक स्तर पर कार्यानुभव से कुछ उत्पादन की आशा करना व्यर्थ है। उत्पादन गौण विचार के रूप म लिया जाना चाहिए। इस स्तर पर आर्थिक लाभ की आशा नहीं करना चाहिए।

कार्यानुभव या बुनियादी शिक्षा में जीवन मूल्यों की अवहेलना की गई है। राष्ट्रीय जीवन के अनुसार शिक्षा धर्म पर आश्रित होनी चाहिये, इसकी प्राप्ति मे इसका महत्वपूर्ण उद्देश्य होना चाहिए। पर यह इसकी अवहेलना करती है। विद्यालय बालक को जीने की कला सिखाता है। सारा जीवन परिवर्तनमय है, क्योंकि परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है। ऐसी स्थिति मे विद्यालय बालक को अप्राकृतिक वातावरण ही प्रस्तुत करता है।

औद्योगिक तकनीक के अनुसार यह योजना सफल व उत्तम नहीं कही जा सकती। बड़ी मात्रा मे उत्पादन के सभी लाभ प्राप्त नहीं होते। शिक्षा की व्यवस्था छोटे छोटे उद्योगों को केन्द्र मानकर की जाती है। यान्त्रिक तथा औद्योगिक युग में ये छोटे छोटे उद्योग धन्धे जीवित भी रहेंगे या नहीं इसमें भी सन्देह होने लगता है। यदि प्रतियोगिता करते हैं तो वह भी हानिप्रद है। मशीन को स्वामी नहीं बल्कि मित्र बनाना चाहिये। "सभी व्यक्ति साथ-साथ काम करें तथा फल को मिल बांट कर खायें।" कहना आसान है पर करना उतना ही कठिन है, क्योंकि मनोवैज्ञानिक के अनुसार मनुष्य एक लालची प्राणी है।

शिक्षा म व्यावसायीकरण तथा कार्यानुभव में अन्तर स्पष्ट नहीं किया गया है। आयोग के अनुसार न कोई शिक्षा पूर्णत व्यवसायी हो सकती है और न कोई सामान्य या उदार। शिक्षा आयोग भविष्य में ऐसे विद्यालयों की कल्पना करता है कि सामान्य शिक्षा के साथ प्रारम्भिक व्यवसाय या पूर्व प्रशिक्षण भी रखा जाए तथा व्यावसायी स्कूलों म

सामाय या उन्नार निमा की भी व्यवस्था हो तथा एक प्रन्य स्थान पर कार्यानुभव को शिक्षा के प्रभिन्न प्रग के रूप मे प्रस्तुत करता है । इन बातों को समझना इनम तालमेल बिठाना साधारण पाठक की समझ बूझ के बाहर है क्योंकि इन दोनो बाता म विरोधाभास स्पष्ट है ।

गांधीजी उन प्रादर्शों के लिए जीये प्रौर मर, जिनकी उन्होने निक्षा दा प्रौर प्राज का मानव समाज उनसे बहुत कम सीख पाया । प्राज दुनिया में शिक्षा जहा तहाँ दीख पडती है, जीवन के शाश्वत मूल्य भुलाये जा चुके हैं तथा भौतिक एव यान्त्रिक मूल्यों ने सम्पूर्ण ध्यान प्राकर्षित कर लिया है । यह है गाधीजी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा की वर्तमान स्थिति । प्राज बालक के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का मतलब लिया जाता है "विद्यालय के पाठयक्रम में प्रधिक से प्रधिक विषय, शाला के दैनिक कार्यक्रम म प्रधिक से प्रधिक प्रवृत्तिया तथा विद्यालय म शिक्षण के लिए प्रधिक से प्रधिक समय ।" इसका परिणाम यह हुआ है कि बालक पुस्तकों के भार से लद गये हैं तथा शिक्षा का स्तर दिनोंदिन गिरता जा रहा है । एक प्रोर योजनाओं में तीव्र प्रौद्योगीकरण पर बल दिया गया है प्रौर इसके दूसरी प्रोर शिक्षा म चरित्र निर्माण व प्रात्मिक विकास को भुला दिया गया है । क्या ऐसी शिक्षा प्रर्थहीन, निरर्थक तथा प्राणहीन नही होगी ।

उद्योग शिक्षा

—●—

आज चारों ओर बेकारी का ताण्डव नृत्य चालू है। यह बेकारी सभी रूपों में दीख पड़ती है—यथा पूर्ण बेकारी, आंशिक बेकारी, छिपी हुई बेकारी, अर्द्ध बेकारी आदि। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि हमारी शिक्षा कुर्सी से प्रेम पैदा करती है, बाबू बनने को तैयार करती है। फल यह हुआ है कि आज किसानों के बच्चे भी शहरों में नौकरी ढूंढ़ते दीख पड़ते हैं, वे भी हाथ से काम नहीं करना चाहते अपनी पेंट व कमीज की क्रीज बिगड़ न जाय, इसके लिए बड़े सचेत दीख पड़ते हैं। प्रारम्भ से यह प्रयत्न रहा है कि शिक्षा को उद्योग से जोड़ा जाय उद्योग के माध्यम से ही शिक्षा दी जाय। बच्चे की जिस उद्योग में रुचि दीखे बच्चे को उसी कार्य की दुनिया से जानकारी कराई जाय, उसी उद्योग मे बच्चे को दक्ष बनाया जाय।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन में इस बात पर जोर दिया गया है कि व्यवसाय केन्द्रित शिक्षा (Vocation biased Education) होनी चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन म भी इस पर बल दिया गया है। 'हम अपना ध्यान छात्रों म तकनीकी एव व्यावसायिक क्षमता के विकास पर केन्द्रित करना है। न केवल काम के प्रति एक नया दृष्टिकोण ही लाना है, वरन श्रम के प्रति निष्ठा व काम को सर्वाधिक फलापूर्ण तरीके से पूरा करने की इच्छा का विकास करना है। हर शिक्षक का इसी सन्दर्भ मे छात्रों का मार्ग दर्शन करना चाहिए। शालाओं में उत्पादन-उद्योगों पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए पाठ्य क्रम का विभिन्नीकरण होना चाहिए जिससे छात्र अपनी रुचि का पाठ्य क्रम चुन सके, कर्माभ्यास युक्त पाठ्य क्रमो की व्यवस्था होनी चाहिए, जहां छात्रों को

स्मान का पता लग सके तथा व काम की दुनिया के लिए तैयार किये जा सकें।"*

जहां विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग तथा माध्यमिक शिक्षा आयोग ने उद्योग-व्यवसाय की शिक्षा पर इतना जोर दिया है वहां इस शिक्षा ने कोठारी शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन म भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। कोठारी शिक्षा आयोग ने भी अपने प्रतिवेदन में, जिसका नाम ही उन्होंने 'शिक्षा व राष्ट्रीय विकास' दिया है, माध्यमिक शिक्षा म मुख्यत व्यावसायिक आधार पर जोर दिया है।** उनकी राय के अनुसार कृषि, तकनीकी एव व्यावहारिक (क्रियात्मक) विषय ही नवयुवकों को भिन्न भिन्न कार्यों में लगायगा। आज की भारतीय स्थितियों मे यही आवश्यक है। हम भावी शिक्षा की रूप रेखा का सामान्य व व्यावसायिक शिक्षा के लाभदायक सयुक्तीकरण की कल्पना करते हैं।"*** हमें मुख्यत अपना ध्यान उद्योग व्यवसाय सकेन्द्रित शिक्षा पर देना चाहिए तथा उच्च माध्यमिक कक्षाओं में पढ़ रहे आधे विद्यार्थियों के लिए इन पाठ्यक्रमों का विस्तार किया जाना चाहिए। इन भिन्न-भिन्न उद्योग व्यवसाय पाठ्यक्रमों की अवधि एक से तीन वर्ष हो।' **** इसी रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि "हम उद्योग-व्यवसाय सकेन्द्रित माध्यमिक शिक्षा को अत्यधिक महत्व देते हैं। इस बात के लिए हम केन्द्रीय सरकार स आग्रह करते हैं कि इसके लिए विशिष्ट केन्द्रीय क्षेत्रों में केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों को अनुदान दे। इस सम्बन्ध में भारत को अमेरिका से पाठ सीखना चाहिए जहां संघीय सरकार उद्योग व्यवसाय सकेन्द्रित शिक्षा देने वाले शालाओं को उदारता पूर्वक अनुदान देती है।'*****

---

* Secondary Education Commission Report Ministry of Education Government of India, New Delhi First Reprint. 1954 pp 28 29

** Report of the Education Commission Ministry of Education, Government of India New Delhi, 1966 p 8

*** वही पृष्ठ ६

**** वही पृष्ठ ३४०

*****वही पृष्ठ १७४

जहां उद्योग व्यवसाय की शिक्षा का इतना महत्व है, वहां आज इस शिक्षा की क्या स्थिति है ? यह भी किसी से छिपी हुई है ? उद्योग शिक्षा की अपनी कुछ समस्यायें है–कठिनाइयां है–उन पर भी विचार किया जाना आवश्यक है। ये कठिनाइयाँ इस प्रकार है—

१ उद्योग शिक्षा का जो पाठय क्रम तैयार किया जाता है वह ऐसे व्यक्तियों द्वारा तयार किया जाता है जिन्हें उद्योग व्यवसाय के सम्बन्ध में व्यावहारिक ज्ञान नहीं हैं। लेखक को यह मानने म कोई आपत्ति नहीं है कि पाठयक्रम तैयार करने वाले उन व्यक्तियों को सैद्धान्तिक ज्ञान अवश्य है। ये पाठयक्रम तैयार करने वाले विश्वविद्यालयों के या महाविद्यालयों के अन्य पदाधिकारी होते हैं जिन्हें काम की वास्तविक दुनिया का कोई ज्ञान नहीं होता। इसके लिए आवश्यक है कि उद्योग शिक्षा का पाठयक्रम तैयार करते समय उद्योग शिक्षकों की, जो शालाओं म कार्य करते हैं, जिन्हे कर्मा भ्यास है सम्मति ली जाय, उनसे विचार विमर्श कर पाठयक्रम को अन्तिम रूप दिया जाय।

२ उद्योग–शिक्षा की सफलता बहुत कुछ प्रत्यास्मरण पाठयक्रम (रिफ्रेशर कोर्सेज) पर भी निर्भर करती है। आज की शिक्षा व्यवस्था में इस प्रकार के पाठयक्रम की कोई व्यवस्था नहीं है। मान लीजिये, एक विद्यार्थी ४–५ वष तक किसी विशिष्ट उद्योग का प्रशिक्षण प्राप्त करता है, पर प्रशिक्षण के बाद भी वह अपनी शिक्षा जारी रखता है जहां उसे उद्योग की शिक्षा नही मिलती है। ऐसी स्थिति में वह उद्योग के ज्ञान को भूल जाता है। यदि प्रत्यास्मरण पाठयक्रम की व्यवस्था हो जाय तो उसे अपने कौशल को पुन स्मरण करने में सुविधा होगी। यही नही उद्योग के क्षेत्र म और भी जो शोध इस बीच हो चुकी होगी, उससे भी उसकी जानकारी हो जायगी।

३ किसी शाला मे किसी उद्योग विशेष की कक्षा प्रारम्भ करने से पहले यह सर्वेक्षण कर लिया जाना चाहिये कि उस उद्योग से सम्बन्धित आवश्यक कच्चा सामान वहा सुविधा स उपलब्ध हो सकेगा या नहीं, तयार वस्तुओं की खपत उसी क्षेत्र मे हो सकेगा या नहीं—खपत नहीं होने पर वस्तुओं को बाहर भेजने पर क्या खर्च आयगा ? इन बातों को ध्यान मे रख कर उद्योग प्रारम्भ किये जाय तो सफलता की मात्रा बढ सकती है। उदाहरण के लिए राजस्थान के उदयपुर जिले म कोटरा एक ऐसी जगह है जहा बाँस बहुत होता है ऐसी स्थिति मे कोटरा के स्कूल में बास के सम्बन्धित उद्योग

शुरू किया जाना चाहिए। वहां की आवश्यकता का भी अनुमान लगा लिया जाना चाहिए। यदि दूसरा उद्योग प्रारम्भ किया जायगा तो कच्चा सामान बाहर से मंगवाना होगा, जो महगा पड़ेगा। इसलिए आवश्यक है कि स्थानीय उपलब्ध कच्ची वस्तुओं का अधिकाधिक उपयोग किया जाय। इसी प्रकार बीकानेर में ऊन से सम्बन्धित उद्योग की कक्षाएं खोली जानी चाहिए।

४ उद्योग शिक्षा के लिए कच्चा माल खरीदते समय सावधानी नहीं बर्ती जाती। शालाओं में रंग, गोंद, लाख प्राय अन्य सामान के साथ लिपिक खरीद लाते हैं। व इनकी उच्च श्रेणी पर ध्यान नहीं देते, वे सस्ती से सस्ती तथा घटिया किस्म की वस्तुएं बाजार से खरीद लाते हैं। लेखक का यह आग्रह नहीं है कि उद्योग शिक्षकों पर इनकी खरीददारी छोड़ दी जाय। पर उद्योग सम्बन्धी वस्तुएं खरीदते समय उनकी राय तो ली हो जा सकती है, खरीदी जाने वाली वस्तुएं खरीदने से पहले उन्हें बताई जा ही सकती हैं। इस सम्बन्ध में उचित पग उठाया जाना चाहिये।

५ कच्चा माल घटिया होने से वस्तुएँ घटिया किस्म की तैयार होती हैं तथा वस्तुएँ टिकाऊ नहीं होतीं, जिससे लोगों का उनमें विश्वास उठता जा रहा है। वस्तुओं की किस्म में सुधार लाना आवश्यक है तभी लोगों को उन्हें प्रयोग करने के लिए तैयार किया जा सकता है।

६ सही एवं पर्याप्त औजारों की बड़ी कमी है। औजार आज के इस विज्ञान के युग में mass production के आधार पर तैयार होते हैं जिससे वे हर उद्योग-शिक्षक की जरूरत पूरी नहीं कर सकते। शिक्षक वस्तुओं को अधिकाधिक सुन्दर बना कर संतोष अनुभव करते हैं, पर सही औजारों के अभाव में वे ऐसा नहीं कर पाते।

आजकल कक्षा में छात्रों की संख्या भी कई गुनी बढ़ गई है। कक्षा के आकार के अनुसार औजार (संख्या में) प्राप्त नहीं होते, जिससे कई बच्चों की बारी या तो आती ही नहीं है और यदि आती है तो नाम मात्र को। इसके लिए आवश्यक है कि उद्योग शिक्षा के लिए कक्षा का आकार छोटा हो, जिससे शिक्षक हर छात्र पर व्यक्तिगत ध्यान दे सके। पूरी ४०–४५ छात्रों की कक्षा को कुछ नहीं सिखाने की अपेक्षा ४–५ या ८–१० छात्रों को उद्योग में कुशल बना देना, अपनी रोटी कमा लेने योग्य बना देना भी राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा होगी।

७ प्रशिक्षित उद्योग शिक्षकों की बड़ी कमी है। आजकल उद्योग-शिक्षक के लिए स्नातक होना आवश्यक हो गया है, फिर भले वे उद्योग शिक्षा के सम्बन्ध में काला अक्षर भैंस बराबर हो। कई प्रशिक्षित शिक्षक भी सैद्धान्तिक योग्यता ही रखते है तथा व्यावहारिक क्षेत्र म उन्हें कुछ नहीं आता। वे कक्षा म सद्धान्तिक ज्ञान की चर्चा बखूबी कर लेंगे, पर उद्योग की व्यावहारिक कक्षा में वे वस्तुए तयार नहीं कर पात कई शिक्षक जानते हुए भी नहीं करना चाहते। कारण कई हो सकते हैं। इसके लिए शिक्षकों म हाथ से काम करने के प्रति निष्ठा देख पर उन्हे अधिकाधिक प्रशिक्षित कराना चाहिए।

८ उद्योग शिक्षको के वेतन स्तर का प्रश्न भी इससे जुडा हुआ है। उद्योग शिक्षको को वेतन बहुत कम मिलता है। वसे वेतन तो सभी शिक्षकों को कम मिलता है पर उद्योग शिक्षकों को तो और भी कम। इसी कारण वे पूरे मन से काम नहीं करते उनको प्रोत्साहन नहीं मिलता। प्रशसा के दो शब्द भी कभी कभी बड़े उपयोगी होते है। पर प्रशसा तो दूर, उनके काम को हेय दृष्टि से देखते हैं। समाज मे उद्योग शिक्षा का, उद्योग शिक्षकों का सम्मान नहीं है आगे पदोन्नति की कोई सम्भावना नही दीखती, जस उद्योग शिक्षा निरीक्षक या निदेशक आदि। उनके जीवन स्तर में सुधार के लिए वेतन मान मे वृद्धि वाछनीय है। इसी सम्बन्ध में उच्च पद भी जोड़े जाने चाहिए, जिन पर वरिष्ठता एव काय के आधार पर इन उद्योग शिक्षकों को पदोन्नत किया जा सके।

९ कोई भी दो बच्चे अपनी रुचि दष्टिकोण, पसद, विचारधारा, मूल्य, व्यक्तित्व में समान नहीं होते फिर पूरी कक्षा का समान होन का प्रश्न ही नहीं उठता। स्कूलो में बच्चो की वयक्तिक भिन्नता का ध्यान नहीं रखा जाता। एक से अधिक उद्योगा के पढाने की व्यवस्था वहा नही होती। सभी बच्चा को एक ही उद्योग की शिक्षा दी जाती है, उद्योग शिक्षा उन पर लादी जाती है। बच्चों के अधिकतम कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि स्कूलों में एक से अधिक उद्योगों के अध्यापन की व्यवस्था की जाय जिससे बच्चे अप रुचि के अनुसार उद्योग शिक्षा का चयन कर सकें। यदि एक सम्पन्न प का बच्चा कताई बुनाई म रुचि नहीं रखता है तो क्यो नहीं उसे अन्य की शिक्षा दी जाय, कताई बुनाई की कक्षा में तो वह टालमटोल करे

१० सच तो यह है कि उद्योग शिक्षा के महत्व को उचि समझा ही नहीं गया है। जिस तरह कोई ग्रामीण १०००-२००

वस्तुएं खरीद कर कुछ वस्तु बानगी (नमूने) के रूप में मांग लेते हैं, उसी प्रकार उद्योग शिक्षा बानगी के रूप में अस्तित्व बनाये हुए है। इसे अन्य विज्ञान, भाषा या गणित के समान महत्वपूर्ण नहीं माना जाता।

(घ) संस्था प्रधान भी उद्योग शिक्षा के लिए उद्योग शिक्षकों के प्रति बड़ उदासीन दीख पड़ते हैं। वे उद्योग शिक्षकों का मान नहीं करते यदि संस्था प्रधान ही उनका सम्मान नहीं करते तो बच्चे या समाज उनका आदर करेगा या नहीं यह स्पष्ट है। लेखक के ज्ञान में ऐसे शाला प्रधान भी हैं जो उद्योग शिक्षक को बुला कर फोन पर मित्र से बात नहीं करवा सकते। इसके लिए यह आवश्यक है कि शाला या संस्था प्रधान अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लायें।

(च) अन्य किसी काम को पूरा करवाना है तो उद्योग शिक्षक को बुला लिया जाता है। यदि बच्चों की आवश्यकता हुई तो उद्योग कालांश आने पर बच्चों को उस काम में व्यस्त कर लिया जाता है। इस भांति उद्योग शिक्षा की कोई परवाह नहीं की जाती। उद्योग शिक्षा का महत्व समझ कर ऐसा नहीं करना चाहिए।

(छ) समय सारिणी में उद्योग को कम कालांश दिये जाते हैं। सप्ताह में सभी दिन पीरियड नहीं होना भी अखरता है। बराबर काम न करने से बच्चे भूल जाते हैं। एक दिन उद्योग शिक्षा की कक्षा लगने के बाद दूसरे दिन कालांश नहीं आता है, तो तीसरे दिन छुट्टी हो जाती है तो चौथे दिन सभा की कार्यवाही हो जाती है, तो पांचवे दिन छात्र अनुपस्थित हो सकता है।

(ई) अन्य विषयों में अध्ययन करने वालों को विभिन्न प्रकार से सहायता दी जाती है यथा छात्रवृत्ति, शिक्षा वृत्ति, शुल्क मुक्ति, ब्याज मुक्त ऋण आदि। पर उद्योग शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों के लिए इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं है और यदि कहीं है तो दाल में नमक के समान, जो नगण्य है। उद्योग शिक्षा के विकास एवं प्रोत्साहन के लिए अधिकाधिक छात्र वृत्ति, शिक्षा वृत्ति ब्याज मुक्त ऋण, और शुल्क मुक्ति दी जानी चाहिए और यदि कहीं व्यवस्था है तो इसका विस्तार किया जाना चाहिए। कोठारी शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन में भी इस बात पर अत्यधिक बल दिया गया है।

(उ) शिक्षा क्रम में उद्योग शिक्षा का कितना महत्व है, यह तो इससे

जाना जा सकता है कि उद्योग शिक्षा में उत्तीर्ण–अनुत्तीर्ण होना छात्र के वार्षिक परीक्षोपरान्त अगली कक्षा में जाने के लिए कोई प्रभाव नहीं डालता। इतना ही नहीं, विद्यार्थी के श्रेणी गिनने में भी उद्योग शिक्षा के अंक कोई महत्व नहीं रखते। उद्योग शिक्षा के अंकों को पृथक कर शेष अंकों के आधार पर छात्र की श्रेणी निर्धारित की जाती है।

(११) अंतिम पर महत्वपूर्ण यह भी कि उद्योगों से निर्मित वस्तुओं का प्रचार नहीं किया जाता। फलतः उपयोग नहीं हो पाता है। लेखक के ज्ञान में ऐसे स्थान हैं जहां इन उद्योग कक्षाओं के बनी सुन्दर सुन्दर वस्तुओं पर धूल जमी हुई है व सार सम्भाल न होने से वर्षा के पानी से रेखाएं बन गई हैं। इसके लिए आवश्यक है कि वस्तुओं का प्रचार किया जाय, समाचार पत्रों में विज्ञापन दिये जाय, समय–समय पर प्रदर्शनियां लगाई जाय जहां ये बिक्री हेतु रखी जा सके। विशेष अवसरों, जैसे गणतन्त्र दिवस या गांधी जयन्ती या बाल दिवस पर रियायती मूल्य भी ग्राहकों को आकर्षित करने का एक तरीका है। सरकार स्वयं वस्तुओं को खरीद कर उपयोग में ला सकती है।

इन सब कठिनाइयों का निवारण कर, उद्योग शिक्षा का महत्व समझ कर, शिक्षा–क्रम में उसे उचित स्थान दिया जाय। अन्य विषयों के समान उसके अंक निश्चित किये जाय। इन सबसे अधिक यह कि छात्रों में श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न की जाय। तभी उद्योग शिक्षा फलप्रद सिद्ध हो सकेगी तथा बेकारी के निवारण में योग दे सकेगी।

प्रौढ शिक्षा एव स्वायत्तशासी सस्थाये

—●—

शिक्षा जगत में 'समाज शिक्षा' शब्द पिछली दो एक दशाब्दियों से सुना जा रहा है। इसके पूव प्रौढ शिक्षा पुकारी जाती थी। उस समय प्रौढ शिक्षा से आशय प्रौढ़ों को साक्षर कर देना मात्र ही लिया जाता था। पर केवल पढ़ने लिखने का ही अर्थ शिक्षा नहीं है इसलिए प्रौढ़ शिक्षा का क्षेत्र विस्तृत करके इसे समाज शिक्षा की सज्ञा दी गई। पर आज भी समाज शिक्षा शब्द उतना लोकप्रिय नहीं हो पाया जितना कि सोचा गया था तथा प्रचलन में प्रौढ शिक्षा का ही बाहुल्य है।

प्रौढ शिक्षा की आवश्यकता

आज भौतिक समृद्धि इतनी बढ गई है कि हम पड़ोसी को भी भूलते जा रहे हैं—जीवन दिन-दिन जटिल होता जा रहा है। दिनों व सप्ताहों का काम मिनिटों व घन्टों में होने लगा है। मशीनों पर काम करने वालों को तकनीक सम्बन्धी अद्यतन ज्ञान देने के लिए तथा काम में लगने वाला समय कम होने से श्रमिकों को मिलने वाले अवकाश का सदुपयोग सिखाने के लिए प्रौढ़ शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है।

चिकित्सा के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवतन होने से मानव की औसत आयु भी बढ़ी है। वृद्ध लोगों के अनुभवों का लाभ युवा पीढ़ी को हो तथा स्वय वृद्ध बदलती हुई परिस्थितियों में अपना समञ्जन कर सकें, इसके लिए भी प्रौढ शिक्षा की व्यवस्था अनिवाय है।

सक्षेप में प्रौढ़ शिक्षा को सबकी रुचि और आवश्यकता के अनुकूल बनाया जाना चाहिए। महत्व की बात यह है कि बहुविध रुचियों के विचार से तैयार किये गये अच्छे तथा कल्पनापूर्ण पाठ्यक्रम ही अध्ययन की प्रेरणा देने वाले सशक्त साधन बन सकते हैं। अन्त में नियोजित आर्थिक विकास का पूरा पूरा लाभ उठाया जा सके इसके लिए भी प्रौढ़ शिक्षा का महत्व कम नहीं कहा जा सकता।

(५) स्थानीय आवश्यकतानुसार उद्योग धन्धे व दस्तकारी का ज्ञान प्रदान करना जिससे प्रौढ़ों का आर्थिक स्तर उन्नत हो।

प्रौढ शिक्षा का प्रशासन

प्रौढ शिक्षा के कार्यों की सूची देखने से लगता है कि यह काय किसी एक व्यक्ति या विभाग का काय नही है। इस सम्बन्ध मे शिक्षा आयोग की अनुशसायें महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आयोग इस बात पर बल देना चाहता है कि 'प्रौढ़ शिक्षा की बहुविधता उसकी व्यापकता और विविधता को देख कर यह नहीं समझ लेना चाहिये कि यह किसी मत्रालय के उसी एक विभाग का काम है जो प्रशासनिक रूप से उसे सम्भालता है। यह जरूरी है कि इसे प्रत्येक विभाग का काय माना जाय। योजना बनाने के स्तर पर ही नही, कार्यान्विति के स्तरों पर भी उनके कायक्रम बनाने और उसका प्रसार करने में समग्र प्रशासनतन्त्र जुटा रहे। प्रौढ शिक्षा के सचालन मे विभागवाद के लिए कोई स्थान नही। यह बताया गया है कि प्रशासनिक उदासीनता के कारण इस क्षेत्र मे काय को बहुत हद तक हानि पहुची है। यह ठीक है कि प्रौढ शिक्षा मुख्यत शिक्षा मत्रालय का काय है पर ऐसी काय विधियों को अपनाना जरूरी है जिनसे समग्र प्रशासनतन्त्र का व्यावहारिक सहयोग सुनिश्चित हो।'

आगे चल कर आयोग ने राष्ट्रीय प्रौढ शिक्षा बोड की स्थापना की सिफारिश की है जिसमें सभी सम्बन्धित मत्रालयों और एजेन्सियो के प्रतिनिधि हों' इसी भाति राज्य स्तर पर भी इसी प्रकार के बोड स्थापित किये जाने चाहिये। जिला स्तर पर समितियाँ स्थापित की जायें जो, जहा जिला परिषद हो वहा, स्कधों के रूप म काय करें। उनकी सहायता के लिए खण्डो और ग्राम पचायतो की तदनुरूप समितिया हों। ग्राम स्तर पर स्कूलो को सामुदायिक केन्द्रों के रूप मे विकसित किया जाय। ग्राम खण्ड और जिले के स्तरों पर कृषि स्वास्थ्य सहकारिता सामुदायिक विकास और अन्य विस्तार कायक्रमों के बीच घनिष्ठ सहयोग सुनिश्चित किया जाय।

राजकीय नियन्त्रण मे अच्छे कायकर्ता—आकर्षक वेतन होने से एव सेवा सुरक्षा होने से—प्राप्त हो जाते हैं। राजकीय सस्थायें साधन सम्पन्न होती हैं उनके पास अच्छी कायशालायें तथा पुस्तकालय होते हैं। सेवा की सुरक्षा होने से तथा सेवा की लम्बी अवधि के आधार पर पदो नतियां होने से राजकीय कमचारी निष्क्रिय हो जाते हैं और न ही वे नये प्रयोगों में रुचि लेते हैं। इस कारण प्रौढ़ शिक्षा को बडा धक्का लगता है। प्रबन्ध की

अकुशलता तथा नौकरशाही के कारण निर्णयों पर शीघ्र कार्यवाही नहीं होती है। राजकीय नियन्त्रण में इस शिक्षा की स्थिति एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी।

आठ वर्ष पूर्व राजस्थान में सवाईमाधोपुर जिले के विद्यालय उपनिरीक्षक महोदय को ११ ग्रीष्मकालीन प्रौढ़ शिक्षा शिविरों में ४५० प्रौढ़ों की साक्षरता की जांच करनी थी। जिला मुख्यालय से वे जब पचायत समिति कार्यालय पर पहुचे तो शिविरो की सख्या ११ से घट कर ६ ही रह गई। वर्षा का मौसम होने से सभी केन्द्रों का निरीक्षण करवाना कठिन था अत एक ऐसा केन्द्र चुना गया जहा पहुचने के लिये रेल से एव शेष पैदल चल कर पहुचा जा सकता था। रिकार्ड के अनुसार वहा ४० प्रौढो को साक्षर किया गया था। प्रौढों के खेत पर जाने से पहले निरीक्षण की व्यवस्था की गई। आश्चर्य की बात यह है कि बहुत प्रयत्न करने पर भी दो प्रौढो से भेंट हुई। एक कदम और आगे बढ़िये। इन प्रौढो में से एक ने, जो १५ वर्ष का था २ वर्ष पूर्व स्थानीय प्राथमिक शाला की तीसरी कक्षा की पढ़ाई समाप्त की थी तथा ३० वर्षीय द्वितीय प्रौढ थोड़ी सी गिनती मात्र ही जानता था। इस प्रकार काम कम तथा दिखावा अधिक होता है। पता नही कब तक इस प्रकार प्रौढ़ कागजों में साक्षर होते रहगे।

शिक्षा में स्वच्छिक सस्थाओं की अपनी भूमिका है। विद्यालयों का रूप वैदिककाल या बौद्धिकाल में कुछ भी रहा हों पर उनको समाज से सभी प्रकार की मदद प्राप्त होती थी। आज पाई जाने वाली ये सस्थायें निम्न वर्गों में बाटी जा सकती है—

(अ) मान्यता प्राप्त एव सहायता प्राप्त

(आ) मान्यता प्राप्त एव सहायताहीन

(इ) अमान्यताप्राप्त एव सहायताप्राप्त

(ई) अमान्यताप्राप्त एव सहायताहीन

इस प्रकार की सस्थाओं में जिला परिषद्, नगरपालिका आर्य समाज सनातन धर्म, रामकृष्ण परमहस या मिशनरियां होती हैं। ये सस्थायें किसी एक व्यक्ति द्वारा या प्रबन्ध समिति द्वारा या किसी ट्रस्ट द्वारा चलाई जाती है।

इन स्वच्छिक सस्थाओं की अपनी सीमायें हैं, अपनी कठिनाइयां हैं। सबसे बड़ी कठिनाई इस सम्बन्ध में यह है कि आज ज्ञानी एवं सेवाभावी व्यक्तियों की सख्या अति न्यून हो गई। अपने काय के प्रति वफादार एव स्थायी शिक्षक प्राप्त नहीं होते हैं। जिससे इन सस्थाओं

को सरकारी अनुदान पर निभर रहना पड़ता है, इनके पास पर्याप्त भवन नहीं होते खेल के मैदानों की तो बात ही कहां ? ये संस्थाए विभागीय नियमों का पालन नही करती, श्रम के नाम पर शिक्षकों से इच्छा के विरुद्ध काम करवाया जाता है । ये संस्थायें शिक्षकों का शोषण करती हैं । पाठक शोषण के तरीकों से भली प्रकार परिचित हैं । अनुदान मिलने पर इस प्रकार की अधिकांश संस्थायें लापरवाह हो जाती है क्योंकि उनकी आर्थिक चिन्ता मिट जाती है तथा जिन कार्यों एव उद्देश्यों को लेकर संस्था आरम्भ की गई थी, उन्हें भूलते जाते हैं, क्योंकि अनुदान समानता के आधार पर मिलता है । इस सबंध में शिक्षा आयोग (१९६४-'६६) ने स्पष्ट कहा है कि सहायता/अनुदान के वतमान नियम सहायता के सिद्धांत पर आधारित हैं, इसलिए वित्तीय सहायता के लिए सभी गैर सरकारी संस्थाओं को एक जैसा समझा जाता है । इससे अक्सर अच्छे स्कूलों की प्रगति मन्द हो जाती है और खराब स्कूलों पर धन नष्ट किया जाता है ।" अनेक निजी प्रबंध समितियां अनेक प्रकार के अवांछनीय तथा अनैतिक काय को कर रही हैं । लेकिन इसका उपचार नष्ट कर देने मे नहीं है, बल्कि इनका सुधार करने में है । शिक्षा आयोग इस सम्बन्ध मे बहुत आशान्वित है । आयोग ने वित्तीय सहायता तथा शैक्षिक नेतत्व देने की जोरदार सिफारिश की है । आयोग के अनुसार 'इन क्षत्रो मे काम करने वाली स्वच्छिक संस्थाओं को हर प्रकार का वित्तीय और तकनीकी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए । प्रौढ शिक्षा ऐसा क्षेत्र है जो स्वच्छिक प्रयत्नों के लिए बहुत ही अनुकूल हैं, इसका क्षत्र बहुत ही विस्तृत है । इसकी सफलता म स्वच्छिक प्रयासों का बहुत बडा हाथ होगा ।' एक अन्य स्थान पर शैक्षिक नेतृत्व के लिए शिक्षा आयोग ने इस प्रकार का संकेत किया है प्रत्येक गैर सरकारी स्कूल की एक प्रबंध समिति होनी चाहिए जिसमे स्कूल को चलाने वाले स्वच्छिक सगठन शिक्षा विभाग तथा स्कूल के अध्यापकों के प्रतिनिधि होने चाहिए । सहायता/अनुदान संहिताओं में इन समितियों के गठन *सम्बन्धी ब्यौरे, इनके अधिकार तथा दायित्व निश्चित करने होंगे ।* यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रबंध समिति मे सरकारी प्रतिनिधियों को मनोनीत करने का मुख्य उद्देश्य यही है कि शिक्षा मे रुचि रखने वाले व्यक्तियों की सलाह तथा मार्गदर्शन सुलभ करा कर प्रबंधकों की सहायता की जाये । इस व्यवस्था की सफलता इस बात पर निर्भर है

कि किस प्रकार वे व्यक्ति नामित किये जाते हैं। यदि इस अधिकार का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से किया जाय तो प्रबन्धक सरकार द्वारा नामित व्यक्तियों को शक्ति का स्त्रोत समझ कर उनका स्वागत करेंगे।"

फोर्ड फाउण्डेशन ने अपने सर्वेक्षण के अनुसार पाया कि स्थानीय समुदाय शिक्षा के लिए विशेष उत्साह नहीं रखता है जबकि स्थानीय समुदाय का सबसे अधिक योग होना चाहिए। स्थानीय स्तर पर तयार की गई शिक्षा की योजना अधिक सक्षम होगी।

आयोग ने सुझाया है कि जिस संस्था के प्रबन्धक अपने भाषणों में अधिक अनुदान दें उन्हें अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाए ताकि गैर सरकारी स्त्रोतों से अधिक धन सुलभ हो सके।' 'इन संस्थाओं के काम की बार बार समीक्षा होनी चाहिए ताकि इनको ग्रामीण समाज के लिए उपयोगी बनाने के लिए सुधार किया जा सके।

इन संस्थाओं के पास अतिरिक्त स्टाफ पर्याप्त पुस्तकें शिक्षण सामग्री और सहायक साधन पुस्तकालय और प्रयोगशालायें होनी चाहिए। अशासकीय विद्यार्थियों को पढ़ाने की प्रणालियां भिन्न होंगी। इस बात का पूरा लाभ उठाया जाना चाहिए उनमें सीखने की प्रवृत्ति प्रबल होगी।

विश्वविद्यालय एवं प्रौढ़ शिक्षा

राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा 'प्रौढ़ शिक्षा विभाग' की स्थापना निसन्देह सराहनीय कदम है। इस प्रयोग से अन्य विश्वविद्यालयों को सबक लेना चाहिए। विश्वद्यालय रेडियो व टेलिविजन की मदद से पत्राचार पाठयक्रम को अधिक आकर्षक एवं प्रभावी बना सकते हैं। आशा की जाती है कि विश्वविद्यालय के जीवन को जनसमुदाय के जीवन से अच्छी तरह सम्बद्ध किया जा सकता है। आयोग के अनुसार इस सम्बन्ध में विश्वविद्यालय का काय—"समुदाय को उसके सामाजिक आर्थिक शक्षिक और सांस्कृतिक विकास में मदद देना तथा विभिन्न समस्याओं के बारे में नये वैज्ञानिक निष्कर्ष तथा नये विचार लोगों तक पहुंचाना राष्ट्रीय जीवन को चुनौती देने वाली कुछ महत्वपूर्ण समस्याओं पर निर्णय करने के लिए व्यावहारिक ज्ञान और व्यापक अनुभव का लाभ भी समुदाय को दें। राष्ट्रीय अभिरुचि तथा जनता की आदतों और सामाजिक व्यवहार के स्तर को उठाने में भी उन्हें सहायता देनी चाहिए। सायंकालीन कक्षा अध्ययन मण्डली, तरुण संघ, अल्पकालिक पाठ्यक्रम भाषण, गोष्ठी, स्वाध्याय, प्रदर्शन, महिला समिति

सांस्कृतिक एवं मनोरंजक कार्यक्रम, कृषि, स्थानीय उद्योग तथा सहकारी संस्थाओं का सचालन आदि ऐसे अनगिनत तरीके हैं जिन्हें विश्वविद्यालय अपनी विस्तार सेवाओं को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए अपना सकते हैं।

आयोग का विचार है कि 'देश में कुछ विश्वविद्यालयों को प्रौढ़ शिक्षा विभाग स्थापित करने चाहिए। इन विभागों का उद्देश्य होना चाहिए—प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र के विशेषज्ञों एवं अध्यापकों को प्रशिक्षण देना, शिक्षा समाज शास्त्र और मनोविज्ञान के अन्य सम्बन्धित विभागों के सहयोग से प्रौढ़ शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर अनुसंधान प्रारम्भ करना, मार्गदर्शन करना तथा विस्तार सेवा के अन्तर्विभागीय कार्यक्रमों के लिए प्रस्तावित प्रौढ़ शिक्षा बोर्ड को सहयोग देना और उनकी कार्यान्विति में सहायता देना।"

राजस्थान में स्वैच्छिक संस्थाओं ने इस क्षेत्र में कुछ कार्य किया है। इस सम्बन्ध में राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर सजग है। जनता कालेज डबोक (उदयपुर) के माध्यम से वे ग्रामों के पंचों व सरपंचों को अल्पकालिक प्रशिक्षण देते हैं।

ग्राम विद्यापीठ विद्याभवन, उदयपुर का पंचायती राज प्रशिक्षण केन्द्र के कार्यकर्ता ग्रामों में घूम घूमकर वहां के नागरिकों जिनमें पंच सरपंच भी सम्मिलित होते हैं प्रशिक्षण देते हैं। इनके पाठ्यक्रमों में ऊपर बताये उद्देश्यों के अनुसार सभी कार्यक्रम रहते हैं।

इस क्षेत्र में प्रौढ़ शिक्षा समिति, बीकानेर के प्रयासों को भी नहीं भुलाया जा सकता। समिति के मार्ग दर्शन में नगर में विभिन्न स्थानों पर प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र चलते हैं। महिलाओं के लिए पृथक केन्द्र भी हैं। इनके पाठ्यक्रम में शिक्षार्थी का चारित्रिक विकास ही मुख्य पहलू रहता है।

जयपुर में भी इस प्रकार के शिक्षण केन्द्रों की व्यवस्था की गई है।

राजकीय क्षेत्र में भीलवाड़ा जिले में सांगानेर तथा शाहपुरा एवं उदयपुर जिले में राजसमन्द स्थानों पर ग्रामीण क्षेत्रों में भी प्रयोग के तौर पर प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की गई है। शाहपुरा में प्रहर पाठशालायें भी चलाई जा रही हैं। वरिष्ठ विद्यालय उपनिरीक्षक राजसमन्द के अनुसार उनके क्षेत्र में नियमानुसार पारिश्रमिक प्राप्त कार्यकर्ता हैं तथा केन्द्र सफलता पूर्वक चल रहे हैं।

प्रौढ़ शिक्षा को बढ़ावा व तीव्रगति प्रदान करने के लिए आवश्यक है

कि शिक्षकों को बौद्धिक व व्यावसायिक योग्यता बढ़ाने के अवसर मिलने चाहिये। प्रौढ़ शिक्षा में लगाये गये समय व करने में उपार्जित अवकाश ही काफी नहीं होता, उन्हें अर्थ प्राप्ति भी होनी चाहिये। इस सम्बन्ध में दूसरा कदम यह उठाया जा सकता है कि एक प्रान्त में कार्यरत समाज शिक्षा अधिकारी, कार्यकर्ता को अन्य प्रान्तों की इसी तरह की शिक्षण संस्थाओं को दिखलाना चाहिये। इससे उनके ज्ञान का विस्तार होगा वे नया कौशल प्राप्त करेंगे तथा उन्हें नई सूझ बूझ मिलेगी जिससे वे अपना काम करने के लिए अधिक सक्षम होंगे तथा अपने कार्य का वस्तुगत मूल्यांकन कर सकेंगे। मूल्यांकन के बाद यदि आवश्यक हुआ तो वे अपने भावी कार्यक्रम में परिवर्तन कर सकेंगे।

हमें प्रौढ़ शिक्षा के उज्ज्वल भविष्य की आशा करनी चाहिये।

—○—

राष्ट्रीय एकता के विकास में शिक्षकों की भूमिका

—●—

आजकल स्थानीय या प्रान्तीय या राष्ट्रीय स्तर की खेल प्रतियोगिताओं के समय होने वाले झगड़े फसादों को कौन नहीं जानता ? खेल खेल की भावना से नहीं खेला जाता। आज के इस वातावरण को देखते हुए यह कल्पना करना ही निर्मूल है कि अच्छी नागरिकता का पाठ कक्षा के कमरे में सिखाने की अपेक्षा खेल के मैदान में कहीं अधिक उत्कृष्टता से सिखाया जा सकता है। जिन उद्देश्यों को लेकर खेल प्रतियोगिता आयोजित की जाती है वे उद्देश्य तो स्वप्न हो जाते है।

आजकल राष्ट्रीयता के विकास के लिए चलचित्र गृहों में खेल समाप्त होने पर राष्ट्रीय गान गाया जाता है। क्या सफलता मिली ? किसी ने मूल्यांकन का प्रयत्न ही नहीं किया। राष्ट्रीय गान के समय अपने स्थान पर 'सावधान' की स्थिति में खड़े रहने की अपेक्षा सिनेमा हाल में भगदड़ मच गई—सब दूसरे साथी से पहले बाहर निकालने की सोचने लगे—कुर्सियों पर पांव रख कर बाहर निकल आए भले ही आगन्तुक जो देखने वाले उन कुर्सियों पर बैठकर अपने कपड़े खराब करें। इसकी उन्हें चिन्ता क्यों होने लगी ? उनके लिए राष्ट्रीय गान की अपेक्षा खेल देखकर तुरन्त बाहर निकालना ज्यादा महत्वपूर्ण है, तथा शीघ्र बाहर निकलकर अपना काम करने का वे लोभ संवरण नहीं कर सकते।

इतना ही हो सो बात नहीं है। ये दर्शक युवतियों पर पत्थर फेंकते देखे गए हैं। कागज की गोलियां फेंकना तो सामान्य बात हो गई है उन्हें देखकर सीटी बजाते हैं। युवतियों के बाहर निकलने के रास्ते को रोक रखते हैं। कई बार साइकिल पर उनके पास से निकल कर उलजलूल या अश्लील शब्द कहते सुने जाते हैं तथा बात की बात में मार झगड़े होते हैं। भले आदमी सोच ही नहीं पाते कि उनमें हमारी मां बहनें भी हो सकती है। कुछ मुहल्ले या बाजारों का तो वातावरण यहां तक दूषित हो गया है कि वहां

भले घर की महिलाएँ या युवतियां जाना भी पस द नहीं करती है ।

युवक समारोह आयोजित होते हैं । उद्देश्य होता है—भाई चारा बढ़ाना, एक दूसरे को समझना, सहानुभूति सहिष्णुता का विकास होना, एक दूसरे के व्यक्तित्व, उसकी गरिमा का आदर करना एक दूसरे के आचार विचार जानना । पर होता क्या है ? यह भी किसी से छिपा नही है—लडाई झगडे सिर फुटौवल, एक-दूसरे को नीचा दिखाने के काम बस किसी तरह अपनी प्रतिष्ठा बनी रह । और तो और रेलो मे बिना टिकिट यात्रा करेंगे, रेलवे अधिकारी द्वारा टिकिट मागने पर उसे जान से मारने की धमकी देते हैं । बस के कण्डक्टरो के साथ भी यही होता है । यह कोई नई बात नही हैं । आये दिन समाचार पत्रो में इस आशय के समाचार पढने को मिलते हैं ।

रेलवे स्टेशनों या डाकघरो पर लिखा होता है कि लाइन म खडे होइए । हैं हम मे से कोई ऐसे व्यक्ति जो अपनी बारी की प्रतीक्षा म खडे रह ? सब अपना काम शीघ्र पूरा करना चाहते हैं । हम अपने साथी मित्रो के लिए त्याग नहीं कर सकते—बस मे बठते समय भी धक्कमपेल होती हैं, कई व्यक्तियो के तो कपडे लत्ते या उनका सामान टूटते फूटते भी देखा गया हैं ।

यही नहीं एक ही परिवार मे भी विभिन्न विचार-धाराओं को देखा जा सकता है—वहा भी मतैक्य नही मिलता । एक भाई प्रात काल ब्रह्म मुहूत मे उठ कर स्नानादि से निवत होकर हनुमान चालीसा पढता है तो दूसरा भाई बिस्तर में ही चाय पीना पस द करता है । ऐसी स्थिति म स्पष्ट है कि दोनों भाइयो म ताल मेल कसे हो सकता है ? दोनो के जीवन की राह पृथक पृथक है । जब एक परिवार मे ही एका नही मिलता तो क्या राष्ट्रीय स्तर पर एकता की आशा करना हमारी भूल नही है ?

ये दनिक जीवन के कुछ उदाहरण है । गम्भीरता से देखने पर ऐसे सकडो उदाहरण सुबह से शाम तक देखे जा सकते हैं । समझ मे नही आता कि इतना सब होत हुए भी देश के प्रशासक शिक्षाशास्त्री समाज सुधारक राष्ट्रीय एकता के विकास के स्वप्न सजोये रहते हैं । क्या इन सब परिस्थितियों में राष्ट्रीय एकता के विकास के स्वप्न देखना आकाश कुसुम के समान नही है ?

इन सब बातो को पढने के बाद निष्कप रूप से यह कहा जा सकता है कि लडाई झगडा या दगा-फसाद व्यक्तियो के मस्तिष्क मे पदा होता हैं । अत उनके मस्तिष्क को शान्ति से रहने के लिये प्रशिक्षित किया जाना चाहिये ।

राष्ट्रीय एकता का अभिप्राय

राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया देश के नागरिकों को एक सूत्र में पिरोने वाली वह शक्ति है जिसके वशीभूत होकर व्यक्ति अपने स्वार्थों को त्याग कर राष्ट्र हित को सर्वोपरि समझने लगता है, इसका सम्बल ग्रहण कर विश्व के अनेक पद दलित राष्ट्र उठ खड़े हुए हैं और आज समृद्धि के चरम शिखरों को चूम रहे हैं।

खाली दिमाग शैतान का घर होता है। फिर आज की उद्देश्यहीन शिक्षा उनको और उच्छृंखलता की ओर अग्रसर करती है। सब कुर्सी पर बैठ कर काम करना चाहते हैं। कोई भी अपने कपड़े खराब या गंदे करके काम करने को तैयार नहीं है। ग्रामीण विद्यार्थी भी शहरों की ओर दौड़ चले आ रहे हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षक के सामने सेवा का बहुत बड़ा क्षेत्र खुला पड़ा है कि विद्यार्थियों को उन्हें हाथ से काम करने को प्रेरित करे जिससे उनका भविष्य सुरक्षित हो सके तथा जीविका के लिए उन्हें दर दर न भटकना पड़े। यदि पेट भरने की ही व्यवस्था नहीं हुई तो वे क्या राष्ट्रीय एकता की बात करेंगे? शिक्षक को 'भूखे का मनोविज्ञान' का स्पष्ट व गहरा ज्ञान होना चाहिए। शिक्षक ही यह हाथ से काम करने का महत्वपूर्ण विचार विद्यार्थियों में विकसित कर सकते हैं। रोटी रोजी का प्रश्न हल होने पर ही राष्ट्रीय एकता या अन्य कोई बात करना अर्थपूर्ण हो सकता है उसके पूर्व नहीं।

इन सब स्थितियों में शिक्षकों की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है। यदि विद्यार्थियों को यह विश्वास हो जाए कि शिक्षक उनके कल्याण के लिए हैं, उनके भले के लिए हैं तो विद्यार्थी शिक्षक की बात को आदेश मानेंगे। शिक्षकों के पास वह कुंजी है जिससे वह विद्यार्थियों में मस्तिष्कीय परिवर्तन ला सकते हैं। एक तर्क यह हो सकता है कि बच्चे शिक्षक की अपेक्षा माता पिता के पास अधिक रहते हैं। पर पिता के पास बच्चे पर ध्यान देने का समय नहीं है तथा माता भी यदि कहीं नियोजित हुई तो बच्चा बिना मा बाप का बन जाता है। यह निर्विवाद रूप से मानना होगा कि ऐसी स्थिति में शिक्षक का *उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है।*

नैतिक जीवन जीने का तरीका सीखने के लिए धार्मिक शिक्षा एक उपाय हो सकता है। पर यहां सावधानी यह बरतनी पड़ेगी कि धार्मिक शिक्षा केवल सपना मात्र बनकर न रह जाए। प्रयत्न यह होना चाहिए कि विद्यालय के अंग अंग से धार्मिक शिक्षा की धारा बह चले। विभिन्न धर्मानु

धर्मियों के एक शाला में होने से कोई शिक्षक धार्मिक शिक्षा की जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेना चाहते, पर यह तो ठीक ऐसी स्थिति हुई कि नाक में गन्दा निकलता है तो नाक को ही कटवा दो या बुखार चढ़ता है तो जहर का इन्जेक्शन लगवाकर मर जाए न कि अच्छे होने के लिए दवा ग्रहण करें। यह तो कोई प्रशंसनीय स्थिति नहीं है यह तो विमुख होने का लक्षण है।

राष्ट्रीय भावात्मक एकता के विकास के लिए साधन ढूढने हेतु भारत सरकार ने डाक्टर सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया इस समिति की महत्वपूर्ण सिफारिशें इस प्रकार है

१ स्कूल तथा कालेज के पाठ्यक्रम को धर्म निरपेक्षता के आधार पर बनाया जाय। प्राथमिक स्तर पर कहानी, कविता लोक कथा राष्ट्रीय गान पर जोर दिया जाय। नैतिक प्रार्थना भी इस सम्बन्ध में उपयोगी हो सकती है। माध्यमिक स्तर पर इन बातों के सिवाय भाषा और साहित्य नैतिक और धार्मिक शिक्षा एवं सहगामी क्रियाएँ सहायक हो सकती है। विश्वविद्यालय स्तर पर इन बातों के सिवाय सस्कृति और कला की शिक्षा तथा विद्यार्थियों का आदान प्रदान भी सुझाया जा सकता है।

२ इस सम्बन्ध मे सहगामी क्रियायो का महत्वपूर्ण भाग हैं। ये क्रियाए त्यौहार जयन्तिया, पर्व (उदाहरणार्थ—२६ जनवरी, १५ अगस्त २ अक्टूबर १४ नवम्बर) सरस्वती यात्राएँ तथा साहित्यिक क्रियाएँ बिना जाति रग वर्ण धर्म एव लिंग आदि के भेदभाव के मनाई जाय। साहित्यिक क्रियाओ मे वाद-विवाद अन्त्याक्षरी आदि आती हैं। इसी प्रकार बालचर, एन सी सी नाटयसभा एव ए सी सी भी उपयोगी हो सकती है। इन क्रियाओ से सतुलित व्यक्तित्व का विकास होता है सोचने विचारने का क्षेत्र बढता है भाईचारे का विकास होता हैं सेवा भाव त्याग एव सहिष्णता का विकास होता है।

३ राष्ट्रीय भावात्मक एकता के विकास के लिए सामाजिक अध्ययन विषय का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इससे भौगोलिक ऐतिहासिक एव सास्कृतिक धरोहर का ज्ञान होता है। सामाजिक ज्ञान की पुस्तकों म विश्व के महान व्यक्तियो के कार्यों और चरित्रों का विवेचन हो। यहाँ यह सावधानी बरती जानी चाहिए कि

इतिहास की पुस्तकों में तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर न रखा जाय जिससे कि अन्य लोगों की भावनाओं को ठेस पहुचे। प्राथमिक स्तर पर पुस्तकों में चित्रों का प्रयोग बहुलता से किया जाना चाहिए।

सम्पूर्ण भारत में जब तक हिन्दी का पूर्ण विकास न हो जाय अन्य भारतीय भाषाएं भी अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ाई जाय। पुस्तकों में अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग किया जाय। पाठ्यक्रम के भार को कम करने के लिए हिन्दी को अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में रोमन लिपि से पढ़ाई जाय। हिन्दी की पुस्तकें क्षेत्रीय भाषाओं में तैयार की जाय और उनको सुविधापूर्वक प्रयोग करने के लिए हिन्दी-पंजाबी, हिन्दी-गुजराती, हिन्दी-तमिल आदि इसी प्रकार के शब्द कोष तैयार किये जाय। हाई स्कूल कक्षाओं में हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी जानी चाहिए। भाषा नीति पर कार्य करते समय अल्प संख्यकों के हितों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

. विभिन्न विद्यालय अपने सभी विद्यार्थियों के लिए एक निश्चित गणवेश रखें।

६ बच्चों को राष्ट्रगीत का महत्व तथा अर्थ बताया जाय और उन्हें अनुशासित रह कर गाना सिखाया जाय।

७ बच्चों को राष्ट्रीय झण्डे के इतिहास की जानकारी दी जाय तथा उसके महत्व से भी परिचित कराया जाय।

८ राष्ट्रीय एकता तथा भारतीय अखण्डता पर बड़े पढ़े लिखे व्यक्तियों से भाषण करवाये जाय तथा बच्चों को भी बोलने का अवसर दिया जाय।

९ प्रतिदिन कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व राष्ट्रीय प्रतिज्ञा दोहराई जाय।

१० प्रति वर्ष स्कूल में नाटक खेले जाय जो प्राचीन भारतीय संस्कृति, मुस्लिम जीवन व अन्य क्षेत्रों पर आधारित हो।

११ अन्तर्राज्य स्तर पर विद्यार्थियों का आदान प्रदान हो तथा शैक्षणिक यात्राओं का आयोजन हो। इससे विद्यार्थी भिन्न भिन्न स्थानों की संस्कृति से परिचित हो सकेंगे।

१२ विद्यालय के सजाने में विद्यार्थियों का योग लिया जाय, इससे विद्यार्थियों में स्कूल के प्रति वफादारी पैदा होगी।

१ भारतीय एकता तथा समन्वय बढ़ाने जनतन्त्र में विश्वास पैदा करने तथा परम्परागत समाज को आधुनिकता में परिवर्तित कराने के लिए शिक्षा की पुनर्स्थापित या पुनर्गठित की जाय।

२ विभिन्न क्षेत्रों में शैक्षणिक असतुलन समाप्त किया जाय।

३ कोठारी शिक्षा आयोग द्वारा प्रकाशित सामान्य विद्यालय प्रणाली को अपनाई जाय।

४ पाठ्य पुस्तकों की उपयुक्त व्यवस्था की जाय।

५ किसी राज्य की शिक्षा संस्था में प्रवेश के लिए किसी भी राज्य के किसी भी विद्यार्थी के लिए किसी प्रकार की रोक न हो।

६ उच्च शिक्षा के लिए अन्य राज्यों में जाने वाले विद्यार्थियों के लिए उदार छात्रवृत्तियों की व्यवस्था हो।

७ विश्वविद्यालयों में अन्त विश्वविद्यालय हेलमेल को प्रोत्साहन दिया जाय।

८ अवकाश के समय में देश दर्शन तथा भ्रमण की सुविधाएं दी जाय।

९ साम्प्रदायिकता बढ़ाने वाली प्रवृतियो को रोका जाय तथा इस प्रकार की भावना वाले अध्यापकों को नियुक्त न किया जाय।

अन्त प्रान्तीय विवाहों को भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। पजाब की दुल्हन महाराष्ट्र में शादी करे तथा गुजराती दूल्हा असम की दुल्हन से शादी करे। इससे एक दूसरे को निकटता से समझ सकेंगे तथा एक दूसरे के लिए त्याग करने को भी तत्पर रहेंगे। इस प्रकार एक से अधिक भाषा संस्कृति रीति रिवाज भी जान सकेंगे जो उनमे सहिष्णुता का विकास कर सकेंगे तथा इस प्रकार जातीय पवित्रता भी बनी रहेगी। कुछ पाठक अन्तजातीय विवाहों को प्रोत्साहन देना चाहेंगे। विचार अच्छा है। इसके लिए वे राय देना चाहेंगे कि दो विभिन्न जातियो के स्त्री पुरुषों के समागम से नई सन्तान हृष्ट पुष्ट तथा स्वस्थ होगी। इसके लिए वांछनीय होगा कि नशास्त्र के विशेषज्ञों को शोधपूर्ण तथ्य जन साधारण के उपयोगार्थ प्रस्तुत करने चाहिये जिससे ऐसे विवाहों को भी प्रोत्साहन मिल सके।

इसी प्रकार नये नाम रखे जाने चाहिए जैसे मुरली मोहम्मद या इब्राहीम लाल आदि, ये नाम कुछ समय नये या अटपटे लग सकते है पर धीरे धीरे इनका प्रचलन होने पर सामान्य हो जायेंगे तथा एकता के विकास में मन्द करेंगे। इसी सम्बन्ध मे एक बात यह भी कही जा

सकती है कि नाम के आगे कोई भी व्यक्ति अपनी जाति न लिखे। ऐसा करने से किसी को कोई शिकायत न रहेगी तथा व्यक्तियों में देश के प्रति भक्ति का विकास होगा व नौकरी के लिए चुनाव करते समय पक्षपात न हो सकेगा, आशार्थियों को सन्तोष होगा। ये विचार क्रांतिकारी लग सकते हैं पर इनके प्रचार प्रसार के लिए प्रयत्न तो करना ही चाहिए।

पिकनिक या सहभोज के समय बिना जाति बिरादरी का ध्यान रखे सबके साथ समान व्यवहार किया जाए, इनसे इनमें सहनशीलता व सहिष्णुता पैदा होगी, अन्य धर्मों के प्रति आदर का भाव पैदा होगा। इसी भाँति बस में बैठते समय या डाकघर से टिकिट खरीदते समय बालकों को अपनी बारी की प्रतीक्षा करना सिखाया जा सकता है। इससे वे अपने साथियों के लिए त्याग करना सीखेंगे तथा वे केवल स्वकेंद्रित ही नहीं रहेंगे जो भावात्मक एकता की सबसे बड़ी बाधा है। इसी प्रकार नाटक का अभिनय करते समय साथी मित्रों के व्यक्तित्व का आदर करना सिखाया जा सकता है। पाठकों को ये बातें छोटी-छोटी लग सकती हैं पर इन्हीं बातों के आधार पर व आगे चलकर राष्ट्रीय भावात्मक एकता के उपासक ही नहीं पुजारी बन सकते हैं। इस भांति शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका राष्ट्रीय भावात्मक एकता के निर्माण में योगदान कर सकती है।

आरम्भ से ही शिक्षक का समाज में बड़ा ऊंचा स्थान रहा है। शिक्षक को महेश्वर की संज्ञा देकर ईश्वर तुल्य बताया गया है। शिक्षक विद्यार्थी को पशु से मनुष्य बनाता है इसीलिए कहा है कि शिक्षक के चरणों में बालक का दूसरी बार जन्म होता है। यही कारण है कि शिक्षक अंधकार का हरने वाला प्रकाशदाता कहा गया है। शिक्षक, उसके सम्पर्क में आने वाले सभी विद्यार्थियों की राह बदल देता है— इसलिए शिक्षक को राष्ट्र निर्माता कहा गया है।

शिक्षक के जीवन का उद्देश्य ही सेवा है तथा अन्य लोगों को रास्ता बताने के लिए प्रकाश देना ही उसका धर्म है है। शिक्षण के सिवाय अन्य कोई व्यवसाय ऐसा नहीं है जहां सेवा का अवसर मिल सके तथा आत्म सन्तोष प्राप्त हो।

लोक कल्याणकारी समाज के निर्माण के सन्दर्भ में शिक्षक की नई भूमिका सामने आई है। पर आज शिक्षण व्यवसाय में वे लोग

प्राते हैं जिन्हें प्रयत्न नौकरी या रोजगार नहीं मिलता है। वे सच्चाई ईमानदारी तथा शील की बलि देकर भी अधिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। आज का शिक्षक समाज सम्पति, शिक्षण उपकरण, निम्नस्तर के शिक्षण आदि दुगुणों से बुरी तरह जकड़ा हुआ है। शिक्षा प्रशासक एवं अधिकारी जब भी बैठते हैं, इन बिन्दुओं पर बातचीत करते हैं। उनका कहना है कि प्रखर बुद्धि, जिन्दा दिल एवं सेवा के लिए समपण की भावना रखने वालों के लिए तो हर सम्भव प्रयत्न किये ही जाने चाहिए।

आज की तत्काल ध्यान देने वाली समस्याएं हैं— भूखे को भोजन प्राप्त कराना अगूठा छाप को शिक्षित करना, विद्यालय भवन शिक्षण उपकरण बेकारों के लिए रोजगार तथा मानव कल्याण के लिए विज्ञान का उपयोग। हर जगह प्रगतिशील दृष्टिकोण दिखाई देने लगा है। परम्परागत रीति रिवाज तथा आदर्श छूटते जा रहे हैं। समय की माग है कि शिक्षा केवल बौद्धिक विकास ही न करे, बल्कि नैतिक व सामाजिक कल्याण के काय भी करे। इस प्रकार शिक्षण के प्रति नये दृष्टिकोण, नये विचार, नये आदर्श एवं नई तकनीक अपनानी होगी। इस भांति स्पष्ट है कि शिक्षा के सम्पूर्ण ढाचे मे आमूलचूल परिवतन करना होगा। भारतीय शिक्षक सक्रमण काल से गुजर रहा है यह विकास का समय है। भारतीय शिक्षक के पास भूतकाल की धरोहर तथा भविष्य की सम्भावनाए हैं।

नये भारत के लिए प्रगतिशील शिक्षा प्राचीनकाल से चली आई शिक्षा व्यवस्था म मेल नहीं खा रही है। एक समय था जब विद्यार्थियों मे भेद किया गया। प्रखर बुद्धि वाले को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के योग्य ठहराया गया तथा अन्य को उद्योगों में प्रवेश करके हाथ से काम करने की राय दी गई। पर आज सबके स मन शिक्षा के समान अवसर हैं। प्रत्येक विद्यार्थी अपनी योग्यतानुसार उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकता है। निधनता उसके माग म बाधक नहीं हो सकती ऐसी व्यवस्था की गई है। महत्वपूण यह है कि विद्यार्थी को अपनी सम्भावनाओं तक विकास करने का अवसर प्रदान किया जा रहा है। स्पष्ट है कि सभी बच्चे समान नहीं है कोई धनी है तो कोई गरीब, कोई काला है तो कोई गोरा, इसी भांति बुद्धि प्रेरणा एवं रुचियों में भी समानता नहीं है, कुछ शहर के रहने वाले हैं तो कुछ गावों के। यदि विद्यार्थियों ने अध्ययन करने का तरीका नहीं सीखा यदि वे अनुपयुक्त वातावरण के कारण अपनी जिज्ञासा

गन्त न कर सके तो राष्ट्र का बहुत बड़ा अहित होगा। बालकों की बुद्धि के उच्चतम विकास के नए संस्कारों में समायोजन के लिए साहसी, प्रेरणास्पद एव व्यापक शिक्षण के तरीकों की आवश्यकता है।

कई घण्टों तक पढ़ने की अपेक्षा उन्हे प्रेरणा, एवं मार्गदर्शन की आवश्यकता है। इसी भांति यदि एक विद्यार्थी के परीक्षा में कम अंक आते हैं तो शिक्षक को उसे अन्य बालकों के साथ हांकने की जरूरत नहीं है, बल्कि उसकी कमी के कारण जानकर उनको दूर करना चाहिए।

प्रतिभाशाली एव प्रखर बुद्धि बालकों के सामने शिक्षा सम्बन्धी बाधाएँ हैं तो बालकों को शिक्षा से मना न कर उनकी बाधाए दूर करनी चाहिये। स्कूल जाने वाले कई बालकों मे राष्ट्रीय चेतना व सामाजिक परिवर्तन के विचार आने लगे हैं। निःशुल्क सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के विचार से विद्यालयों में छात्रों की संख्या में कई गुनी वृद्धि हुई है। इससे शिक्षक की समस्याएँ भी बढ़ी है जिन्हें उसे सफलता के साथ हल करना है।

माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन से पाठ्यक्रम में भारी परिवर्तन किए जा रहे हैं, फलतः शिक्षा का भार बढ़ रहा है, उसके दायित्व भी बढ़े हैं, उसे अधिक काम करना पड़ रहा है। पाठ्यक्रम जनता की आवश्यकताओं तथा विद्यार्थी की रुचि के विषयों पर आधारित बनाया जा रहा है। विद्यार्थियों को अपनी रुचि योग्यता बुद्धि रुझान एव शारीरिक क्षमता के दृष्टिकोण से पाठ्य विषयों का चुनाव करने एव अध्ययन की सलाह दी जाने लगी हैं तथा स्वयं विद्यार्थियों को अपना निर्णय लेने के योग्य बनाया जाने लगा है। इस प्रकार निर्देशन सेवाएँ स्वयं अपने आप में महत्वपूर्ण घटक है।

अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के लिये शिक्षा

—●—

आज के इस भौतिक युग में विश्व नागरिकता विश्व मैत्री भाई-चारा सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न बन गया है। विज्ञान की उन्नति ने दूरी पर विजय करली है विश्व सिकुड़ गया है, सभी राष्ट्र पास पास आ गये हैं। जो यात्रा सप्ताहों और महीनों में होती थी वह अब घण्टों एव दिनों में होने लग गई है। इसी का परिणाम है कि एक देश की स्थितियों का दूसरे देश की स्थितियों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए यदि भारत में जट की पैदावार मे कमी हो जाय तो उसका प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर पड़ेगा। यही स्थिति चीनी की हो सकती है। क्यूबा मे यदि गन्ने की फसल घटिया हो या किन्हीं कारणों से फसल से उत्पादन की मात्रा मे कमी हो जाय तो इससे भी विश्व प्रभावित होगा। इस परस्परावलम्बन क तत्व को समझना ही तो विश्व शान्ति का समर्थक बनना है। बालक जो खाना खाते हैं कपड़ पहनते हैं किताबें पढ़ते हैं, विभिन्न देशों के कितने ही व्यक्तियों ने उन्हें तैयार किया है। इस प्रकार उनके मन में विश्व नागरिकता के प्रति आदर भाव पैदा किया जा सकता है बेतार के तार की मदद से दुनिया भर के समाचार जाने जा सकते हैं। पलक मारते ही किसी भी घटना की खबर विश्वभर मे फैल जाती है विश्व के विभिन्न भागों मे रहने वाले व्यक्तियो के प्रति सहानुभूति पैदा की जा सकती है। इस प्रकार कोई भी देश अलग अलग स्वनिर्भर नहीं रह सकता। इस सम्बन्ध में के जी सैयदैन ने एक जगह लिखा है "एक युद्ध यूरोप में प्रारम्भ होता है और तीन लाख व्यक्ति बंगाल में मरते है तथा लाखों लोग बेघर बार एव बेकार हो जाते हैं एव लाखों लोगों के जीवन का आनन्द समाप्त हो जाता है।' * सहयोग एव शान्तिपूर्ण जीवन ही प्रगति एव विकास की ओर अग्रसर करता हैं।

---

* के जी सयदैन एजूकेशन फार इण्टरनेशनल अण्डरस्टेंडिंग पृष्ठ २२

विज्ञान का विकास जहां मानव के लिए वरदान सिद्ध हुआ है वहां वह अभिशाप भी बन सकता है, वह मानवता के विनाश का घटक भी बन सकती है। आज अणु बम से कुछ ही क्षणों में विश्व को नेस्त नाबूद किया जा सकता है। यह मनुष्य पर निर्भर है कि विज्ञान के साधनों को शान्ति के लिए प्रयोग करें या विनाश के लिए। आजकल मानव स्वयं अपने आपको युद्ध के आणविक साधनों द्वारा विनाश के मार्ग पर ले जा रहा है ऐसी स्थिति मे विश्व नागरिकता का, वसुधैव कुटुम्बकम की भावना का विकास अति आवश्यक है। मानव मानव से प्रेम करें, स्नेह से रहे, इस भावना का निरन्तर विकास होना चाहिये। नागरिकों में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन व नैतिक शिक्षा का विकास ही युद्ध व बरबादी से बचा सकता है।

सम्पूर्ण विश्व एक इकाई बन गया है समस्त राष्ट्रों के निवासी एक मानव जाति बन गई है। सभी राष्ट्रों की उत्तम भावनाओं पर ही विश्व का कल्याण निर्भर है। उत्तम भावनाएँ राष्ट्रों के परस्पर मैत्री पूर्ण प्रेमपूर्ण तथा शान्तिपूर्ण व्यवहार पर निर्भर है।

विश्व में आज बहुत से देश ऐसे हैं जो सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए हैं उन लोगों के विकास के लिए सुख समृद्धि के लिए शान्ति की आवश्यकता है, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की आवश्यकता है। आज मानव की आवश्यकताएँ भी विभिन्न रूपों मे कई गुनी बढ़ गई है। आवश्यकताएं जब पूरी नहीं होती तो असन्तोष होता है। असन्तोषी या भूखे व्यक्तियों का मनोविज्ञान ही पृथक होता है। प्रकृति का ज्ञान प्राप्त कर लिया उस पर विजय भी प्राप्त करली, पर अपने दिमाग को नहीं समझ सके उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सके। मुट्ठीभर लोग साधन सम्पन्न एवं समृद्ध है तथा शेष विपन्न है। सब लोग मान सत्ता व भौतिक लाभ के पीछे पागलों की तरह भाग रहे हैं-यही महापुरुषों की हाड़ है।

आज की इस स्थिति का विश्लेषण करते हुए पूज्य विनोबा जी ने एक बार कहा था– शस्त्र बल बढ़ा कर शान्ति स्थापित करने वालों के पास विचार नहीं हैं परस्पर विचार तथा चर्चा करके शान्ति स्थापित करने वालों के पास विश्वास नहीं है यह जो भले लोग है, भला काम करते हुए शान्ति स्थापित करना चाहते है उनके पास निश्चय नहीं है।
शान्ति के लिए तो विधायक रचनात्मक निर्माण के काम करने होंगे भारतयात्मक विधायक शान्ति निर्माण करनी होगी। इतना ही नहीं हमें

हो सकता। इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना, अन्तर्राष्ट्रीय वाद विवाद, मेले, प्रदर्शनी, उत्सव, पत्र, नाटक, स्काउट, विचार गोष्ठी, एवं युवक सघों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तकालय स्थापित किये जाय जहा विभिन्न राष्ट्रों के विद्यार्थी मिल जुल सके विचार विनिमय कर सके।

७ सभी शिक्षण संस्थाओ मे सयुक्त राष्ट्र दिवस मनाया जाय। विश्व के महान नेताओं धर्म स्थानों, मंत्रीं कलाकारों, महात्माओ एवं निर्माताओ को शिक्षण सस्थाओ में बुला कर प्रवचन कराये जाय भाषण करवाये जाय, उनके जन्म व निर्वाण दिवस मनाये जाय, उनकी जीवनी से अवगत कराये जाय इन महात्माओ एवं शांति के दूतो द्वारा मानव कल्याण के लिए किए गए कार्यों की जानकारी दी जाय, विश्व के सभी मुख्य धर्मों के धार्मिक उत्सव मनाये जाय। विकसित समृद्ध व सम्पन्न देशो के तकनीकि विशेषज्ञो की सेवायें भी सभी राष्ट्रो को उपलब्ध कराई जाय। इसस बालको म अन्य देशो के बारे में कई बातें जानने की जिज्ञासा पैदा होगी, वे प्रश्न पूछ कर अपनी शंकाओ का निवारण कर सकेंगे। विभिन्न देशों में हुई शोध से वे अपना ज्ञान बढायेंगे। इसके लिए शिक्षक को अध्यापन के तरीको में भी परिवर्तन करने के लिए तैयार रहना होगा।

८ बालको मे इस बात का विवेक पैदा किया जाय कि केवल अपने राष्ट्र को बड़ा व अन्य को तुच्छ न समझे इसस उनके भावी विकास मे रोड़े तो अटकेंगे ही, साथ ही नागरिक हठी, अभिमानी व अन्य संतोषी बन जायेंगे। ईर्ष्या द्वेष व शंकाओं को प्रश्रय मिलेगा यह भी सम्भव है कि अन्य राष्ट्रो म निराशा व असफलता का विकास हो जाय जिससे वे अपना भी विश्वास न करें। इस प्रकार के दृष्टिकोण से बचना चाहिए।

९ विद्यार्थियों में पक्षपात रहित व्यापक दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए, उन्हे सहिष्णु बनने की शिक्षा दी जाय, वे स्वार्थी व शक्ति शाली न बने। जीओ और जीने दो' सिद्धान्त का उन्हें अनुशीलन कराना चाहिए। विश्वबंधुत्व मे उनका विश्वास पैदा किया जाय। तभी शिक्षा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के लिए शक्तिशाली घटक के रूप में फलदायी सिद्ध होगी।

१० अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के विकास के लिए भय का अन्त करना होगा। जब तक व्यक्ति व्यक्ति या राष्ट्र राष्ट्र का विश्वास नहीं करेगा तब तक युद्ध की समाप्ति नहीं हो सकती। अन्त भय मिटा कर सहयोग-सहकार की प्रवृत्ति बालकों म विकसित करनी होगी। जब बालक यह अनुभव करेंगे

कि जो बुराई है, जो दोष व कमियां है, उनके लिए वे स्वयं भी उतने ही जिम्मेदार है जितने कि दूसरे। उन्हें अनुभव कराना चाहिए कि इन सब का हल एकता की भावना में छिपा हुआ है। इसके लिए मिलजुल कर सामूहिक प्रयास करने होंगे।

११ यह आवश्यक है कि बालकों में व्यक्ति व राष्ट्र के बजाय गुणों व सिद्धांतों के प्रति निष्ठा उत्पन्न की जाय। उन्हें यह जानना चाहिए कि उनके विचारों से सहमत होने वाले सभी उनके सच्चे मित्र हैं, क्यों से कन्धा भिड़ाकर समस्याए हल करने वाले हैं फिर चाहे वे किसी भी जाति या देश के हो, विचारो व विश्वासो में एकता के आधार पर ही मित्रता बनी रह सकती है।

१२ अन्य देशो की सभ्यता संस्कृति, भूगोल भौगोलिक स्थिति आदि का अध्ययन करने के लिए अध्ययन दल भेजे जाय। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पुस्तकों का आदान प्रदान किया जाय। विभिन्न देश छात्रो व शिक्षको का भी आदान प्रदान करें जिससे कि वे सभ्यता, संस्कृति, विचार धारा, उद्योग धंधे, इतिहास का परिचय प्राप्त कर सके। इस प्रकार की 'मन्थन मन्च' से विचार विनिमय के द्वारा एक दूसरे को समझने का अवसर मिलेगा तथा पूर्व से जमी हुई शकायें दूर होगी।

१३ विश्व की सामान्य जानकारी की परीक्षाए आयोजित की जाय, इससे बच्चो म रचनात्मक प्रतिस्पर्द्धा पैदा होगी तथा वे अधिक से अधिक ज्ञानार्जन करने का प्रयास करेंगे। इस सम्बन्ध में भारत में USO of India महत्वपूर्ण काय कर रहा है।

इन्ही सब बातो के साथ कला, मनोविज्ञान, दशन, समाजशास्त्र आदि विषयो का पाठयक्रम तथा सहगामी क्रियाए इसी दृष्टि से आयोजित की जाय। मनोविज्ञान के विद्यार्थी अन्य देशो के नागरिको की मनोभावना समझ सकेंगे, समाजशास्त्र का विद्यार्थी सामाजिक दशा से परिचय प्राप्त करेगा व दशन के आधार पर मानव जीवन के शाश्वत मूल्यो पर भी ध्यान दिया जा सकेगा। शालाओ के पाठयक्रम को इस प्रकार से संयोजित किया जाय जो अन्य देशो के बारे मे सही सूचनाए दे सके पर ऐसी बात सयुक्त नहीं की जानी चाहिए जो घृणा या द्वेष पैदा करें। यदि आलोचना भी करनी पड़े तो वह रचनात्मक हो ध्वंसात्मक नहीं। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि जाति गत द्वेष भाव का विकास न हो। परतु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि वास्तविक तथ्यो को छुपाया जाय या दबाया जाय।

आजकल के तनावों का एक मुख्य कारण यह भी है कि अन्य देशों के निवासियों के बारे मे जानकारी नहीं है। ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि छात्रों के सामने उन देशो के निवासियों के रहन सहन के ढंग रीति रिवाज उनके इतिहास एवं विश्व इतिहास की सामान्य स्थिति के बारे में सही सही प्रकाश डाला जाय। इस सम्बन्ध में पत्र मित्र बनाने की आदत भी उपयोगी सिद्ध होगी—इससे कई प्रकार की जानकारी स्वतः मिल जायगी। पाठ्यक्रम निम्न बातो पर आधारित होना चाहिए

पृथ्वी का ज्ञान मानव जाति का ज्ञान शाश्वत ज्ञान एवं सुन्दरता का ज्ञान अन्तर्निभरता के कारणो का ज्ञान तथा मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए साधनों का ज्ञान विभिन्न राष्ट्रों की समस्याओं से जानकारी एवं उनमे सामञ्जस्य पैदा करना विश्व के प्रमुख धर्मों विश्वासो पूजा पाठो उपासना स्थानो एवं आदर्शों का प्रारम्भिक ज्ञान तथा उनके प्रति आदर भाव संघर्ष के स्थान पर सहकारिता तथा सुखी विश्व के निर्माण की इच्छा जागृत करना, आदि आदि।

यूनेस्को के अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के विकास के लिए कार्य*

इस विश्व व्यापी संस्था का कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है इसमें कोई सन्देह नहीं। अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध (सदभाव) के लिए जो प्रयास यह संस्था कर रही है, वह सराहनीय है स्तुत्य है। यहां यूनेस्को के कुछ महत्वपूर्ण कार्यों का ही वर्णन किया जा रहा है

१ यह संसार के समस्त देशो मे बौद्धिक सहयोग का प्रयास करती है। हर देश की उच्च कलाकृति संस्कृति विज्ञान तथा साहित्य को दूसरे देशो तक पहुचाती है और इस प्रकार से सब देशों को एक दूसरे से बौद्धिक रूप से परिचित कराने की चेष्टा करती है। विभिन्न देशो की साहित्यिक पुस्तकों को प्रकाशित करके संसार के समस्त देशो को एक दूसरे देश के साहित्य से परिचित कराती है।

२ यह संस्था विचारको अध्यापको वैज्ञानिकों, दार्शनिको इत्यादि को एक दूसरे से विचार विमर्श करने का अवसर प्रदान करती हैं। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि रचनात्मक कार्यों के सृजन पर राष्ट्रीयता की संकीर्ण भावनाओं का प्रभाव न हो परन्तु मनुष्यों को स्वतन्त्रता

* एस एस माथुर (डा०) शिक्षा सिद्धान्त आगरा विनोद पुस्तक मन्दिर अस्पताल मार्ग, द्वितीय संस्करण, १९६४ पृष्ठ २५०–२५१।

हो कि वे रचनात्मक कलाओं का विश्व शान्ति और न्याय के लिए सृजन हो।

३ विभिन्न राष्ट्रों का एक दूसरे के प्रति अवबोध कराना भी इस संस्था का काय है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि युद्ध की जड एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के प्रति अविश्वास तथा भय है। यूनेस्को विभिन्न देशों को एक दूसरे के सम्बन्ध में अवबोध कराके अविश्वास तथा भय को उखाड फकने की चेष्टा करती है।

४ यूनेस्को ने युद्ध से पीडित देशों के सास्कृतिक उत्थान का काय भी अपने ऊपर लिया, जिसमें यह बहुत महत्वपूण रही है

५ यूनेस्को अपने ध्येय की पूर्ति के लिए एक देश के विद्यार्थियों तथा अध्यापकों को दूसरे देशों में ज्ञान के आदान प्रदान के लिए प्रोत्साहित करती है। इस प्रकार से एक देश के बुद्धि जीवी दूसरे देश के सम्बन्ध में वास्तविक ज्ञान प्राप्त करते हैं और शान्ति तथा सद्भावना के लिए अधिक तैयार हो जाते है।

६ विश्व इतिहास को यह संस्था वह रूप देने का प्रयास कर रही है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना को प्रोत्साहन मिले।

७ *सामाजिक विज्ञान द्वारा अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा कैसे दी जा सकती है* यह संस्था इस सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन करती है अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा के लिए इसकी एक गोष्ठी ने १९४७ में यह मुख्य सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि सामाजिक विज्ञान द्वारा "विश्व के सभी मुख्य विषयो के अध्ययन पर बल दिया जाय।" शिक्षण में ठीक ठीक बातों को प्रस्तुत किया जाय और आलोचनात्मक तक शक्ति व विकास पर विशेष बल दिया जाय। इसके अध्ययन में विभिन्न मानव समुदायों के परस्पर सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों पर बल दिया तथा वण धम एवं संस्कृति के कारण आर्थिक व सामाजिक स्तर पर जो भेद भाव माना जाता है– उसे दूर किया जाय। इसी प्रकार के अन्य कई सिद्धान्त मानव जाति के लिए बनाये गये।

८ यूनेस्को अन्तर्राष्ट्रीय पयटन आदि का भी आयोजन करती है तथा विभिन्न देशों के सांस्कृतिक शिष्ट मण्डलों को एक दूसरे देश मे भेजती है, यह सब अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के दृष्टिकोण से ही किया जाता है।

९ ससार के उन देशों में जहां अज्ञानता और निरक्षरता का राज्य

है, यूनेस्को वहा विशेष रूप से क्रियाशील रहता है और अज्ञानता तथा निर क्षरता को वहा से दूर करने की चेष्टा करती है पिछड़े देशों को वह सहायता प्रदान करती हैं जिससे वहां के निवासियों का बौद्धिक, मानसिक एव सामाजिक विकास हो।

१० इसके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कला एव साहित्य की प्रदर्शनी विभिन्न देशों में आयोजित की गई है जो अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना एव मैत्री को विकसित करने में बहुत सहायक होती है।

अन्य प्रयास

अमेरिका की आई सी ए संस्था ने विश्व के लगभग ६० देशों को भोजन, वस्त्र, स्वास्थ्य, शिक्षा, यातायात उद्योग श्रम व जन प्रशासन मे तकनीकी सहायता पहुचाई है। छात्रों के आदान प्रदान का कार्य शिक्षा के यू एस कार्यालय के शिक्षा स्वास्थ्य व कल्याण विभाग से होता है। अमेरिका के यू एस इन्फर्मेशन एजेंसी से दुनिया के लगभग ६० देशों में १६२ सूचना केन्द्रो से सूचनायें प्रसारित की जाती है।

न्यूयार्क की इन्स्टीटयूट आफ इण्टरनेशनल एजूकेशन भी महत्वपूर्ण काम कर रही है। यह अराजकीय संस्था अनुदान एव दान पर आश्रित है। विश्व मे छात्रों का आदान प्रदान, विशेषज्ञो की विभिन्न स्थानो पर यात्राएं आदि का प्रबन्ध करती है।*

जिनेवा म १९२५ मे स्थापित इण्टर नेशनल ब्यूरो शैक्षणिक सूचनाओ शोध आदि का प्रकाशन करती है। इसका महत्वपूर्ण प्रकाशन इण्टरनेशनल इयर बुक आफ एजूकेशन है जिसमे ६३ देशों की शिक्षा की प्रगति गतिविधियों का विवेचन प्रस्तुत है। इसी प्रकार की एक और संस्था फोर्ड फाउण्डेशन भी है जो वैज्ञानिक खोज विदेशों मे अध्ययन शिक्षकों का सुधार तथा शिक्षक प्रशिक्षण में प्रशसनीय कार्य कर रही है। इसमें अर्द्धविकसित या अविकसित देशों के ग्रामीण जीवन व शिक्षा पर भी ध्यान दिया है।

न्यू जर्सी के अटलांटिक शहर मे यूनेस्को की मदद से एक नौ-दिवसीय बैठक हुई जिसमें एकत्रित देशो के प्रतिनिधियो ने भी भाग लिया। बैठक म यह तय किया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की समस्याओं पर शोध आवश्यक है। विभिन्न देशों में तनाव कम हो इसके लिए तरीके सुझाय

* Insutute for International Education 37th Annual Report, 1956 The Institute 1957 & 56,

जार। इसका महत्वपूर्ण योगदान यह रहा कि १९५०-५६ के बीच लगभग १८ देशों में रिव्यू ऑफ एजुकेशनल रिसर्च प्रकाशित किया गया। द्वितीय महायुद्ध के बाद जर्मनी में इन्स्टीट्यूट फॉर इन्टरनेशनल रिसर्च स्थापित की गई इसने विभिन्न प्रकार की प्रशिक्षण सामग्री एवं शोध कार्यों के प्रतिवेदन प्रकाशित किये। इसके प्रकाशनों में इन्टरनेशनल रिव्यू आफ एजुकेशन भी महत्वपूर्ण है। इसके सम्पादक मण्डल में सभी देशों के क्षेत्र से सम्बन्धित जाने माने व्यक्ति सम्मिलित हैं तथा सभी देशो से विभिन्न विषयों पर लेख संयुक्त किये जाते हैं।

आज विश्व में विश्व सहयोग, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के लिए विभिन्न संस्थायें काय कर रही है-ये सब जन हिताय लोक कल्याणकारी काय है, काय सराहनीय है तथा अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। इसमे कोई सन्देह नहीं है कि आदान प्रदान व भ्रमणो से ही मनुष्य मनुष्य को समझता है जिसके फलस्वरूप एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को समझ पाता है तनाव कम होते हैं। सरकारी व गैर सरकारी तकनीकी व अन्य प्रकार की सहायता के कार्यक्रमों से अर्द्ध विकसित व अविकसित राष्ट्रो का बहुत विकास हुआ है, सुधार हुआ है। जब इन सब बातो पर विचार करते हैं तो सहसा कहना पडता है कि अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का भविष्य बडा उज्जवल है।

अन्तर्राष्ट्रीय सदभावना के विकास मे शिक्षक का स्थान

अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के विकास के लिए जो शिक्षा की व्यवस्था की जायगी उसमे शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि शिक्षा ही शिक्षार्थी के मस्तिष्क में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन ला सकते हैं। नाई धोबी या दर्जी से इन परिवर्तनों की आशा नहीं की जा सकती। इसके लिये आवश्यक है कि शिक्षक स्वयं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्न के बारे म स्पष्ट हो। अध्यापक की निष्ठा उसका व्यक्तित्व उसकी योग्यता व उसका उत्साह सब कुछ पाठ्य विषयों का रोचकता व शक्ति प्रदान करते हैं। एक बार संयुक्त राष्ट्र संघ की सभा म विश्व चिन्तक श्री एटली ने कहा था कि युद्ध व्यक्तियों के दिमाग म पैदा होता है अत आरम्भ से ही व्यक्ति के मस्तिष्क को शान्ति के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिये। इस स्थिति म शिक्षा का पद और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है, उसके पद का उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है।

शिक्षक का अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एव सदभावना में विश्वास एवं रुचि हो। केवल इतना ही नहीं, वह इन गुणों को छात्रों में विकास करने के लिए

पडोसी के बारे मे कितना जानते है ? क्या उसकी सुख दुःख की स्थिति से हम जानकार हैं ? निश्चय ही हमें कहना पडता है कि इन सबके बारे मे हमारा ज्ञान नगण्य है। कितने दुःख की बात है कि हम विश्व सहकार की बात तो करते हैं पर हमें अपने ही देश की पूरी जानकारी नही है। ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय अवरोध आकाश कुसुम हो जाता है। यह स्थिति वास्तविक रूप से पीडा देने वाली है एव सुधार के लिए हर सम्भव प्रयत्न तो किये ही जाने चाहिए।

—०—

छात्र वर्ग किस ओर ?

चाय पीते हुए शिक्षक बातें कर रहे थे। बन्धु! गजब हो गया—परसों जब मैं सड़क से गुजर रहा था, किसी स्कूल की छात्राएँ टूर्नामेंट में भाग लेने जा रही थी। कुछ विद्यार्थी साइकिलों पर उनके निकट से निकले और बोले, 'देखो बड़ी अच्छी है दुपट्टा किस भांति हवा में उड़ रहा है' 'और भी न जाने क्या क्या कह दिया।' एक शिक्षक बोले।

तभी दूसरे शिक्षक महोदय बोल पड़े 'कुछ न पूछिये साहब, आज के विद्यार्थियों की। शौचालय तथा मूत्रालय में अश्लील से अश्लील शब्द लिखे मिलते हैं। इतना ही हो सो भी बात नहीं है, चित्र भी बना दिये हैं कई जगह पर तो, एक साथी ने कनी काटते हुए कहा,— रेलवे गाड़ियों के शौचालयों का भी तो यही हाल है।'

अन्य शिक्षक ने तभी यह भी जोड़ा 'अजी साहब इस बार जब छुट्टियाँ बिता कर घर से लौट रहा था तो कुछ छात्र रेल की पटरी के निकट नंग ही खड़े थे तथा ऊलजलूल जैसा चाहे चिल्ला रहे थे, कुछ अपने गुप्तांगों की ओर भी संकेत कर रहे थे। मेरी तो समझ में नहीं आता कि विद्यार्थियों का क्या होगा ?'

चाय समाप्त हो गई पर बातचीत जारी रही सभी शिक्षक बातें कर रहे थे।

चौथे मास्टर साहब ने कहा, भाई, स्थिति बड़ी विषम है। पता नहीं हम कहां गिरेंगे ? अब तो छात्र छात्राओं में चिट्ठी बाजी भी होने लगी है। ५–७ रोज पहले ही स्कूल का चपरासी कह रहा था कि कक्षा——के विद्यार्थी न लड़की के लिए चिट्ठी भिजवाई है तथा किसी और को न देने की भी कही है। जिस स्कूल में उक्त लड़की पढ़ती थी वहां की प्रधानाध्यापिका को उसी पत्र की जानकारी मिल गई है तथा उस लड़की को स्कूल से निष्कासित कर दी है भाई मैं तो इस राय का हूं कि यदि कोई परिस्थिति हो जाना है तो वह पहले समाज में आय।

समाज सम्मत परिवर्तन स्कूल में लाये जाय। परिवर्तनों की पहल स्कूल में न हो।'

पिछले दिनों जब मंगलवार को बाजार में काफी भीड़ थी (क्योंकि बुधवार को साप्ताहिक अवकाश रहता है) सामने से ट्रक चला आ रहा था रेलवे का फाटक बंद था (क्योंकि रेलवे की पटरी से होकर गुजरना पड़ता था।) फलत निकलने वाले सभी रुक गये। पीछे से तेजी से अपनी सायकिल पर एक छात्रा आ रही थी। समझ नहीं पाई कि क्या करे—इसी बीच वह अन्य सायकिल से टकरा कर गिर गई। एक छात्र ने उसे उठाया। तभी उस छात्रा ने उसे बुरा भला कहा और सभी व्यक्तियों के सामने उसकी इज्जत मिट्टी में मिला दी। छात्र अपना सा मुँह लेकर फाटक खुलने पर, रास्ता होने पर चल दिया तभी एक शिक्षक ने बात आगे बढ़ाई 'साथी, आज जीवन में बनावटीपन बहुत आ गया है आज विद्यार्थी कितने तंग कपड़े पहनते है, यह किसी से छिपा नहीं है। छात्राएं भी इसका अपवाद नहीं हैं। उनकी हालत यह है कि यदि कलम भी सड़क पर गिर जाय तो झुक कर नहीं उठा सकती। यदि झुकती हैं तो कपड़े फटने का डर है। अजी साहब, हर नई फैशन उनके कपड़ों में देख लो। कई छात्राएं तो अपने को निरखती रहती है, कमीज की प्लास्टिक ठीक है कि नहीं, दुपट्टे पर उस्तरी अच्छी हुई है या नहीं कहीं कोई धब्बा तो नहीं है। साफ स्वच्छ रहना अच्छी बात है पर अति तो सदैव ही बुरी है। ये बातें आज के विद्यार्थी समाज को कृत्रिमता की ओर ले जा रही हैं।

लो विश्वविद्यालय के छात्रों ने हड़ताल करदी। एक मित्र ने कहा। तभी दूसरे शिक्षक ने तत्काल कहा, अजी उनकी मांगें बड़ी अजीब हैं—अमरिकन ढंग की परीक्षा पद्धति हटाई जाय, पूरक परीक्षा की समाप्त की गई व्यवस्था वापस लाई जाय, अंकों में एक निश्चित प्रतिशत का नियम, अङ्क प्राप्त करने के सम्बन्ध में हटाया जाय आदि-आदि। क्या ये बातें विद्यार्थियों के सोचने की हैं? ऐसी बातों पर यदि ध्यान दिया गया तो ये ही छात्र कल यह भी कहेंगे कि हमारी उत्तर पुस्तिकाएँ हमारे सामने जाचो तथा हम जिस प्रकार कहें अङ्क दो। मेरी तो समझ में नहीं आता कि आज का विद्यार्थी वर्ग कहां जाकर रुकेगा? तीसरे मित्र ने एक ही सांस में सब कह दिया।

ये कुछ ऐसी बातें हैं, असामाजिक प्रवृतियां हैं जो आज छात्रों में बड़ी तेजी से घर करती चली जा रही हैं। आज स्वतन्त्रता प्राप्त किए

१८–१९ वर्ष होने आये पर हमारा नैतिक जीवन सुधरा नहीं है वह बराबर अनतिकता की ओर ही बढ़ा है। आज हम झूठ, चोरी, धोखाधडी मे किसी से पीछे नहीं है। वे सब काम ऐसे सुधरे हुए तरीके से किये जाते हैं कि लोगो को पता ही न लगे या लग जाय तो बुरा न लगे। बहु मुखी विकास क लिए नैतिक स्तर अत्यावश्यक है। यह सभी विकास के लिए नीव का पत्थर है तथा मौजूदा स्थिति यह है कि इसी मे हम अपने को गत में पाते हैं। एक समय था जब मानवीय नतिक जीवन, भारतीय सस्कृति की चारो ओर प्रशसा होती थी। सीता को रावण द्वारा चुरा लेन पर राम ने लक्ष्मण से पूछा कि क्या तुमने सीता को देखा है'? इस पर लक्ष्मण ने जो उत्तर दिया उससे हमारे उस समय के नतिक जीवन एव सस्कृति का परिचय मिलता है। लक्ष्मण न कहा यदि आप भाभीजी के पाव का कोई आभरण बता सकें तो मैं मदद कर सकता हू।' इससे स्पष्ट है कि लक्ष्मण ने कभी सीताजी का मुह तक नहीं देखा उसकी दृष्टि सदव पावों की ओर ही रहती थी (ऐसा बाल्मिकी रामायण मे जिक्र आता है) कितना उच्च कोटि का जीवन था उस वक्त और आज जिस समय हम जी रहे हैं। आकाश पाताल का अन्तर है।

इन असामाजिक प्रवत्तियो का विवेचन कर देना ही काफी नहीं है। महत्वपूर्ण तो यह है कि इनके उपचार पर ध्यान केन्द्रित किया जाय। नतिक जीवन के स्तर को सुधारने के लिए क्या क्या प्रयत्न किये जाने चाहिए? यह बहुत आवश्यक है।

छात्र का जीवन मुख्यत दो भागों मे बीतता है घर पर तथा स्कूल में। इसी लिए वे उपचार भी इन्हीं दोनों प्रकार के जीवन से सम्बन्धित होगें। प्रथम स्कूल सम्बन्धी उपचारो का अध्ययन करते हैं।

स्कूल का अनुपयुक्त वातावरण

आज शालाओं म पढने वाले विद्यार्थी बहुत बढ गये हैं, शालाए उपयुक्त जगह पर स्थित नहीं होती तथा कई शालाओं म तो हवा व रोशनी का भी उपयुक्त प्रबध नही होता। फलत वे कक्षा के कमरों में घुटने लगते हैं।

कई शालाए सिनेमाघरों या मिलों के पास स्थित होती हैं उनकी स्थिति तो और भी खराब होती है। वहां छात्रों का मिल के मजदूर जिनके जीवन में नगरीकरण की सभी बुराईयां प्रवेश कर गई हैं, से सम्पर्क

होता है तथा उनसे प्रभावित होते हैं। इसी के अनुसार कोई छात्र जन्म से बुरा या अनैतिक नहीं होता—यह तो वातावरण है जो उसे भला या बुरा बना डालता है। इसलिए आवश्यक है कि स्कूलों का वातावरण सुधारा जाय।

शिक्षका का अनतिकापूर्ण जीवन

कुछ शिक्षकों को इस पर आपत्ति हो सकती है पर सही बात को झूठी तो नहीं बताई जा सकती। बच्चे शिक्षक की वाणी को देव वाणी समझते हैं। वे अनुकरण से कई बातें सीखते हैं। ऐसी स्थिति में जरूरी है कि स्वयं शिक्षकों का जीवन मान उच्च स्तर का हो। लेखक के ज्ञान मे ऐसे शिक्षक भी है जो छात्रो से (छात्रो के पिता की दृष्टि से बचा कर) कपड़ो के थान मगवाया करते है।

वे कक्षा के कमरे म प्राप्त समय का सदुपयोग नहीं करते उनके पास पाठ की पूर्व योजना नहीं होती, पाठ का प्रस्तुतीकरण आवषक नहीं बना पाते पाठ को हृदयगम करन हेतु छात्रो मे रुचि पदा नहीं कर पाते। इसके लिए आवश्यक है कि उन्हे शिक्षण के सिद्धातो का पूरा पूरा ज्ञान हो। शिक्षक छात्रो की जरुरतो को समझें छात्रो का हित साधन कर राष्ट्रीय कर्तव्य को पूरा किया जाना चाहिए।

कई शिक्षको का यह तक है कि उन्हे पारिश्रमिक पूरा नहीं मिलता अत काय भी अच्छा नहीं होगा, पर यह तक को कोई वजन नहीं रखता। पारिश्रमिक समाज या राज्य देता है यदि उसका दोष है तो छात्रो से बदला ले--यह कोई प्रसन्नता सूचक बात नहीं है। शिक्षको को अपने कर्तव्यो का पालन करना चाहिए तथा समाज व राज्य को भी शिक्षको को उचित पारिश्रमिक देने की व्यवस्था करनी चाहिए। एक शिक्षक, जो बच्चो को दूध नहीं पिला सकता पत्नी की बीमारी में उसे दवाइयो की चिंता लगी रहती है उससे कक्षा के कमरे मे क्या आशा की जा सकती है? यह दर्पण के समान है।

कुछ शिक्षक तो काय करना ही नहीं चाहते। क्या कक्षा में अध्यापन, क्या दूसरी सहगामी क्रियाए आदि। छात्रो के गृह काय के सम्बध म भी कुछ ऐसी ही बात है। प्रथम तो जाचने के भार से बचने के लिए शिक्षक गृहकाय देते ही नहीं है और यदि कभी एकाध प्रश्न दे दिया कापियां जांचते ही नहीं है और यदि कभी कापिया जांचनी चाही भी तो जांचने के बजाय हस्ताक्षर मात्र कर देते हैं। इससे छात्रों मे लापरवाही आती है

उनकी गलतियां स्थायी हो जाती हैं, लिपि खराब हो जाती है विद्यार्थी अपने विचारों पर स्वनिर्भर हो कर नहीं लिखते, वे पाठ्य पुस्तकों से नकल कर लेते हैं। इन सब दुर्गुणों से बचने के लिए शिक्षकों को पर्याप्त मात्रा में गृह कार्य देना चाहिए तथा समय पर शुद्धिकरण करना चाहिए। यह बात दूसरी है कि कक्षा में बालकों की संख्या में वृद्धि होने से शिक्षकों का काम बढ़ गया है। इसके लिए शिक्षक शुद्धिकरण की उपयुक्त विधि का प्रयोग कर सकते हैं।

बच्चों की दैनन्दिनी शिक्षकों द्वारा देखी जा सकती है। बच्चों को इस बात के लिए प्रोत्साहन दिया जाय कि सत्य एवं आवश्यक बातों को ही डायरी में नोट करें।

पाठ में रुचि न लेने का या कक्षा में बाधा पहुंचाने का एक बहुत बड़ा कारण यह भी हो सकता है कि हमारे पुस्तकालय एवं वाचनालय समृद्ध नहीं है, न उनकी कोई व्यवस्था ही है। छात्रों की रुचि के अनुसार पुस्तकें पुस्तकालयों में रखी जानी चाहिए। कई छात्र मेधावी बुद्धि वाले होते हैं—कक्षा का शिक्षण औसत बुद्धि की दृष्टि से करवाया जाता है। प्रखर बुद्धि वाले छात्रों को चुनौती देने वाली पुस्तकें चाहिए। वे अपनी जिज्ञासा ही पुस्तकालय से पुस्तकों को पढ़ कर शान्त नहीं करेंगे बल्कि इससे अध्यापकों को भी लाभ होगा। वे भी पुस्तकालय की पुस्तकों का अध्ययन कर कक्षाध्यापन के समय छात्रों को अतिरिक्त सूचनाएँ दे सकेंगे जिससे विद्यार्थियों में भी पाठ्य पुस्तकों के सिवाय अन्य सन्दर्भ ग्रन्थ पढ़ने का चाव पैदा होगा। पुस्तकालयाध्यक्ष का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह बच्चों को अधिक से अधिक पुस्तकें पढ़ने को प्रोत्साहन दे। किस उम्र या किस कक्षा के छात्र किस प्रकार की पुस्तकें पढ़ना पसन्द करते हैं, इसके लिए कोई महत्वपूर्ण शोध खोज पढ़ने में आई नहीं है। पर आवश्यकता होने पर इस प्रकार की शोध करवा कर निष्कर्षों से लाभ उठाया जा सकता है।

बच्चों की जो मानसिक जरूरतें हों वे अवश्य पूरी की जानी चाहिये। बच्चों में आत्म-प्रकाशन की भावना होती है, वे मित्र मण्डली में अपने को अच्छा बताना चाहते हैं। आत्म प्रकाशन के लिए उन्हें मंच पर बुलाया जाना चाहिये नाटक खेलने समय उन्हें पात्र देना चाहिए मंच सामने पर उन्हें भी बिठाया जाना चाहिये संगीत गाने को उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिए नौका विहार में भाग लेने के लिए उन्हें आमंत्रित करना चाहिए। उनमें सम्मिलन की भी भावना होती है, सामाजिक एवं राष्ट्रीय

पर्वों पर उत्सव करके मेला लगा कर तथा प्रदर्शनी आयोजित कर इस भावना को सन्तुष्ट किया जा सकता है। ऐसा करने से इन सबके अतिरिक्त एक लाभ और यह होगा कि बालकों की अतिरिक्त शक्ति का भी उपयोग किया जा सकेगा।

आवश्यकता के समय यौन शिक्षा भी दी जानी चाहिये। इस सम्बन्ध में ध्यान में यह रखना चाहिए कि पहल बालक की ओर से हो। बिना उपयुक्त समय का ध्यान रखे शिक्षक या माता-पिता को यह शिक्षा देना कदापी प्रारम्भ नहीं करना चाहिए। पर पहल किये जाने पर सही शिक्षा दी जानी चाहिये। इस सम्बन्ध में माता पिता या शिक्षक या तो बालकों को डाट देते हैं या फिर गलत जानकारी देते हैं। दोनों ही स्थितियां हानिकारक है। बच्चों की जिज्ञासा बनी रहती है। वे ये बातें अपनी उम्र के साथी लोगों से पूछते है-जहां भी उन्हें सही ज्ञान नहीं मिलता फलत वे असमञ्जित हो जाते हैं।

परिवार का योगदान

बच्चे अपने मित्रों के बीच रहना पसन्द करते हैं। माता पिता को चाहिये कि वे बच्चों की जरूरतों के प्रति पूर्णत सचेत रहें। उनको समय पर जेब खर्च देते रहना चाहिये। बच्चों के संगी साथियों को भी सदा कभी अल्पाहार हेतु बुलाया जाना चाहिये। उनके खेलने, विनोद करने के साधनों की सुव्यवस्था होनी चाहिये। उन्हें अपने बच्चों को कभी भी दो आंख से नहीं देखना चाहिये-ऐसा करने से भाई बहिनों में वैमनस्य पैदा हो जाता है तथा बच्चों का पारिवारिक जीवन कलहपूर्ण बन जाता है। माता पिता को बच्चों की उपस्थिति में अपने व्यवहार के प्रति पूर्ण जागरूक रहना चाहिए।

चलचित्र भी कोई होवा नहीं है। अच्छी श्रेणी के पिक्चर जब आये तो बच्चों को अवश्य दिखाना चाहिए। उदाहरण के लिए काबुलीवाला, गोदान आदि। सिनेमागृह से लौटकर बच्चों की क्रिया प्रतिक्रिया भी मालूम करनी चाहिए इससे कई उपयोगी निष्कर्ष प्रकाश में आयगें।

बच्चों में कोई कमी या अन्य दोष भी हो सकता है। माता पिता को चाहिए कि इसके लिए उन्हें कभी ताड़ना नहीं दी जाय। ऐसा करने से बच्चों के मस्तिष्क में उलझनें बन जाती है।

इन सब बातों का कोई उपयोगी प्रभाव न होने पर माता पिता को शाला के शिक्षकों से सम्पर्क जोड़ना चाहिए। बच्चों के सुधार के लिए

उनकी राय भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। फिर भी यदि कोई सुधार नहीं होता है तो बच्चों को किसी अच्छे छात्रावासी अच्छे स्कूल में या किसी आवासीय स्कूल में भर्ती करा देना चाहिए।

लोगों के दिमाग मे पाश्चात्य विचारधारा पनप रही है। समाज के मूल्य बड़ी तेजी से बदल रहे हैं। उनका आग्रह है कि जब जीवन में आगे चल कर उन्हें (बालक बालिकाओ को) साथ साथ रहना है। तो क्यों नहीं अभी से साथ रहें ? पर हर बात को सामाजिक सन्दर्भ में देखना चाहिये तथा तभी उसे लागू करना चाहिए।

अंत में यह कहा जा सकता है कि आज की परिस्थिति में छात्र वर्ग को गुमराह होने से बचाने के लिए सामाजिक कार्यकर्ता, नेता, शिक्षक, मनोवैज्ञानिक, निर्देशन कार्यकर्ता आदि सभी को सुधार लाने हेतु वास्तविक हृदय से सेवा कार्य करना चाहिये।

—•—

स्कूली पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण

स्थान–शाला का अध्यापक कक्ष समय–मध्य अवकाश। चाय का दौर चल रहा था, तभी एक शिक्षक ने कहा–'मेरी पुस्तकें बच्चों के मानसिक धरातल से ऊपर है।' दूसरे शिक्षक ने तभी चाय का घूंट पीते हुए कहा–'विषय का प्रस्तुतीकरण बड़ा रूखा हुआ है, चित्रों का अभाव भी खटकता है।' तभी एक अन्य शिक्षक बोले–अजी साहब और तो और, स्कूलें खुले ३ महीने होने को आये मेरे विषय की तो पुस्तकें ही बाजार में प्राप्त नहीं हो रही है। बच्चों की सारी पढ़ाई ही ठप्प पड़ी है। यही तो पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण का प्रसाद है।' तथा फिर चाय पीने में दत्तचित्त हो गये। चौथे शिक्षक जो चाय समाप्त कर चुके थे बोले–'किताब लिखता कौन है? पढ़ाता कौन है? स्वीकार कौन करता है? बच्चों की आवश्यकतायें क्या हैं? किस प्रकार के अक्षरों में पुस्तकें छपी हैं? पुस्तक की जिल्द कैसी है? और इन सब बातों के सिवाय किताब का मूल्य तो देखो, आसमान को छूता है।' अध्यापकजी ने एक ही श्वास में सब कुछ कह दिया। ५–६ नवनियुक्त शिक्षक इस बातचीत को बड़ी रूचि से सुन रहे थे। चाय का दौर समाप्त हुआ अवकाश समाप्त होने की घंटी बजी। सभी अध्यापक अपना अपनी कक्षाओं में उपस्थिति–पंजिकायें लेकर पहुंच गये थे।

ये कुछ इस प्रकार की बातें हैं जिनके बारे में हम समाचार पत्रों में टीका–टिप्पणी पढ़ते हैं तथा अध्यापन कार्य में लगे शिक्षकों को बातें करते हुए देखते हैं। पांच छः साल पूर्व जैसलमेर तथा बाड़मेर जिलों में पढ़ाई जाने वाली भूगोल की पुस्तकों का राजस्थान विधान सभा में बड़े जोरों से प्रश्न उठाया गया था। इसी भांति लगभग १० वर्ष पूर्व बिहार राज्य की माध्यमिक शालाओं की सामाजिक ज्ञान की पुस्तकों पर समाचार पत्रों ने बड़ा दोषारोपण किया था। ३–४ वर्ष पूर्व लेखक की निगाह में एक ऐसी पुस्तक आई जिसमें राष्ट्रीयध्वज के रंग उलटे दे रखे थे।

ये कुछ बिंदु हैं जो उपचार चाहते हैं, तभी भावी पीढ़ी में स्वस्थ
दृष्टिकोण, मानव हित एवं सहिष्णुता आदि गुणों का विकास किया जा
सकता है। उपयुक्त पाठ्य सामग्री का संकलन, पुस्तकों का सम्पादन
बहुत ही तकनीकी पूर्ण कार्य है समस्त अध्यापन कार्य की सफलता इसी
पर निर्भर है बिना इसके अध्यापन का उद्देश्य ही पूरा नहीं होता।

अब तक होता यह रहा है कि महाविद्यालयों में पढ़ाने वाले
व्याख्याता पुस्तकें लिखते थे, अब भी लिखते हैं उन्हीं के शिष्य स्कूलों
में काम करते हैं उनको आदर देने के लिए नित्य अपने गुरुजनों की
पुस्तकें स्कूलों में विद्यार्थियों से खरीदने का आग्रह करते हैं। महाविद्या
लयों के व्याख्याताओं द्वारा लिखी पुस्तकें वास्तविकताओं से परे होती
हैं वे बच्चों की आवश्यकतायें व रुचियाँ नहीं जानते, बच्चों के साथ
रहने का उनको अवसर नहीं मिला महाविद्यालयों की तरह शालायें
साधन सम्पन्न नहीं होती, इस प्रकार वे अपने पद का अनुचित लाभ
उठाते हैं। व्याख्याता व्याख्यान पद्धति से पढ़ाते हैं, पुस्तक की रचना
भी व्याख्यान पद्धति के दृष्टिकोण से ही करते हैं जिसकी स्कूलों के लिये
बहुत ही कम उपयोगिता रह जाती है। स्थिति इतनी ही हो ऐसी
बात नहीं है कई बार तो यहां तक देखा गया है कि राजनीति शास्त्र
के व्याख्याता भूगोल की पुस्तक लिख रहे हैं जबकि भूगोल उन्होंने अपने
सेवा काल में कभी पढ़ाई ही नहीं है।

पाठ्य पुस्तकों में विषय सामग्री का प्रस्तुतीकरण इतना नीरस होता
है कि बालक कक्षा में ऊबने लगते हैं। पुस्तक पढ़ाते समय शिक्षक
विषय सामग्री को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहें ऐसी
व्यवस्था होनी चाहिये। उदाहरण के लिये चांदनी रात में नौका विहार
के पाठ को यदि विशेष स्थान पर तालाब है तथा नाव की व्यवस्था
हो सकती है तो शरद पूर्णिमा के दिन पढ़ा सके ऐसी व्यवस्था आव
श्यक है। लेखक के ध्यान में दूसरी कक्षा के बालकों की संगीत की
पुस्तक भी आई है जिसके माध्यम से बच्चों को तीन ताल का ज्ञान
कराया जाता है। क्या इस प्रकार का शिक्षण बच्चों के लिये सार्थक
नहीं होगा? दूसरी कक्षा के बालकों को तो पढ़ाना चाहिये— 'छुक पुक
छुक पुक गाड़ी आई।' आदि आदि।

बिना चित्रों के पुस्तकें नीरस सी लगती है, बच्चे पसंद भी नहीं
करते हैं। बच्चों की आयु उनकी मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक

आवश्यकताओं के अनुसार पुस्तकों में चित्र भी दिये जाने चाहिए। इससे बच्चों की रुचि पुस्तकों में बनी रहेगी तथा चित्रों की शैक्षणिक उपयोगिता भी सिद्ध होगी। पुस्तक का मुख्य पृष्ठ सुन्दर होना चाहिये जिससे बच्चे पुस्तक की ओर आकर्षित हो सकें। कागज, जिस पर पुस्तक छपती है, अच्छा होना चाहिये पर बहुत अधिक चमकदार भी न हो।

पुस्तक के मुद्रण का विशेषतः चित्रों के मुद्रण का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये। कई बार एम्प्रेस गहरा होने से पृष्ठ ठीक ठीक पढ़ा भी नहीं जा सकता है। पुस्तक की जिल्द अच्छी मजबूत हो जिससे पुस्तक शीघ्र फट न जाय। उपयुक्त मार्जिन हो तथा आवश्यकतानुसार शीर्षक तथा उपशीर्षक भी दिये गये हों। इन सब बातों के साथ साथ पुस्तक का मूल्य सब साधारण की पहुंच तक होना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि अच्छी पुस्तक सदैव भारी कीमत की ही हो।

पाठ के अन्त में सारांश भी देना चाहिए जिससे विद्यार्थी बात की बात में परीक्षा के समय आवृत्ति कर सकें। एक शोध के अनुसार उच्च माध्यमिक शाला के विद्यार्थी पाठ के अन्त में सारांश प्राप्त करना पसन्द करते हैं। सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची दी जानी भी आवश्यक है। प्रखर बुद्धि बालक सामान्य बालकों से अधिक पढ़ना चाहते हैं यह सूची उनकी आवश्यकताओं को पूरा करेगी तथा उनको विस्तृत एवं गहन अध्ययन के लिये प्रेरित करेगी।[1]

शिक्षा विभाग में शिक्षक के रूप में ८–१० वर्षों का अनुभव रखने वाले सभी शिक्षक जानते हैं कि पाँच छः वर्ष पूर्व तक हमारी शालाओं में पाई जाने वाली सभी पाठ्य-पुस्तकें इन बुराइयों से ग्रसित थीं। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि पाठ्य पुस्तकों के चुनाव का तरीका दोषपूर्ण था। शिक्षा विभाग या शिक्षा विभाग द्वारा नियुक्त समिति प्रकाशकों की पाठ्य पुस्तकों को मान्यता प्रदान करती थी। ऐसी स्थिति में इन पाठ्य पुस्तकों के चुनाव में भाई भतीजावाद चलता था व्यक्तिगत मित्रता का लाभ उठाया जाता था वहीं कभी भारी राशि घूँस में देकर भी पुस्तकें स्वीकार कराई जाती थीं। स्पष्ट है कि इस प्रकार के प्रकाशक पुस्तकें महंगी बचते थे तथा अनधिकृत व्यक्तियों से लिखवा लेते थे। इन तरीकों से

---

१ जन शिक्षण साहित्य हिन्दी मासिक विद्या भवन सोसाइटी, उदयपुर द्वारा प्रकाशित वर्ष ११ अङ्क ७, जुलाई १९६८ पृष्ठ २६

घटिया किस्म की पुस्तक भी स्वीकार करली जाती थी। लिखने वालों को कभी कभी उस कक्षा के विषय को पढ़ाने का अनुभव ही नहीं होता था, पाठ्य पुस्तक चयन विशेषज्ञ समिति में उपयुक्त व्यक्ति सम्मिलित ही नहीं किये जाते थे। यदि कभी पुस्तक पर समीक्षकों से राय माँगी जाती तो प्रकाशक उन पर भी अनुचित दबाव डालते देखे गये हैं।

इन सब बुराईयों की ओर आज से १८-२० वर्ष पूर्व माध्यमिक शिक्षा आयोग (१९५२–५३) ने भी संकेत किया था। उन्हीं के शब्दों में "We are greatly dissatisfied with the present standard of productions of school books and consider it essential that this should be radically improved Most of the books submitted and prescribed are poor specimens in every way–the paper is usually bad, the printing is unsatisfactory, the illustrations are poor and there are numerous printing mistakes"* पर स्थिति आज में संतोषजनक हो गई हो ऐसी बात नहीं है। पुस्तक सस्ती हो जिसे जन साधारण खरीद सके, बालकों की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करती हो शिक्षण कला के दृष्टिकोण से उपयुक्त हो अनुभवी लेखकों द्वारा लिखी गई हो, विषय का प्रस्तुतीकरण आकर्षक हो, घटिया पुस्तकों को स्कूल में आने से रोका जाय, इन सब बातों को प्राप्त करने के लिये पाठ्य पुस्तकों का लगभग सभी राज्यों में राष्ट्रीयकरण कर लिया गया है। विभिन्न प्रदेशों में राष्ट्रीयकरण भिन्न भिन्न तरीके से व्यवहृत कर लिया गया।

प्रश्न यह है कि क्या राष्ट्रीयकरण इन सभी बुराइयों की रामबाण औषधि है? गम्भीरता से सोचने पर पता लगता है कि वस्तु स्थिति इसके विपरीत है। राष्ट्रीयकरण से भी अपने आप कई नई समस्यायें एवं आशंकायें उत्पन्न हो सकती हैं जिन पर विचार किया जाना आवश्यक है –

---

* Report of the Secondary Education Commission Ministry of Edtcation Government of India New Delhi The Manger of Publications Division Sixth Reprint June 1965 p 78

१ भारत वर्ष विभिन्न संस्कृतियों मजहबों एवं रीति रिवाजों का अजायब घर है। यदि जड़ता से राष्ट्रीयकरण की नीति को अपनाया गया तो ये विशिष्ट वर्ग अपनी संस्कृति खो देंगे जो अलग सत्य है, जब कि संविधान में उनको अपनी संस्कृति की रक्षा का प्रावधान किया हुआ है। ऐसा करने पर उनके मौलिक अधिकारों पर भी आघात हो सकता है। इस दृष्टिकोण से जनतंत्र की सुरक्षा तथा विकास के लिये पाठ्य पुस्तक में विविधता होना आवश्यक है।

२ स्कूली पुस्तकों का लेखन प्रकाशन एवं वितरण यदि एक ही व्यक्ति या संस्था या अभिकरण के उत्तरदायित्व में हो तो केन्द्रीयकरण एवं एकाधिकरण की सभी बुराइयाँ वहां भी पैदा हो सकती है। घटिया किस्म की पुस्तक लिखवाई जा सकती है तथा मनचाहे मूल्य पर बेची भी जा सकती हैं।

३ शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक बहुत ही शक्तिशाली घटक है। स्कूलों के माध्यम से प्रचलित सत्तारूढ़ दल बालकों में अपने दल की विचार धाराओं सिद्धान्तों एवं आदर्शों का प्रचार कर सकता है। केरल का उदाहरण हमारे सामने है जबकि राष्ट्रपति का वहां का शासन अपने हाथ में लेना पड़ा था।

४ आज के युग में राजकीय मशीनरी जिम्मेदारी से काम नहीं कर रही है। पुस्तकों के प्रकाशन में विलम्ब होना तथा मुद्रण की अशुद्धियां पाई जाना सामान्य बात हो गयी है। इतिहास नागरिक शास्त्र तथा भूगोल के पाठों का असम्बद्ध रूप से एक पुस्तक में रखकर सामाजिक अध्ययन का नाम दे दिया गया है। पुस्तकों के सम्पादन प्रकाशन तथा वितरण में सरकारी कर्मचारी अनावश्यक देरी करते हैं।

५ अध्यापन कार्य में शिक्षक स्वतन्त्र होना चाहिये। कक्षा में प्रयोग करने के लिये श्रव्य-दृश्य साधन तथा नये प्रयोग वह काम में ला सके जिससे बच्चे भी शिक्षण में रुचि ले राष्ट्रीयकरण की प्रथा के साथ ही इन सब बातों का लोप हो जाता है। ऐसी स्थिति में शिक्षक अपनी सूझ बूझ एवं विवेक का उपयोग नहीं कर पाता है।

यदि उच्चाधिकारी तनिक इन दोषों के प्रति सजग रहे तो इन दोषों से आसानी से बचा जा सकता है। लेखकों का चयन निष्पक्ष, आवश्यक योग्यता

एव अनुभव के आधार पर होना चाहिये न कि मित्रता व निजी सम्बन्धो के आधार पर। उनको उचित पारिश्रमिक भी दिया जाना चाहिये, जिससे योग्य लेखक आकर्षित हो सके।

एक विषय की एक से अधिक पाठय पुस्तकें भी लिखवाई जा सकती है या लिखी हुई पुस्तकें बिना पक्षपात के स्वीकार भी की जा सकती है, प्रकाशित की जा सकती है। सस्था प्रधान का यह दायित्व होना चाहिये कि वे इन स्वीकृत पुस्तकों की तालिका को विषय का अध्यापन कराने वाले शिक्षको के ध्यान में लाय, जिससे वे अपनी रुचि के अनुसार पसद की पुस्तक चुन सकें। तात्पर्य यह है कि मूलत पाठय पुस्तक का चुनाव शिक्षक स्वय करें।

यदि कोई प्रकाशक उचित मूल्य पर (कागज, टाइप, ब्लाक पृष्ठ के पूर्व निर्धारित मान दण्ड के अनुसार) पुस्तकें प्रकाशित कर बेचना चाहे तो उसे भी स्वीकृति दी जानी चाहिये। ऐसा करने से प्रकाशकों में होड़ की भावना पदा होगी, जिससे अन्य प्रकाशक पाठय पुस्तकों में और भी सुधार करने के लिये तत्पर रहेंगे।

ओर से कोई एक वरिष्ठ शिक्षक, सम्भव है, देने में सक्षम न हो तो निश्चित समय पर प्रश्न पेटिका खोलने वाले महोदय प्रश्नों को विषयवार बांट कर विषय से सम्बन्धित शिक्षकों को भिजवा दें या देदे तथा वे स्वयं फिर निश्चित समय उन प्रश्नों के उत्तर दे दें। कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों तथा उत्तरों को कुछ समय के लिए सूचना पट्ट पर भी लगवा देना चाहिए या अगली बार महत्वपूर्ण प्रश्नों को उत्तरों सहित लगाते समय पिछली इसी प्रकार की सामग्री को हटा लेना चाहिए। इन महत्वपूर्ण प्रश्नों एवं उत्तरों का उपयोग विद्यालय पत्रिका में भी किया जा सकता है।

इस प्रकार दूसरे शब्दों में या कहा जा सकता है कि विद्यालय प्रशासन की आलोचना करने का यह एक तरीका है। किसी एक नियम या कार्य प्रणाली या किसी कार्य की नीति परिवर्तन की आवाज को बिना किसी खतरे एवं बिना पूर्व स्वीकृति के अधिकारियों तक पहुंचाने का सुगम तरीका है। अधिकारियों को आलोचना से रुष्ट न होकर सदैव सीखने का प्रयत्न करना चाहिए, आलोचना को सदैव स्वस्थ दृष्टिकोण से देखना चाहिए। शाला के प्रांगण में सभी विद्यार्थियों की इस प्रकार की सामान्य स्वच्छन्दता तो होनी ही चाहिए जिससे वे सुझाव या प्रश्न बिना किसी खतरे की आशंका किये, निडर होकर विद्यालय प्रधान तक पहुंचाने में न हिचकिचायें एवं विद्यार्थी यह अनुभव करें कि विद्यालय हमारा है, इसके बनाने व बिगाड़ने का उत्तरदायित्व हम ही पर है।

यहां विद्यालय अधिकारियों को एक सावधानी बरतना भी बहुत आवश्यक है। कई बार उच्छृंखल विद्यार्थी प्रश्न या सुझाव पेटिका में कंकर पत्थर या कागज की गोलियां आदि भी डाल सकते हैं या निरर्थक उलजलूल बातें भी लिखकर डाल सकते हैं। ऐसी स्थिति में विद्यालय प्रधान को पूर्ण धैर्य रखना चाहिए। विद्यार्थी समुदाय से सुझाव प्राप्त करना तथा उनकी शिकायत सुनना ही प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। यदि किसी विद्यार्थी को डांटा फटकारा तो सम्भव है विद्यार्थी उस पेटिका का उपयोग ही न करें। इस प्रकार जरा सी असावधानी पर प्रश्न पेटिका का उद्देश्य ही धराशायी हो सकता है। इसलिए अच्छा यह होगा कि कंकर पत्थर या ऊलजलूल बातों पर ध्यान ही न दें, जैसे कुछ हुआ ही न हो उन पर उदासीनता दिखाई जाय। अधिकारियों द्वारा इन बातों पर ध्यान न देने से विद्यार्थी स्वयं ही ऐसी हरकतें बन्द कर देंगे। विद्यालय प्रधान को यह समय अपने धैर्य की परीक्षा का समझना चाहिए।

दीवाल पत्रिका

आपने विद्यालय पत्रिका का नाम अवश्य सुना होगा। सम्भव है, कभी कक्षायी पत्रिका के बारे म भी सुना हो। पर दावाल पत्रिका के बारे में बहुत कम सुना होगा या सम्भव है न सुना हो। विद्यालय पत्रिका व कक्षायी पत्रिका सुचारु रूप से निकल रही है तो भी दीवाल पत्रिका की आवश्यकता हो सकती है। वास्तव में देखा जाय तो यह उन पत्रिकाओ से अधिक महत्वपूर्ण होती है, इसका अपना स्थान होता है। इसे विद्यालय की आवश्यक प्रवत्तियों में से एक समझना चाहिये। इसके कई लाभ हैं —

१ विद्यालय पत्रिका वप में एक बार प्रकाशित होती है, कहीं कहीं अपवाद स्वरूप दो बार भी निकल जाया करती हैं, पर मोटे तौर पर प्राय वर्ष में केवल एक अक ही निकलता है। इसके विपरीत दीवाल पत्रिका मे आज के लिए विचार दैनिक समाचार महापुरुषों की वाणी आदि बातों को भी स्थान दिया जा सकता है इस भाति दीवाल पत्रिका विद्यार्थियों की भावनाओं, उनकी रुचियों इच्छाओ व आत्माभिव्यक्ति का अच्छा साधन है। जब बच्चों की भावनाओं का प्रकाशन होता है तो उन्हें प्रोत्साहन मिलता है।

२ विद्यालय पत्रिका मे पृष्ठों की सख्या सीमित होती है इससे गिने चुने लेख व रचनायें ही प्रकाशित की जा सकती हैं। कई छात्र ऐसे होते हैं जो रचनायें नहीं लिख सकते या चित्रकला का नमूना तैयार नही कर सकते क्योंकि उन्हे डर रहता है कि उनकी रचनायें प्रकाशन के लिये न चुनी गयी तो श्रम व्यर्थ ही जायेगा। ऐसे विद्यार्थियों को दीवाल पत्रिका से बड़ा लाभ होता है, दीवाल पत्रिका मे असीमित जगह होती है, उसमें हर वस्तु सम्मिलित की जा सकती है। प्रत्येक विद्यार्थी की रचना कार्टून चित्र, पहेली आदि-चाहे अच्छी हो या घटिया—का प्रदर्शन दीवाल पत्रिका के माध्यम से किया जा सकता है। लेख के सिवाय कहानी कविता आदि की जानकारी, शैक्षणिक यात्रा का वर्णन समाचार तथा चित्रमय जगत आदि बातें भी सम्मिलित की जा सकती हैं।

३ एक विद्यालय की विभिन्न कक्षाओं द्वारा निकाली जाने वाली दीवाल पत्रिकाओं की प्रतियोगिता भी की जा सकती है। इससे पत्रिका के स्तर सुधारने में मदद मिलेगी। सभी कक्षायें अपनी अपनी पत्रिका एक ही समय न निकालकर भिन्न-भिन्न समय पर निकालें तो भी प्रतियोगिता हो सकती है।

४ विद्यालय पत्रिका के प्रकाशन पर पर्याप्त व्यय होता है उसमें काफी पृष्ठ होते हैं। उसकी तुलना में दीवाल पत्रिका बहुत सस्ती रहती है। इसमें बहुत अधिक व्यय भी नहीं होता है।

५ कक्षा के कमरे को प्रयोगशाला समझना चाहिये तथा वहां जो काम होता है उसको बड़े मंचों पर लगाकर प्रदर्शन किया जा सकता है। चित्र बनाने व मचों पर लगाने का सभी काम विद्यार्थी स्वयं कर लेंगे।

६ विद्यालय में त्यौहार जैसे जन्माष्टमी, रक्षा बंधन या राष्ट्रीय पर्व जैसे स्वतन्त्रता-दिवस गणतन्त्र दिवस या जयन्तियां जैसे महावीर जयन्ती, गांधी जयन्ती या बुद्ध जयन्ती या नानक जयन्ती मनाई जाती है। इसी प्रकार के और भी कार्यक्रम हो सकते हैं जैसे विज्ञान मेला या सफाई तथा स्वच्छता-सप्ताह आदि। ऐसे अवसरों पर पूरी पत्रिका इन्हीं से सम्बन्धित सामग्री से सुसज्जित की जा सकती है। इससे सभी विद्यार्थियों का लेख लिखने व चित्र बनाने का साहस बढ़ेगा व समाचारों का संग्रह करेंगे तथा पत्रिकाओं को अन्य प्रकार से समृद्ध बनाने के लिए विचार प्रस्तुत करेंगे। यदि विद्यालय में विभिन्न प्रकार की कक्षाएं हैं तो उनके द्वारा बनाई वस्तुओं को व उनकी गतिविधियों के समाचार भी दीवाल पत्रिका में दिये जा सकते है।

७ ट्रिप या शैक्षणिक यात्रा से लौटने पर विद्यार्थियों के विचार और उनके अनुभव, कहानी या बातचीत के रूप में सम्मिलित किये जा सकते हैं। इस प्रकार अनुभवों का आदान-प्रदान अन्य साथियों को भी शैक्षणिक यात्राओं के लिये प्रेरित कर सकता है।

दीवाल पत्रिका आरम्भ करने के लिए आवश्यक वस्तुयें —

यह कार्य बहुत आसान है। एक लकड़ी का श्यामपट ऐसे सुरक्षित स्थान पर लगा दीजिये जहां सभी बच्चे पहुंच सकें तथा उस पर कैन्वेस का कपड़ा लगा दीजिये। यदि कपड़ा काला हुआ तो और भी अच्छा होगा।

यदि लकड़ी के श्यामपट की व्यवस्था नहीं हो सकती तो भी घबराने

की या निराश होने की आवश्यकता नहीं है। कपड़ा दीवाल पत्रिका की सामग्री साधारण कागज पर लिख लेनी चाहिए तथा पीनों की मदद से कपड़ पर लगा देनी चाहिये। मोटा कार्ड-बोड या प्लाइवुड का टुकडा भी श्याम पट के रूप मे उपयोगी सिद्ध हो सकता है। कार्ड-बोर्ड या प्लाइवुड के टुकड़े पर लिखी हुई दीवाल पत्रिका पीनों की मदद से लगी जा सकती है या गोद से चिपकाई जा सकती है।

यदि पत्रिका विभिन्न कक्षाओ म प्रतियोगिता के आधार पर निकल रही है तो एक कक्षा का अंक तथा निश्चित समय समाप्त होते ही पत्रिका की सभी सामग्री वहा से हटा लेनी चाहिये जिससे अन्य कक्षा अपनी दीवाल पत्रिका का प्रदर्शन कर सके। यदि पत्रिका पूरे विद्यालय का सामूहिक प्रयास है तो उसे श्यामपट पर लगभग एक सप्ताह या माह भर रखा जा सकता है या तब तक रखा जा सकता है जब तक कि दीवाल पत्रिका का अगला अंक प्रदान के लिए तयार न हो जाय।

हर स्कूल म विद्यार्थी सभाएँ होती हैं। दीवाल-पत्रिका प्रबन्ध, सचालन व निगरानी सभी काय विद्यार्थी सभा को दे देना चाहिए। पर साथ ही किसी शिक्षक को भी इसके लिए उत्तरदायी बना देना चाहिये जो आवश्यकता होने पर विद्यार्थियों का मार्गदर्शन भी कर सके। दीवाल-पत्रिका के माध्यम से जो सामग्री प्रदर्शित होती है उसे वह देखेगा और आवश्यकता हुई तो घटायेगा—बढ़ायेगा। इस प्रकार बच्चों की रचनाओं मे निखार आ जायगा। इससे बच्चो को प्रेरणा एव प्रोत्साहन मिलेगा, उनका आत्मविश्वास बढेगा। वह बच्चो की रचनाओ म वतनी की शुद्धता भी देखेगा तथा विद्यार्थियो को नय नये विषय भी सुझायगा। उच्च स्तर की रचनाओ को वह विद्यालय पत्रिका के लिए भी सुरक्षित रख लेगा। वह प्रत्येक कक्षा की दीवाल पत्रिका की सामग्री का हर दृष्टि से मूल्यांकन करेगा जिस के आधार पर अच्छी पत्रिका निकालने वाली कक्षा को पुरस्कार दिया जा सके। वह अन्य विद्यार्थियों के ज्ञान म भी लायगा कि दीवाल पत्रिका में क्या क्या वस्तुयें प्रदर्शित की गयी हैं। वह मुख्य-मुख्य खबरों के बारे में समाचार पत्र पढने की विधि कौन से समाचार महत्वपूर्ण हैं तथा किन समाचारों का प्रदर्शन किया जाना चाहिए, आदि के बारे में विद्यार्थियों को बतायगा।

इस भांति शिक्षक की देख रेख तथा मार्गदर्शन म सदैव दीवाल पत्रिका फलती फूलती रहेगी तथा निरन्तर उच्च-स्तर प्राप्त करती चलेगी। ●

सन्दर्भ साहित्य

(घ) पुस्तकें

अंग्रेजी

Adaval, S B (Ed) The Third Indian Year Book of Education Educational Research New Delhi 16 National Council of Educational Research and Training Feb 1968

Andrew and Willey Administration and Organization of Guidence Programme

Arther Jones Principles of Guidence Newyork McGraw Hill Book Co Inc, 1951

Bhatia, B D Education and Philosophy Bombay Orient Longmens, Ltd 1954 (Hindi Edition)

Brown, J Educational Sociology Newyork Technical Press 1934

Brubecher John Modern Philosophies of Education Newyork McGraw Hill Book Co Inc, 1939

Cook and Cook Sociological Approach to Education London McGraw Hill Book Co Inc, 1950

Crow and Crow An Introduction to Guidence Ramnagar New Delhi I Eurasia Publishing House 1962

Emotional Integration Committee Report (1962) Ministry of Education Government of India New Delhi The Manager of Publications Division 1962